



# महके अब मानव-मन

वर्णाधिपति तुलसी

मैं लगभग प्रतिदिन प्रवचन करता हूँ। एक बार प्रवचन करना तो मेरी जीवन-चर्या का एक अनिवार्य अंग-सा ही बन गया है। कभी-कभी दिन में तीन-तीन, चार-चार बार भी प्रवचन करना आवश्यक होता है। प्रवचन से विश्राम कहां। और बहुत सही तो यह है कि विश्राम लेना ही किसे है। विश्राम तो उसे लेना पड़ता है, जो थकान अनुभव करता है। मुझे इसमें थकान अनुभव ही नहीं होती। यह तो मेरा काम है। अपना काम करते थकान कैसी। उसमें तो उल्टा आनन्द होता है। तब भला उस आनन्द को कौन छोड़ना चाहेगा।

मैं प्रवचन करता हूँ। पर ऐसा कर किसी पर अहसान तो नहीं करता। यह तो मेरी स्वयं की साधना है। आत्माराधना करते जो अनुभव मुझे मिले, उन्हें जनता के सामने बिखेर देना—यही तो प्रवचन है। इस अपेक्षा से प्रवचन करने का सच्चा अधिकारी वही है, जिसने अपने जीवन को आत्माराधना में लगाया है। जो व्यक्ति साधना करता ही नहीं, उसे प्रवचन का कैसा अधिकार। साधक अपने अनुभव इसलिए सुनाता है कि कोई उनसे प्रेरणा पाए तो अच्छा। यदि कोई प्रेरणा नहीं भी पाता है तो भी उसने तो अपनी साधना का लाभ कमा ही लिया। स्वाध्याय के रूप में उसके तो निर्जरा हो ही गई।

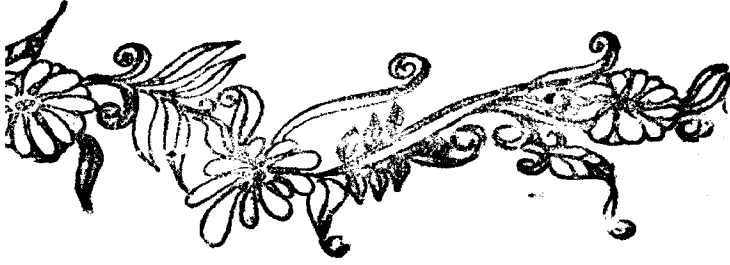
## महके अब मानव-मन



जैन विश्वभारती प्रकाशन

प्रवचन पाथेय ग्रन्थमाला, पुष्प—१८वां (१९५८)

# महके अब मानव-मन



संपादक  
मुनि धर्मरुचि

मानव उत्सवप्रिय प्राणी है । वह उल्लसित रहना चाहता है, इसलिए उत्सव मनाता है । वह जीवन में बदलाव चाहता है, इसलिए उत्सव मनाता है । वह संस्कृति की सुरक्षा चाहता है, इसलिए उत्सव मनाता है ।  
- गणाधिपति श्री तुलसी

चि० मनोजकुमार खटेड़ (सुपुत्र जी भीकमचन्द जी खटेड़) के विवाह-उत्सव पर  
14 फरवरी, 1997 को सप्रेम भेंट ।

पदमचन्द खटेड़  
स्वीटी सदन  
705 ए/5, वार्ड सं० 3,  
महरौली,  
नई दिल्ली - 110 030

मूल्य : पच्चीस रुपये/प्रकाशक : जैन विश्वभारती, लाडनूं, नागौर (राज०)/  
मुद्रक : मित्र परिषद्, कलकत्ता के अर्थ-सौजन्य से स्थापित जैन विश्वभारती  
प्रेस, लाडनूं-३४१ ३०६ ।

MAHAKE AB MANAV MAN  
Ganadhipati Tulse

Rs. 25/-

## स्वकथ

धार्मिक जीवन जीनेवालों की अपनी चर्या होती है। उस चर्या के साथ कुछ अपरिहार्यताएं जुड़ी हुई हैं। प्रतिक्रमण, प्रतिलेखन आदि ऐसी अपरिहार्यताएं हैं, जिनके साथ वय, दायित्व, स्वास्थ्य आदि का भी अपवाद नहीं है। कुछ अनुष्ठानों के साथ इस प्रकार की प्रतिबद्धता नहीं है, फिर भी व्यक्तिविशेष के लिए वे अनिवार्य हो जाते हैं। उनमें एक उपक्रम है प्रवचन। यह ऐसा उपक्रम है जो आत्महित और परहित दोनों का साधक है। यह अपने लिए कर्मनिर्जरा तथा दूसरों के लिए दिशादर्शन का माध्यम बनता है। प्रवचन सुनकर कोई अपने जीवन की दिशा बदले या नहीं, यह प्रवचनकार की चिन्ता का विषय नहीं है।

सूरज उगता है, फिर भी कोई कमल न खिले तो सूरज का क्या दोष? मेघ बरसता है, फिर भी कोई किसान बीज न बोए तो मेघ का क्या दोष? प्रवचनकार जीवन में रूपान्तरण घटित करने के गुर बता दे, फिर भी कोई उनका उपयोग न करे तो प्रवचनकार का क्या दोष?

सामान्यतः लोग सुनने में रस अधिक लेते हैं। जो कुछ सुना जाता है, स्मृति में नहीं रह पाता। स्मृति में जितना रहता है, वह आचरण में नहीं उतरता। श्रवण और आचरण की दूरी को कम करने का एक उपाय है सुने हुए सिद्धान्तों का मनन। मनन के लिए पुनः-पुनः श्रवण या पठन आवश्यक है। इस आवश्यकता ने साहित्य का सृजन कराया।

ईस्वी सन् १९३६ में मैंने धर्मसंघ का दायित्व संभाला। लगभग छह दशकों तक प्रायः निरन्तर प्रवचन करने का प्रसंग बना। एक दिन में कई बार प्रवचन करने के अन्तर भी आए। उन सब प्रवचनों को संकलित करने का न तो कोई लक्ष्य था और न ऐसी सुविधा भी थी। कुछ व्यक्तियों ने अपनी इच्छा से और कुछ लोगों ने किसी की प्रेरणा से प्रवचन लिखने शुरू किए। वे समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुए। इधर के कुछ वर्षों में प्रवचनों के सलक्ष्य संकलन किए गए।

प्रवचन एक ऐसी विधा है, जिसमें कठिन-से-कठिन बात को सरलता से प्रस्तुति दी जा सकती है। प्रवचनकार स्वान्तः सुखाय प्रवचन करे और संकलनकार स्वान्तः सुखाय संकलन-यात्रा करे तो श्रोता और पाठक सहज रूप में लाभान्वित हो सकते हैं। प्रवचन-साहित्य के प्रति पाठकों की

छह

अभिरुचि देखकर कुछ साहित्यकर्मी व्यक्तियों ने पुरुषार्थ किया। उनके पुरुषार्थ की निष्पत्ति है प्रवचन पाथेय ग्रन्थमाला के सतरह पुष्प।

ग्रन्थमाला के अठारहवें पुष्प 'महके अब मानव-मन' में सन् १९५८ के प्रवचन संकलित हैं। इसके संकलन और सम्पादन में मुनि धर्मरुचि की परिष्कृत रुचि का अच्छा उपयोग हुआ है। उसकी खोजी वृत्ति और गहन परिश्रम का परिणाम है प्रस्तुत पुस्तक। सम्पादक के आनन्द की अनुभूति और पाठकों को प्रेरणा—इन दो उद्देश्यों से अभिप्रेरित यह पुष्प स्वाध्याय-रसिक लोगों के मन को महकाता रहे; यही अभीष्ट है।

१६।९।१९९६

जैन विश्वभारती, लाडनूं

गणाधिपति तुलसी



## सम्पादकीय

अध्यात्म भारतीय संस्कृति का प्राणतत्व है। यह सच है कि अध्यात्म सार्वभौम और सार्वजनीन तत्त्व है, पर उसके समानान्तर उतना ही सच यह भी तो है कि सभी लोग उसे पहचान नहीं पाते, प्राप्त और आत्मसात् नहीं कर पाते। वही व्यक्ति उसे पहचान पाता है, प्राप्त और आत्मसात् कर पाता है, जो अपनी आत्मा को तपाता है, खपाता है और साधना की गहराइयों में उतरता है।

गणाधिपति गुरुदेवश्री तुलसी उन विरल महापुरुषों में से एक हैं, जिन्होंने न केवल अध्यात्म की गहराइयों और ऊंचाइयों को मापा ही है, अपितु साधक अर्ध शताब्दी से आध्यात्मिक जगत् का कुशल नेतृत्व भी कर रहे हैं। पर इस क्षेत्र में उनकी इससे भी अधिक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उन्होंने अपने प्रवचनों के माध्यम से अध्यात्म को सर्वजनसुलभ करवाया है। प्रकारान्तर से हम ऐसा भी कह सकते हैं कि उनका हर प्रवचन अध्यात्म का एक बोध-पाठ है। अपनी इस विशिष्ट गुणात्मकता के कारण उनके प्रवचन कभी भी पुराने और बासी नहीं लगते। जब भी उन्हें सुना-पढ़ा जाता है, उनका शब्द-शब्द शाश्वत सत्य का संगान करता हुआ एक नवीनता, सार्थकता एवं प्रासंगिकता की प्रतीति करवाता है।

शाश्वत सत्य के साथ-साथ गणाधिपति गुरुदेवश्री तुलसी ने अपने प्रवचनों में युगीन समस्याओं को जिस प्रभावी ढंग से उकेरते हुए उनका सटीक एवं समुचित समाधान प्रस्तुत किया है, उससे उनकी सार्थकता और प्रासंगिकता और अधिक गहरा गई है। युगीन समस्याओं के सन्दर्भ में अध्यात्म की उपादेयता की जो प्रस्तुति उनके प्रवचनों में हुई है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

गणाधिपति गुरुदेवश्री तुलसी के प्रवचनों को 'प्रवचन पाथेय ग्रन्थ-माला' के रूप में संकलित-संपादित कर प्रस्तुतीकरण करने का कार्य पिछले कुछ समय से चल रहा है। इस ग्रन्थमाला के सतरह पुष्प लोगों के हाथों में पहुंच चुके हैं। इसी शृंखला में अठारहवें पुष्प के रूप में प्रकाशित हो रहे 'महके अब मानव-मन' में गणाधिपति गुरुदेवश्री तुलसी द्वारा सन् १९५८ में प्रदत्त प्रवचनों में से सत्तानवे प्रवचन संकलित हैं। यद्यपि वर्णात्मक दृष्टि से संकलित प्रवचन बहुत संक्षिप्त हैं, तथापि उनमें शाश्वत एवं युगीन सत्य का स्वर कहीं भी मंद नहीं हुआ है। हां, प्रवचनों में यत्र-तत्र पुनरुक्ति परिलक्षित

आठ

होती है। पुनरुक्ति को साहित्य में एक दोष माना गया है। पर वह सर्वत्र दोष नहीं है। जहां प्रवाचक को अपनी किसी बात को पुष्ट करना होता है, किसी नए मूल्य की स्थापना करनी होती है, समाज की मस्तिष्कीय धुलाई (Brain Washing) या मस्तिष्कीय प्रशिक्षण जैसा कार्य करना होता है, वहां पुनरुक्ति दोष नहीं, अपितु आवश्यक तत्त्व है, गुण है। वैसे भी क्षेत्रान्तर और कालान्तर से एक ही बात को बार-बार कहना पुनरुक्ति दोष की सीमा में नहीं आता। इस पुस्तक की पुनरुक्ति इसी भूमिका पर खड़ी है। यदि पाठक पुस्तक के प्रत्येक प्रवचन को पूर्वापर्य्य सम्बन्ध के बिना स्वतंत्र रूप में पढ़ेंगे तो उन्हें पुनरुक्ति दोष जैसी कोई बात नजर नहीं आएगी।

गणाधिपति गुरुदेवश्री तुलसी के प्रवचनों की जो सहज बेधकता, प्रभावोत्पादकता और हृदय को छूने की अर्हता है, उसे उसी रूप में सुरक्षित रखने के लिए उनका उसी स्तर पर संकलन-संपादन हो, यह नितांत अपेक्षित है। इस परिप्रेक्ष्य में अपनी अक्षमताओं से मैं बहुत भली-भांति परिचित हूँ। सलक्ष्य प्रयत्न करके भी उनके प्रवचनों की उपरोक्त गुणात्मकता को एक सीमा तक ही सुरक्षित रख पाया हूँ। पर इस अभाव में भी मुझे इस बात का आत्मतोष है कि मैं पूज्य गुरुदेव के निदेश का पालन करने में अपने कुछ जीवन-क्षणों को सार्थक बना सका।

गणाधिपति पूज्य गुरुदेवश्री तुलसी एक कुशल जीवन-शिल्पी हैं। मेरे जैसे न जाने कितने-कितने जीवन-प्रस्तरों को तरासने में उन्होंने अपनी सृजनात्मक क्षमता का उपयोग किया है। मैं इस ग्रन्थमाला के सम्पादन-कार्य के साथ जुड़ सका, यह उनकी कृपा और आशीर्वाद का ही प्रतिफल है। मानता हूँ, इस कार्य में नियोजित कर उन्होंने प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से मेरे विकास का एक नया आयाम खोला है। इसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ। पर इसके लिए शाब्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करने जैसी बात उनके अनुग्रह के समक्ष बहुत बौनी लगती है। बस, उनके वरदहस्त की छत्रछाया में इस कार्य-दिशा में कदम-कदम आगे बढ़ता रहूँ, यही कमनीय है।

संघपरामर्शक मुनिश्री मधुकरजी का कुशल संरक्षण मेरे लिए सर्व-कालिक अयाचित मार्गदर्शन है। उनकी सहज प्रेरणा, सुभाष, प्रोत्सहन एवं निदेश से मेरे जीवन-विकास की विभिन्न दिशाएं आलोकित होती रही हैं।

गणाधिपति गुरुदेवश्री तुलसी के प्रवचनों को सुन-पढ़कर अनगिन लोगों ने अध्यात्म एवं उसके उपजातीय धर्म, मानवता, नैतिकता...के सदाबहार गुण-सुमनों की भीनी-भीनी गंध से अपने मन को महकाया है। 'महके अब मानव-मन' के प्रवचन भी यह सार्थकता सिद्ध करेंगे, ऐसी आशा करता हूँ।

**प्रज्ञालोक**

जैन विश्वभारती, लाडनू

१६ सितम्बर १९९६

**मुनि धर्मरुचि**

## अनुक्रम

१. सन्तों का सच्चा स्वागत	१
२. संयम, सादगी और सदाचार की प्रतिष्ठा हो	३
३. अध्यापकों का जीवन बोलता चित्र हो	५
४. गरीब कौन ?	७
५. स्याद्वाद का मूल्य	८
६. प्रेरणा का प्रसंग	९
७. अध्यात्म और नैतिक शिक्षा की उपादेयता	११
८. अभ्युदय की दिशा	१३
९. दीक्षा : संयममय जीवन का मंगलाचरण	१५
१०. धर्म जीवन-व्यवहार का तत्त्व बने	१७
११. ज्ञान की सार्थकता कब ?	१८
१२. अणुव्रत आन्दोलन का लक्ष्य	२०
१३. जैन दर्शन	२२
१४. अणुव्रत आन्दोलन : आध्यात्मिक आन्दोलन	२४
१५. व्यापारी आत्मालोचन करें	२६
१६. नारी परिवार और समाज की निर्मात्री है	२८
१७. समाज-सुधार का आधार—व्यक्ति-सुधार	३०
१८. महके अब मानव-मन	३२
१९. व्यसन-मुक्त जीवन जीएं	३४
२०. धर्म की सच्ची आराधना	३६
२१. ऊंचा जीवन	३८
२२. सम्यक् आस्था का निर्माण हो	४०
२३. धर्म और धार्मिक	४२
२४. अहिंसा धर्म का प्राणतत्त्व है	४४
२५. व्यापारी मिथ्या आस्था का त्याग करें	४५
२६. जैन दर्शन का व्यापक प्रचार हो	४७
२७. जैन संस्कृति	४९
२८. जीवन का अन्तर्-पक्ष पुष्ट हो	५१
२९. दुर्लभं भारते जन्म	५२
३०. धर्म का स्वरूप	५४

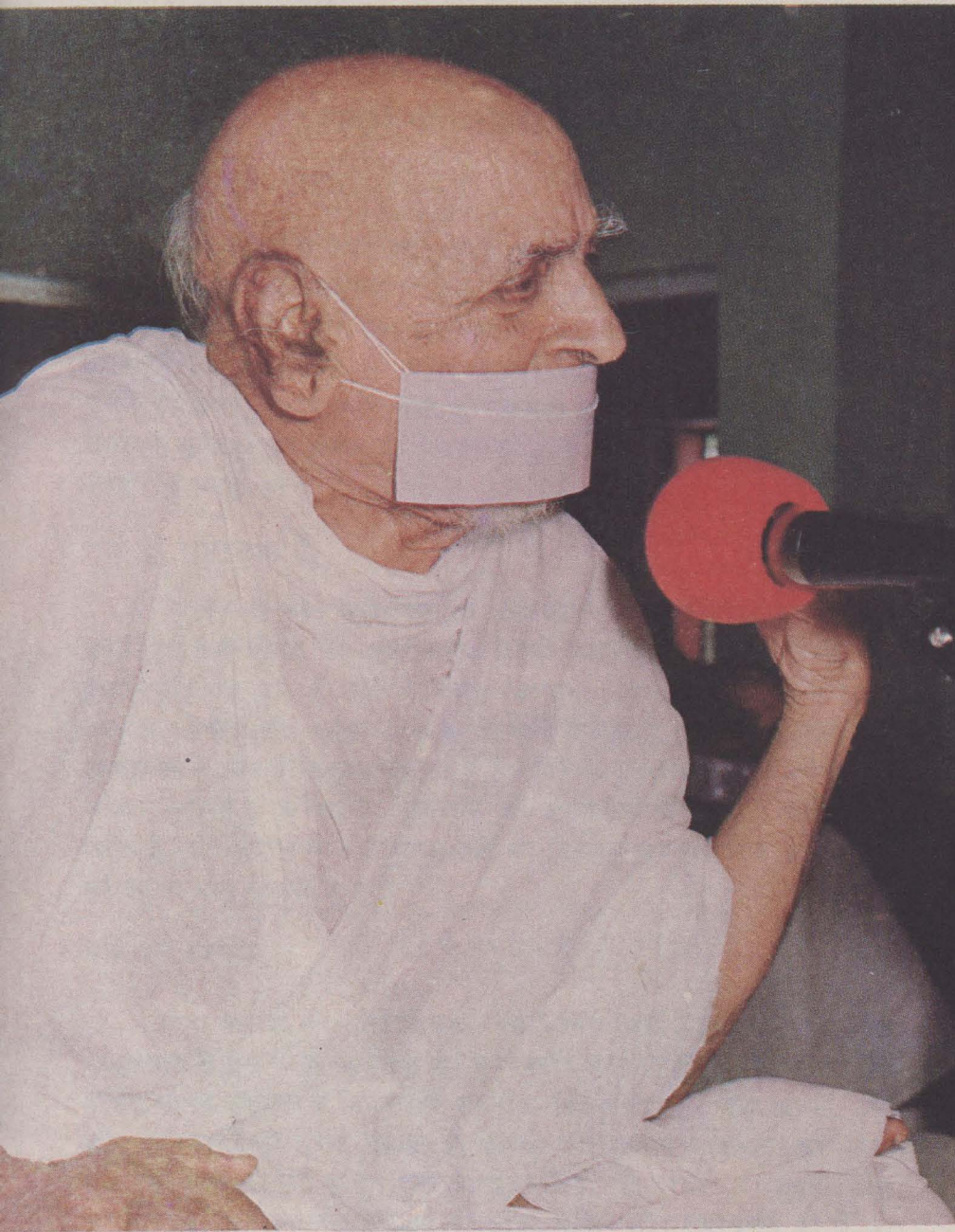
३१. बड़ा कौन ?	५६
३२. सुखी जीवन का साधना-पथ	५९
३३. आचार की प्रतिष्ठा	६१
३४. बुनियाद पर ध्यान केन्द्रित हो	६३
३५. सच्ची सेवा	६५
३६. मानवता का आंदोलन	६७
३७. मानवता का राजमार्ग	६९
३८. मानव-जीवन की विडम्बना	७१
३९. धर्म का शुद्ध स्वरूप प्रगट हो	७२
४०. जीवन को संवारें	७४
४१. आस्था सम्यक् बने	७६
४२. धर्म वर्तमान जीवन से जुड़े	७८
४३. अंधकार में प्रकाश खोजें	८०
४४. साहित्यकार जागरण के सजग प्रहरी बनें	८२
४५. आदर्श जन-सेवक कौन ?	८३
४६. अन्तर् चक्षुओं का उद्घाटन हो	८५
४७. सुख की मृग-मरीचिका से बचें	८७
४८. समाज-सुधार की प्रक्रिया	८९
४९. कार्यकर्ताओं की जीवन-दिशा	९१
५०. जीवन-विकास का मार्ग	९२
५१. अणुव्रत आन्दोलन की प्रासंगिकता	९३
५२. मानव सबसे पहले मानव	९५
५३. विश्व-शांति का मार्ग	९७
५४. संयम की प्रतिष्ठा हो	९९
५५. अहिंसा ही ज्वलंत समस्याओं का हल है	१०१
५६. अणुव्रत समाज-व्यवस्था	१०३
५७. चरित्र-निर्माण ही सच्चा विकास है	१०५
५८. अस्तेय की साधना	१०७
५९. चरित्र-निर्माण : राष्ट्र-अभ्युदय का आधार	१०९
६०. शराब अनेक बुराइयों की जड़ है	११२
६१. नैतिक एवं चारित्रिक मूल्यों की प्रतिष्ठा	११४
६२. जीवन-निर्माण की दिशा का उद्घाटन	११६
६३. ब्रह्मचर्य की साधना	११८
६४. नैतिक पतन : कारण और निवारण	११९
६५. व्यापारी नैतिक और प्रामाणिक बनें	१२१

६६. अन्तर्मुखी बनें	१२३
६७. ऋषिप्रधान देश	१२५
६८. क्षमा भावना का व्यापक फैलाव हो	१२७
६९. आत्मालोचन का दिन	१२९
७०. अपेक्षित है संस्कृत का विकास	१३१
७१. श्रमिक गरीब क्यों ?	१३३
७२. क्या है शिक्षा का लक्ष्य ?	१३५
७३. अणुव्रत की कार्यदिशा	१३७
७४. व्रत का मूल्य	१४०
७५. दीक्षा संस्कार	१४१
७६. नारी-जागृति का महत्त्व	१४३
७७. दीपावली का संदेश	१४५
७८. मैं सौभाग्यशाली हूँ	१४८
७९. कल्याण का मार्ग	१५०
८०. धर्म दैनंदिन जीवन से जुड़े	१५२
८१. धर्म की सही समझ जागे	१५४
८२. अध्यात्म का अंकुश अपेक्षित	१५६
८३. शिक्षा का प्रयोजन	१५७
८४. साहित्य और साहित्यकार	१५८
८५. व्रत का माहात्म्य	१६०
८६. जीवन संयममय बने	१६१
८७. धर्म को सही समझें, सही जीएं	१६३
८८. जरूरी है ज्ञान और आचार का समन्वय	१६५
८९. दर्शन और संस्कृति	१६७
९०. विद्यार्जन का उद्देश्य	१६९
९१. शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य	१७१
९२. व्रत : भारतीय संस्कृति का प्राण-तत्त्व	१७३
९३. धर्म का यथार्थ स्वरूप प्रकट हो	१७५
९४. सबसे पहली अपेक्षा	१७७
९५. मानव मानव बने	१७८
९६. संयममय जीवन हो	१८०
९७. बन्दीगृह सुधारगृह बनें	१८२

बारह

परिशिष्ट

१. शब्दानुक्रम/विषयानुक्रम	१८७
२. नामानुक्रम	१९१
३. पारिभाषिक शब्द-कोष	१९३
४. प्रेरक वचन	१९५







## सन्तों का सच्चा स्वागत

नगर-प्रवेश के प्रसंग पर संतों का अभिनन्दन किया गया। यह भारतीय संस्कृति के अनुरूप ही है। पर मैं शाब्दिक अभिनन्दन को बहुत महत्त्व की दृष्टि से नहीं देखता। यद्यपि यह सर्वथा निरर्थक भी नहीं है। इसके पीछे आपकी संतों के प्रति श्रद्धा और भक्ति काम कर रही है। पर सन्तों का सच्चा अभिनन्दन तभी हो सकता है, जब आप अपने जीवन में सात्विक वृत्तियों को संजोकर, आत्म-शुद्धि के पथ पर सतत अग्रसर होने के लिए संकल्पबद्ध हों।

धर्म ही समाधान है

आपमें से कौन नहीं जानता कि आज हिंसा दुर्निवार रूप में आगे बढ़ती हुई जन-जीवन को अस्त-व्यस्त करती जा रही है। इसकी सबसे बड़ी दुष्परिणति यह हुई है कि मानवता डगमगा उठी है। सर्वत्र निराशा, खिन्नता, बेचैनी की काली रेखाएं दिखाई दे रही हैं। ऐसी स्थिति में मैं आश्वस्त के स्वर में कहना चाहता हूं कि निराशा, खिन्नता और बेचैनी की अपेक्षा नहीं है। अपेक्षा है, हम धर्म की शरण स्वीकार करें। धर्म में वह शक्ति है, जो हिंसाजन्य सभी समस्याओं का निरसन कर सकती है, वातावरण को स्वस्थ बना सकती है।

धर्म का स्वरूप

परन्तु धर्म से मेरा तात्पर्य उस तथाकथित धर्म से नहीं है, जो केवल बाह्याचार के रूप में पाला जाता है, रूढ़ि और परंपरा की जड़ता में निगड़ित होकर मानव समाज के विकास में अवरोध पैदा करता है, मात्र ग्रन्थों, पंथों और धर्मस्थानों की शोभा बढ़ाता है, जीवन और जीवन-व्यवहार को छूटा तक नहीं। मैं तो उस पवित्र धर्म का पुजारी हूं, जो अहिंसा की सुदृढ़ भक्ति पर खड़ा है, जो जन-जन के लिए सात्विक वृत्ति और सदाचरण की प्रेरणा बनता है, आत्म-विशुद्धि जिसकी चरम निष्पत्ति है। ऐसा धर्म ही संसार को

सन्तों का सच्चा स्वागत

समता, मैत्री और सद्भावना का संदेश दे सकता है, मनुष्य के सुख और शान्ति का आधार बन सकता है ।

क्या मैं आशा करूँ कि आप लोग धर्म के इस स्वरूप को स्वीकार कर सन्तों का सच्चा अभिनन्दन/स्वागत करेंगे ? यदि ऐसा होता है तो मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि यह अभिनन्दन/स्वागत आपके जीवन की यादगार बन जाएगा, अमूल्य धरोहर बन जाएगा ।

राजलदेसर

४ जनवरी १९५८

## संयम, सादगी और सदाचार की प्रतिष्ठा हो

### बदलते जीवन-मूल्य

युग बदल रहा है। युग के बदलाव के साथ-साथ जीवन-मूल्यांकन के आधार बदल रहे हैं। कोई समय संयम, सादगी, सदाचार, स्वावलम्बन जैसे तत्त्व जीवन-मूल्यांकन के आधार थे। पर उनके स्थान पर आज प्रदर्शन, आडम्बर, साज-सज्जा, परावलम्बन जैसे तत्त्व जीवन-मूल्यांकन के आधार बन रहे हैं। यह स्थिति देखकर लगता है, आदमी गुमराह हो गया है। इसका परिणाम यह आया है कि व्यक्ति का जीवन-व्यवहार भारवाही और कृत्रिम बनता जा रहा है। इस भारवाहिता एवं कृत्रिमता का पोषण पाने के लिए उसे जाने कितनी प्रकार की अनैतिक/असद् प्रवृत्तियों को अपनाना पड़ता है। ये ही तो वे भ्रंभावात हैं, जिन्होंने मानवता को ढांवाडोल बना दिया है। इस स्थिति में वातावरण में चारों ओर निराशा, उदासीनता और विवशता फैलती जा रही है। लोग आशंकित हैं कि मनुष्य यों ही ह्रास की ओर बढ़ता चला गया तो जाने कब विनाश और वैषम्य का भयावह अंधेरा मानवता को लील जाए।

### समाधायक तत्व

पर मैं मानता हूँ, निराशा, उदासीनता किसी भी समस्या के समाधायक तत्व नहीं हैं, बल्कि इनसे तो समस्या और अधिक गहराती है, उलझती है। मेरी दृष्टि में समस्या का एक मात्र समाधान यह है कि संयम, सादगी, सदाचार जैसे जीवन-मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा की जाए। जीवन में हल्केपन को महत्त्व मिले। अणुव्रत आन्दोलन इस उद्देश्य की पूर्ति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। वह कहता है— जीवन को अधिक-से-अधिक संयत वृत्तियों से संजोते चलो, वैभव और सम्पदा की भूलभुलैया में गुमराह न बनकर अपने-आप को सत्य-निष्ठा से मांजते चलो, प्रामाणिकता एवं नैतिकता से अपने जीवन को भावित करते रहो। अणुव्रत आन्दोलन की भावना है—लालसाओं को असीमित होने से रोका जाए, आकांक्षाओं का विस्तार कम किया जाए। यही वह राजमार्ग है, जिस पर चलता हुआ

संयम, सादगी और सदाचार की प्रतिष्ठा हो

३

व्यक्ति सुख और शांति की अनुभूति को प्राप्त हो सकता है ।

परिस्थितिवाद हावी न हो

मैं कई बार सोचता हूँ कि लोगों की यह कैसी मनोवृत्ति है कि अपनी दुर्बलताओं को ऋजुता से स्वीकार नहीं करते । उनको छिपाने का प्रयत्न करते हैं और अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विपरीत परिस्थितियों का राग आलापते हैं । वे कहते हैं— युग की परिस्थितियाँ ही कुछ ऐसी बन गई हैं कि नैतिकता, सच्चाई और प्रामाणिकता से जीवन-व्यवहार नहीं चल सकता । ..... इस संदर्भ में मेरा अभिमत यह है कि ऐसा कथन करना आत्म-हीनता का परिचायक है । परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि मैं युगीन स्थितियों से आँख मींच रहा हूँ, उन्हें अस्वीकार कर रहा हूँ । बदली युगीन स्थितियों को मैं स्वयं अनुभव कर रहा हूँ, पर साथ ही परिस्थितिवाद को ही सब कुछ नहीं मानता । यदि व्यक्ति का कर्तृत्व प्रखर है, संकल्प पुष्ट है, आस्था दृढ़ है, तो वह विपरीत परिस्थितियों के बावजूद भी सच्चाई के मार्ग पर टिका रह सकता है । मैं इस बात को मानने के लिए कतई तैयार नहीं कि विपरीत परिस्थितियों के कारण ईमानदारी और सत्य-निष्ठा से व्यवहार चल नहीं सकता । हाँ, इतना तो संभावित है कि ईमानदारी और सत्य-निष्ठा से व्यवहार चलाने के लिए कृत-संकल्प व्यक्ति को अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामने करना पड़े । पर हमें यह भी ख्याल रहना चाहिए कि कठिनाइयाँ स्थायी नहीं होतीं, शाश्वत नहीं होतीं । अन्ततः साहस के आगे घुटने टेक देती हैं, दम तोड़ देती हैं । इसलिए मैं आप सभी से कहना चाहता हूँ कि परिस्थितिवाद को अपने चितन, आस्था और पुरुषार्थ पर हावी न होने दें । अणुव्रत आंदोलन, जिसकी चर्चा मैंने अभी की, इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए आपका पथ-दर्शन कर सकता है ।

राजलदेसर

५ जनवरी १९५८

## अध्यापकों का जीवन बोलता चित्र हो

### विद्यार्थियों के जीवन-निर्माता

आज राष्ट्र के समक्ष अनेक करणीय कार्य हैं। उनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण और आवश्यक करणीय कार्य है—राष्ट्र के भावी कर्णधारों का जीवन-निर्माण, विद्यार्थियों को सुसंस्कारित बनाना। जब तक विद्यार्थियों का जीवन विनय, नम्रता, सदाचार आदि गुणों से संपन्न नहीं होगा, तब तक राष्ट्र विकास की राह पर अग्रसर हो सकेगा, इसमें मुझे सदेह है। प्रश्न होगा, विद्यार्थियों के जीवन-निर्माण की जिम्मेवारी किसकी है? यों तो माता-पिता, घर-परिवार और पास-पड़ोस सभी की यह जिम्मेवारी है, पर सर्वाधिक जिम्मेवारी है अध्यापकों की। वे ही वस्तुतः उनके जीवन-निर्माता हैं। इस स्थिति में उनके लिए आवश्यक है कि उनका जीवन विद्यार्थियों के लिए एक बोलता चित्र हो। सैकड़ों पुस्तकें पढ़ लेने पर भी एक विद्यार्थी को उतना ज्ञान नहीं हो सकता, जितना कि उसे अध्यापकों के जीवन एवं जीवन-व्यवहार से हो सकता है। इसका कारण बहुत स्पष्ट है। विद्यार्थियों का मानस अनुकरण-प्रधान होता है। वे जैसा आचरण और व्यवहार दूसरों को करते हुए देखते हैं, वैसा ही आचरण स्वयं भी करने लगते हैं। इसलिए मैं अध्यापकों से कहना चाहता हूँ कि वे अपनी इस जिम्मेवारी के प्रति गम्भीर बनते हुए सबसे पहले अपना स्वयं का जीवन निर्मित करें। जिसका स्वयं का जीवन निर्मित नहीं है, वह दूसरों का निर्माण कैसे कर सकेगा। निर्मित ही दूसरों का निर्माण कर सकता है। अध्यापक इस व्याप्ति को हृदयंगम करें कि उनका अपना निर्माण ही विद्यार्थियों का निर्माण है और विद्यार्थियों का निर्माण ही समाज और राष्ट्र का निर्माण है।

### शिक्षाप्रणाली दोषमुक्त बने

कई बार यह प्रश्न सामने आता है कि विद्या का सही उद्देश्य क्या है? विद्या का सही उद्देश्य है—आत्म-ज्ञान की उपलब्धि। प्राचीन ऋषि-महर्षियों ने उस विद्या को विद्या नहीं माना है, जो आत्म-संवेदन से परे है, आस्तिकता से परे है। परन्तु यह कितने गंभीर चिंतन की बात है कि आज विद्या के

अध्यापकों का जीवन बोलता चित्र हो

स्थान पर अविद्या तथा आस्तिकता के स्थान पर नास्तिकता पनप रही है, व्यापक फैलाव पा रही है। जिज्ञासा की जा सकती है कि इसका कारण क्या है? इसका मुख्य कारण है—शिक्षा-प्रणाली का दोषपूर्ण होना। आज की शिक्षा विद्यार्थियों को विनय, नम्रता, अनुशासन, सत्य, नीति-निष्ठा, प्रामाणिकता जैसी बातों का पाठ नहीं पढ़ाती। इसीका यह दुष्परिणाम है कि विद्यार्थी आगे चलकर उच्छृंखल और उदंड बन जाते हैं। भूठ, फरेब, चोरी जैसी दुष्प्रवृत्तियों में फंसकर अपने जीवन को बर्बाद करते हैं। इसलिए इस बिन्दु पर गंभीरता से चिंतन करने की बात मैंने कही, जिससे कि शिक्षा-प्रणाली को दोषमुक्त बनाया जा सके।

अपेक्षित है श्रद्धा और तर्क का संतुलन

अध्यापकों एवं विद्यार्थियों से एक बात विशेष रूप से कहना चाहता हूँ। वे अपने जीवन में श्रद्धा को प्रश्रय दें। श्रद्धा में अद्भुत शक्ति होती है। पर इस शक्ति का अनुभव वे तभी कर पाएंगे, जब वे स्वयं श्रद्धाशील बनेंगे। अलबत्ता मैं तर्क का एकान्ततः विरोधी नहीं हूँ। तर्क भी ज्ञान-प्राप्ति में बहुत सहयोगी और आवश्यक तत्व है। पर उसकी एक सीमा है। उसका अतिक्रमण घातक है, भटकानेवाला है। यही बात श्रद्धा के क्षेत्र में भी लागू होती है। इसलिए मैं अन्ध-श्रद्धा का भी विरोधी हूँ। मैं आशा करता हूँ, अध्यापक और विद्यार्थी दोनों ही इस बिन्दु पर अपना ध्यान केन्द्रित कर श्रद्धा एवं तर्क का संतुलन कायम करेंगे।

राजलदेसर

८ जनवरी १९५८

## गरीब कौन ?

महापुरुषों के प्रति आकर्षण क्यों ?

महापुरुष सार्वजनीन होते हैं। किसी वर्ग या जाति-विशेष की सीमा में बंधकर वे नहीं रहते। हालांकि लोग उन्हें अपने-अपने वर्ग, जाति और सम्प्रदाय की संकीर्ण सीमाओं में बांधकर रखने का असफल प्रयास सदा से करते रहे हैं। आज भी यह प्रयास होता है। पर महापुरुषों के विचार और उपदेश इतने व्यापक होते हैं कि लाख प्रयत्नों के बावजूद वे किसी भी प्रकार की संकीर्ण सीमा में बंधकर रहते नहीं, रह सकते नहीं। अपने इस वैशिष्ट्य के कारण ही वे जन-जन के आकर्षण एवं आस्था के केन्द्र बन जाते हैं। संपूर्ण मानव-जाति की धरोहर बन जाते हैं।

दीनता से छुटकारा

भगवान महावीर एक दिव्य महापुरुष के रूप में आज भी जन-जन की आस्था में जीवित हैं। हम उनके उपकृत हैं, ऋणी हैं। गद्गद भावों से उनकी पुण्य स्मृति करते हैं। उन्होंने हिंसा और शोषण से उत्पीड़ित मानव को अहिंसा और अपरिग्रह का संदेश दिया। आज उनके उसी संदेश को हम दीन लोगों में प्रचारित-प्रसारित करने का कार्य कर रहे हैं। 'दीन' शब्द-प्रयोग से आप चौंके नहीं। मैंने इस शब्द का प्रयोग सुचिन्तित रूप में किया है। 'दीन' की मेरी अपनी एक परिभाषा है। मेरी दृष्टि में दीन वह नहीं, जिसके पास धन नहीं, मकान नहीं, मोटर नहीं, सुख-सुविधा के विभिन्न साधन नहीं। फिर दीन कौन ? दीन वह है, जो चरित्रभ्रष्ट है, नीतिभ्रष्ट है। मानवता को बेचता है, अपने-आप को नीलाम करता है। ऐसे दीन लोग सचमुच करुणा के पात्र हैं। वे लोग अपने इस दारिद्र्य से मुक्त हों, इसके लिए हम सतत प्रयत्नशील हैं। पर हमारा प्रयत्न तभी सफल सिद्ध होगा, जब स्वयं दीनजन अपनी दीनता से मुक्त होने के लिए तैयार हों। मेरा दृढ़ विश्वास है कि भगवान महावीर के अहिंसा और अपरिग्रह के उपदेश को जीवन में धारण कर वे दीनता के अभिशाप से छुटकारा पा सकते हैं।

राजलदेसर

१५ जनवरी १९५८

गरीब कौन ?

## स्याद्वाद का मूल्य

स्याद्वाद जैन दर्शन की जगत् को एक महान् देन है। यह व्यक्ति की सोच को परिष्कृत करता है। उसे एकांगी दृष्टि से बचाकर विविध दृष्टियों एवं अपेक्षाओं से सोचने-देखने का मार्ग प्रशस्त करता है। यह 'यों ही है' इस एकान्तिक पकड़ के स्थान पर 'यों भी है' इस आपेक्षिक तथ्य को सामने रखता है। मेरी दृढ़ मान्यता है, यदि 'ही' के स्थान पर 'भी' को लोग काम लेना शुरू कर दें तो दुनिया का रूप ही बदल जाए। व्यक्ति-व्यक्ति, परिवार-परिवार, समाज-समाज, प्रान्त-प्रान्त, सम्प्रदाय-सम्प्रदाय, राष्ट्र-राष्ट्र के बीच परस्पर चलनेवाला संघर्ष-वैमनस्य बहुत सहजता से समाप्त किया जा सकता है। हम इस बात को समझे कि किसी भी स्तर पर परस्पर चलनेवाले संघर्ष, विवाद या वैमनस्य के केन्द्र में एकान्तिक आग्रह काम करता है। 'ही' काम करता है। 'ही' के स्थान पर 'भी' को स्वीकार करने का फलितार्थ यह होता है कि संघर्ष, विवाद और वैमनस्य की जड़ ही कट जाती है, उसका आधार ही हिल जाता है, कारण ही समाप्त हो जाता है। जब कारण ही समाप्त हो जाए, तब कार्य—परिणाम का अस्तित्व ही कैसे रह सकता है।

परन्तु मुझे लगता है, यह सिद्धान्त केवल सिद्धान्त के स्तर पर ही रहा है, जीवन-व्यवहार के स्तर पर इसका उपयोग नहीं के बराबर ही हुआ है। औरों की बात तो हम एक बार छोड़ें, स्वयं जैन लोगों का जीवन भी इसके अनुरूप नहीं ढला है। अन्यथा क्या यह संभव है कि वे पारस्परिक कलह, विवाद और वैमनस्य के दलदल में फंसे रहें? छोटी-छोटी बात के लिए कोर्ट-कचहरियों के चक्कर लगाते रहें? जैन लोगों को इस बारे में गंभीरता से ध्यान देकर अपनी चिन्तन शैली एवं जीवन-शैली को मोड़ देना चाहिए। इससे भी आगे मैं तो पूरे मानव-समाज से कहना चाहता हूँ कि वह भगवान महावीर के इस महान् सिद्धान्त को जाने, आत्मसात् करे और उसके अनुरूप अपने-आप को ढालने का प्रयत्न करे, जिससे कि पारस्परिक समन्वय-सामंजस्य की भावना विकसित हो पाए, सह-अस्तित्व एवं विश्व-मैत्री की बात साकार रूप ले सके।

लाडनूँ

२२ जनवरी १९५८



## प्रेरणा का प्रसंग

### सेवा निर्जरा का महान् हेतु है

जैन शासन में वैयावृत्य—सेवा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सेवा करने वाला साधक स्वयं तो निर्जरा का महान् लाभ कमाता-ही-कमाता है, साथ ही जिसकी सेवा करता है, उसकी चित्त-समाधि में भी बहुत बड़ा निमित्त बनता है। शास्त्रों में बताया गया है कि आचार्य, वृद्ध, ग्लान, शैक्ष आदि की सेवा करने वाला उत्कृष्ट परिणाम में तीर्थंकर नाम कर्म का बन्ध तक कर सकता है। ख्याल रहे, तीर्थंकर नाम कर्म पुण्य की उत्कृष्ट प्रकृति है। चूंकि पुण्य का बंधन निर्जरा के साथ ही होता है, इसलिए इससे यह बात बहुत सहजतया समझी जा सकती है कि सेवा से कितनी महान् निर्जरा होती है। प्रासंगिक तौर पर इतना और स्पष्ट कर देना आवश्यक समझता हूं कि साधक सेवा पुण्यार्जन के लिए नहीं, बल्कि मात्र निर्जरा के लिए करे। पुण्य-बंधन की कामना करना तो अपने आप में पाप-बंधन का हेतु है। हमारे आत्मार्थी साधु और साध्वियां इस तथ्य को बहुत अच्छी तरह से समझते हैं, इसलिए वे ऐसी भूल कैसे कर सकते हैं।

### सेवा-व्यवस्था का सजीव उदाहरण

लाङ्गनू हमारे धर्मसंघ का सेवाकेन्द्र है। यहां संघ की वृद्ध, ग्लान एवं अशक्त साध्वियों को रखा जाता है और उनकी सेवा-व्यवस्था की जाती है। हमारे धर्मसंघ में वृद्ध, ग्लान एवं अशक्त साधु-साध्वियों की परिचर्या और सार-संभाल कितनी तत्परता, जागरूकता एवं दायित्वपूर्ण ढंग से होती है, इसका यह एक जीवन्त निदर्शन है। सौ वर्षों से चल रहे इस सेवाकेन्द्र में जिन-जिन को भी सेवा का दायित्व संभलाया गया, उन्होंने बड़ी लगन, निष्ठा एवं तन्मयतापूर्वक उसे निभाया है, इस बात की मुझे सात्त्विक प्रसन्नता है। इतना ही नहीं, साध्वियां सेवाकेन्द्र में अपनी नियुक्ति के लिए मुझसे अत्यन्त विनय-नम्रतापूर्ण निवेदन और आग्रह करती रहती हैं। यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि हमारी साध्वियों के मन में सेवा के प्रति अत्यधिक उत्साह और उत्सुकता है।

### प्रेरणा का प्रसंग

संघ का आचार्य होने के नाते मेरा भी दायित्व है कि मैं यहां रहने वाली वृद्ध, अशक्त एवं ग्लान साध्वियों की सेवा की समुचित व्यवस्था का ध्यान रखूं। इसलिए मैं सेवाकेन्द्र में सेवा देनेवाली साध्वियों की मात्र नियुक्ति ही नहीं करता, अपितु सेवा समुचित ढंग से हो रही है या नहीं, इसका भी ख्याल करता हूं। जब कभी मैं लाडनूं आता हूं तो स्वयं उन वृद्ध, ग्लान एवं अशक्त, साध्वियों-माताओं से पूछता हूं—‘आपको यहां कोई असुविधा और कष्ट तो नहीं है? आपकी सेवा-परिचर्या अच्छे ढंग से तो होती है?’ मेरे द्वारा इतना-सा पूछे जाने मात्र से वे साध्वियां गद्गद हो जाती हैं और कहती हैं—‘हमें ये साध्वियां (सेवा में नियुक्त) अपने हाथों में थुकाती हैं। अत्यंत जागरूकता एवं जिम्मेवारी के साथ हमारे सुख-दुःख का ध्यान रखती हैं, बड़ी आत्मीयता से हमारी सेवा-परिचर्या करती हैं। हमें यहां नन्दन-वन जैसा आनंद है। हमारा संयम-जीवन अत्यंत आत्म-समाधि के साथ बीत रहा है।……’

यहां उल्लेखनीय बात यह है कि उनके कथन में कहीं कोई कृत्रिमता और औपचारिकता का आभास नहीं होता। सुनने-देखने वालों को ऐसा अनुभव होता है कि ये मुंह से नहीं, बल्कि हृदय से बोल रही हैं। ऐसी स्थिति जब मैं देखता हूं तो मुझे इस बात का बहुत तोष होता है कि हमारी सेवा करनेवाली साध्वियां अपनी सेवा-जिम्मेवारी को बहुत अच्छे ढंग से निभा रही हैं। इससे वे स्वयं तो लाभान्वित होती-ही-होती हैं, वृद्ध, ग्लान साध्वियों की चित्त-समाधि में भी बहुत बड़ी निमित्त बनती हैं। इसके साथ ही संघ की बहुत अच्छी प्रभावना भी होती है।

लाडनूं सेवाकेन्द्र का यह सुनहरा इतिहास सभी के लिए अत्यंत प्रेरक है। तैरापंथ धर्मसंघ के आदर्श अनुशासन, संगठन एवं सेवा-व्यवस्था का सजीव उदाहरण है। मैं चाहता हूं, हमारी साध्वियां सेवाकेन्द्र की इस गौरवशाली परंपरा को अक्षुण्ण रखने के प्रति सदैव जागरूक रहें।

लाडनूं

२६ जनवरी १९५८

## अध्यात्म और नैतिक शिक्षा की उपादेयता

शिक्षा-प्रणाली दोषपूर्ण है ?

राष्ट्र के कर्णधारों एवं हित-चिंतकों के मन में इस बात की बड़ी चिंता है कि अनेक-अनेक प्रयत्नों के बावजूद भी विद्यार्थियों के सही निर्माण का मार्ग प्रशस्त नहीं हो रहा है। उनमें अपेक्षित परिवर्तन की दिशा उद्घाटित नहीं हो पा रही है। ऐसा माना जा रहा है कि आज की शिक्षा-पद्धति दोषपूर्ण है। वही इस स्थिति के लिए उत्तरादायी है। इसलिए यह स्वर भी चारों ओर से उठ रहा है कि इस दोषपूर्ण शिक्षा-पद्धति को हर हालत में बदला जाना चाहिए। एक अपेक्षा से बात सही भी है। पर सारा-का-सारा दोष या जिम्मेवारी इसी पर नहीं डाली जा सकती। अलबत्ता इसे मुख्य कारण कहा जा सकता है। यह बहुत स्पष्ट है कि आज की चालू शिक्षा-पद्धति हमारी भारतीय संस्कृति के अनुकूल नहीं है। उस पर उस पाश्चात्य संस्कृति का अनपेक्षित/अवांछित प्रभाव आ गया है, जो भारतीय मस्तिष्क के अनुकूल नहीं है।

समाधान की दिशा

भारतवर्ष एक ऐसा देश है, जहां भोग का नहीं, त्याग का महत्व है। असंयम का नहीं, संयम का महत्व है। धनकूबेरों और सत्ताधीशों का नहीं, ऋषि-मुनियों का महत्व है। ऋषि-मुनियों की तपःपूत वाणी का प्रभाव अब भी यहां के वासियों के मन-मस्तिष्क में विद्यमान है। प्रकारान्तर से ऐसा कहा जा सकता है कि अध्यात्म एवं या धर्म यहां के आधारभूत तत्व हैं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जब तक शिक्षा-प्रणाली में अध्यात्म एवं नैतिक शिक्षा को समाविष्ट नहीं किया जाएगा, तब तक मूलभूत समस्याओं का हल नहीं होगा। आध्यात्मिक शिक्षा और नैतिक शिक्षा का मतलब यह नहीं कि बालकों से भगवान के नाम की रट लगवाई जाए। उसका तात्पर्य तो इतना ही है कि बालको को प्रारम्भ से ही ऐसा शिक्षण-प्रशिक्षण प्राप्त हो, जिससे कि वे सत्संस्कारी बनें। उनका जीवन विनय, सदाचार, अनुशासन, सत्यनिष्ठा, संयम व स्वावलंबन से अनुप्राणित बने। ये तत्व उनके जीवन के साथ इस

अध्यात्म और नैतिक शिक्षा की उपादेयता

११

प्रकार आत्मसात् हो जाएं कि उन्हें भारभूत न लगे। इस आधार के बनने से ही आगे कि शिक्षा का मार्ग प्रशस्त होगा। अणुन्नत आन्दोलन विद्यार्थियों के जीवन में अनुशासन, विनय जैसे सत्संस्कारों के बीज-वपन की दिशा में कार्य कर रहा है। स्कूल-स्कूल में इसी कार्य को आगे बढ़ाने के लिए 'अणुन्नत विद्यार्थी परिषद्' तथा अन्य समितियां गठित हुई हैं। यहां भी यह कार्य आगे बढ़े, ऐसी अपेक्षा है। इस अपेक्षा की पूर्ति निश्चित ही न केवल विद्यार्थियों के लिए, अपितु पूरे समाज के लिए बरदान सिद्ध होगी।

डीडवाना

१० फरवरी १९५८

## अभ्युदय की दिशा

### शांति का स्रोत

आज संसार अशान्त है, यह एक प्रकट सचाई है। वह अशान्त क्यों है ? यह किसीसे अज्ञात नहीं है। आज चारों ओर युद्ध की चिनगारियां उछल रही हैं। ये चिनगारियां उसे आक्रान्त बनाए हुई हैं। लोग शान्ति चाहते हैं। वे नहीं चाहते कि युद्ध हो, मानव-संपदा का नाश हो। पर बन्धुओ ! प्रश्न तो यह है, शान्ति कहां से आए ? वह आकाश से तो टपक नहीं सकती, न ही धरती पर खेतों में उग ही सकती है। उसका तो एकमात्र स्रोत व्यक्ति की अपनी आत्मा ही है। उसे वहीं खोजा जा सकता है। और इस बात का मैं भरोसा दिला सकता हूँ कि वहां खोजने से वह अवश्य प्राप्त होगी।

### शत्रु को नहीं, शत्रुता को मिटाया जाए

वैज्ञानिकों ने अणुबमों से शान्ति और सुख-समृद्धि की कल्पना की थी। पर बहुत स्पष्ट है कि उनकी कल्पना मात्र कल्पना ही रही, वह यथार्थ के धरातल नहीं उतर सकी। अगर शांति स्थापित करना है तो अहिंसा, सत्य, नीतिमत्ता, प्रामाणिकता आदि तत्वों का अवलम्बन लेना होगा, मंत्री की धार बहानी होगी। आप देखते हैं, व्यक्ति अपने शत्रु को निगल जाना चाहता है, उसका नामोनिशान मिटा देना चाहता है। पर प्रश्न है, क्या व्यक्ति के सोचने मात्र से शत्रु मिट जाएगा ? नहीं मिटेगा। एक मिटेगा, दूसरा पैदा हो जाएगा। दूसरा मिटा और तीसरा पैदा हो जाएगा। और यह क्रम आगे-से-आगे चलता रहेगा। इसका तात्पर्य यह हुआ कि हिंसा के माध्यम से शत्रु को नहीं मिटाया जा सकता। स्थायी रूप से शत्रु को मिटाने के लिए अहिंसक तरीका ही कारगर सिद्ध हो सकता है। प्रकारांतर से इस बात को यों कहा जा सकता है कि शत्रु को नहीं, शत्रुता को मिटाने का प्रयास होना चाहिए, मिटाना चाहिए। रोगी को नहीं, रोग को मिटाया जाना चाहिए। अगर रोग मिट गया तो रोगी रहेगा ही कौन। अगर शत्रुता मिट गई तो शत्रु का अस्तित्व ही कैसे रहेगा।

## अहिंसा का उज्ज्वल भविष्य

बन्धुओ ! अहिंसा की दिशा में आगे बढ़ने के संदर्भ में मेरी परिकल्पना और आशा तो यह है कि वह भी एक दिन आएगा, जब फांसी क्या, जेल की भी सजा नहीं होगी । कोई अपराध करेगा तो उसे दण्ड देने के बनिस्पत ऐसे स्थान में रखा जाएगा, जहाँ उसे अपने अपराध—अनुचित कार्य न करने की प्रेरणा और शिक्षा प्राप्त होगी । मैं अहिंसा के उज्ज्वल भविष्य के प्रति अत्यंत आशान्वित हूँ, क्योंकि इसके समर्थन में एक व्यापक वातावरण तिमित हुआ है । चारों ओर से यह आवाज उठ रही है कि अहिंसा का अधिक-से-अधिक प्रचार-प्रसार होना चाहिए । अणुव्रत आंदोलन अहिंसक तरीकों से स्वस्थ समाज-निर्माण का कार्य कर रहा है । नशाबंदी, मिलावट-निषेध एवं रिश्वत-निषेध—इन तीन दिशाओं में इस बार विशेष कार्य किये जाने का निर्णय किया गया है । इन तीनों कार्यक्रमों को सफलता मिलती है तो अप्रत्यक्ष रूप से समाज के अभ्युदय को एक सुदृढ़ आधार प्राप्त होगा । आन्दोलन के कार्य में नई गति तो आएगी-ही-आएगी । आप से अपेक्षा है कि आप जीवन-विकासी इस कार्यक्रम के साथ जुड़ें, अवश्यमेव जुड़ें ।

डीडवाना

१० फरवरी १९५८

## दीक्षा : संयममय जीवन का मंगलाचरण

### दीक्षा का माहात्म्य

आज आपके बोरावड़ में दीक्षा का कार्यक्रम है। दीक्षा भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण संस्कार है। दीक्षा गृहस्थ-जीवन की समाप्ति और साधु-जीवन की शुरुआत है। असंयम-जीवन की समाप्ति और संयममय जीवन का मंगलाचरण है। कुछ लोग कह देते हैं कि दीक्षित जीवन एक कारागार है। उन लोगों से मैं कहना चाहता हूँ कि वे इस विषय पर पुनर्विचार करें। यदि गहराई से वे ध्यान देंगे तो उन्हें अनुभव होगा कि दीक्षित जीवन तो उन्मुक्त राजपथ है। इस राजपथ पर कदम बढ़ाने वाला अनिर्वचनीय सुख और शान्ति की मंजिल को प्राप्त होता है। यह वासनाओं के दल-दल से सर्वथा निर्लिप्त है। स्वार्थों की चकमक से अप्रतिहत है। वैमनस्य और शत्रुभाव के शोलों से अदग्ध है। क्लेश और कदाग्रह से अछूता है। दूसरे शब्दों में साधु-जीवन सात्विकता का जीवन्त रूप है, मानवता के चारित्रिक विकास की एक अनुपम यात्रा है। अपेक्षा है, सभी लोग इसका यथार्थ मूल्यांकन करने का प्रयत्न करें।

### प्रेरणा का प्रसंग

बन्धुओ! आज जबकि अहिंसा, सत्य, अचीर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के प्रति व्यापक अनाकर्षण का भाव दिखाई दे रहा है, एक युवक महाव्रतों के रूप में इन्हें निभाने का संकल्प ले रहा है। एक तरफ जहाँ यह जनभाषा बन गई है कि भूठ के बिना जीवन जीया ही नहीं जा सकता, वहाँ एक युवक यावज्जीवन के लिए भूठ बोलने का परित्याग कर रहा है। क्या यह आप लोगों के लिए प्रेरणा लेने की बात नहीं है? क्या बच्चे, क्या युवक, क्या बूढ़े, क्या पुरुष, क्या महिलाएं सभी को यह आत्मालोचन करना है कि हमारे में कौन-कौन-सी बुराइयाँ हैं? उन सब बुराइयों को या उनमें से कुछेक बुराइयों को हमें अवश्य छोड़ना है। महाव्रतों की दीक्षा नहीं ले सकते तो क्या, अणुव्रतों की दीक्षा तो ले ही सकते हैं।

अणुव्रतों को स्वीकार करने का अर्थ है अहिंसा, सत्य आदि का

आंशिक रूप में स्वीकरण । इस स्वीकरण के लिए आपको गृहत्याग करना आवश्यक नहीं है, परिवार से नाता तोड़ना जरूरी नहीं है, व्यापार-व्यवसाय को छोड़ना जरूरी नहीं है । आप घर-परिवार और समाज की सीमा में रहते हुए तथा अपने दायित्वों को अच्छे ढंग से निभाते हुए अणुव्रती बन सकते हैं । यह अणुव्रतों की दीक्षा या व्रतों का आंशिक स्वीकरण भी एक सीमा तक आपके जीवन के लिए सुख और शांति का सशक्त आधार बनेगा । आप अपने जीवन की सार्थकता अनुभव कर सकेंगे ।

बोरावड़

१४ फरवरी १९५८



## धर्म जीवन-व्यवहार का तत्त्व बने

धर्म सुख और शान्ति से जीने का एकमात्र साधन है, आधार है। पर आज वह अपनी इस गुणात्मकता को साबित नहीं कर पा रहा है। करे भी तो कैसे? उसका स्वरूप विकृत हो गया है। वह आज ग्रन्थों और पंथों में जकड़ा पड़ा है। धर्मस्थानों की शोभा बढ़ा रहा है। जीवन और जीवन-व्यवहार से उसका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं रहा है। इससे धर्म और व्यवहार के बीच एक गहरी खाई-सी बन गई है। व्यक्ति धर्म-स्थान में जाकर वीतरागता का भाव दिखाता है पर घर, ऑफिस और दुकान में लड़ाई-झगड़े करता है, धोखाधड़ी कर ग्राहकों को ठगता है, शोषण करता है। ऐसा कहना चाहिए कि वह अपनी धार्मिकता को उतार कर खूटी पर टांग देता है। आप ही बताएं, ऐसी धर्मारोधना फलदायी कैसे हो सकती है? इस स्थिति में यथाशीघ्र परिवर्तन अपेक्षित है। दूसरे शब्दों में कहें तो धर्म के क्षेत्र में आज क्रांति करने की अपेक्षा है, जिसके फलस्वरूप धर्म केवल उपासना का तत्त्व न रहे, वह ग्रन्थों, पंथों और धर्म-स्थानों के घेरे से बाहर निकलकर जन-जन के जीवन-व्यवहार में स्थान प्राप्त कर सके, उसके आचरण का हिस्सा बन सके। ऐसी स्थिति में ही वह अपनी सही प्रतिष्ठा को प्राप्त कर सकेगा, अपनी गुणात्मकता को सिद्ध कर पाएगा, जन-जन के लिए सुख और शान्ति का निर्विकल्प साधन और आधार बन सकेगा। जब तक यह स्थिति नहीं बनती है, उसकी गुणात्मकता के आगे लगे प्रश्नचिह्न को नहीं हटाया जा सकता। अणुव्रत आन्दोलन, जिसका अभियान हमने पूरे राष्ट्र में छेड़ रखा है, धर्म को जीवन के व्यावहारिक धरातल पर उतारने का एक उपक्रम है। इसके छोटे-छोटे संकल्पों को अंगीकार कर व्यक्ति सही अर्थ में धार्मिक कहलाने का अधिकारी बन सकता है।

जयपुर

२६ फरवरी १९५८

## ज्ञान की सार्थकता कब ?

मैं विद्यार्थी हूँ

ज्ञान अनन्त है, असीम है, जबकि जीवन के क्षण सान्त हैं, ससीम हैं। इस स्थिति में उसकी साधना-आराधना में व्यक्ति का पूरा जीवन खप सकता है। इस अपेक्षा से व्यक्ति जीवनभर विद्यार्थी है। मैं अपने-आप को एक विद्यार्थी ही मानता हूँ। यही कारण है कि विद्यार्थियों के बीच आकर मुझे सहज प्रसन्नता की अनुभूति होती है। उपस्थित विद्यार्थियों से भी कहना चाहता हूँ कि आप भी अपने को जीवन भर विद्यार्थी ही बनाये रखने का संकल्प संजोएँ। हाँ, इसके लिए आपको अपनी ज्ञान-यात्रा सतत चालू रखनी होगी।

सदाचारशून्य ज्ञान जड़ है

भारतीय जीवन में ज्ञानाराधना की अमिट लौ सदा से जलती रही है। अन्तर् जीवन के अनेक गंभीर रहस्यों का उद्घाटन इस विद्या के अनुशीलन से ही संभव बन सका है। उन रहस्यों से न केवल भारतीय समाज, अपितु पूरा मानव-समाज लाभान्वित हो रहा है। पर इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन विद्यालब्ध तत्त्वों पर अपने जीवन-व्यवहार को टिकाए रखने की दृष्टि से आप जागरूक रहें। मैं मानता हूँ, ज्ञान की सही साधना यही है। दूसरे शब्दों में इसे चेतनज्ञान या चेतनशिक्षा कह सकते हैं। मेरी दृष्टि में वह ज्ञान जड़ है, वह शिक्षा व्यर्थ है, जो सदाचरण से शून्य है। तत्त्वतः ज्ञान अपने आप में प्रकाशपुंज है। जब वह चेतनात्मक बनता है, तभी व्यवहार्य एवं उपयोगी बनता है। मैं चाहूँगा, विद्यार्थी इस अमर तत्त्व को हृदयंगम करते हुए चेतनज्ञान की उपलब्धि के लिए यत्नशील हों। उनकी यह यत्नशीलता और जागरूकता ही उन्हें अपने जीवन की सार्थकता प्रदान करेगी।

राष्ट्र-विकास की बाधा

आज राष्ट्र की स्थिति कैसी है, यह किसी से छुपा नहीं है। कितने खेद की बात है कि आज अन्य देशों की तुलना में भारत के लोगों का

व्यावहारिक जीवन कम प्रामाणिक है। मैंने सुना है, पश्चिमी देशों में ऐसी व्यवस्था सुचारु रूप से चलती है कि लोग पैसे डाल जाते हैं और अखबार ले जाते हैं। दुकान पर कोई व्यक्ति उपस्थित नहीं रहता। शाम को हिसाब मिलाने पर एक पैसा भी कम नहीं होता। यह इस बात की संसूचना है कि वहां के लोगों में नैतिकता के संस्कार पुष्ट हैं। उनमें राष्ट्रीय भावना जागृत है। उनके किसी कार्य से राष्ट्र का अहित न हो जाए, इस दृष्टि से वे जागरूक रहते हैं। पर भारतवर्ष की स्थिति इससे भिन्न है। यहां इस राष्ट्रीय भावना का विकास अब तक सही ढंग से नहीं हो पाया है। यह राष्ट्र के विकास में एक बड़ी बाधा है। यदि राष्ट्र का भविष्य उज्ज्वल बनाना है तो इस बाधा को समाप्त करना होगा। प्रश्न है, इस बाधा को दूर कैसे किया जाए? चूंकि भारतीय संस्कृति अध्यात्मप्रधान संस्कृति है, इसलिए यहां के लोगों के दिलों में अध्यात्म और धर्म की एक छाप है, उसका प्रभाव है। इस स्थिति में मेरा विश्वास है कि अध्यात्म और धर्म को जीवन-व्यवहार के साथ जोड़कर इस बाधा को दूर किया जा सकता है। पर ध्यान रहे, धर्म से मेरा तात्पर्य उस रूढ़िगत धर्म से नहीं है, जो केवल उपासना और क्रियाकांडों तक ही सीमित हुआ रहता है। जीवन-व्यवहार को छूता तक नहीं। मैं मानता हूं, धर्म का यह तथाकथित स्वरूप ही वह हेतु है, जिसे देखकर पाश्चात्य विद्वानों ने उसे अफीम की गोली तक कह दिया। अतः उपस्थित विद्यार्थियों से मेरा आग्रह है कि आप प्रारम्भ से ही अहिंसा, सत्य, शील, संतोष, विनय, आत्मानुशासन, सादगी, स्वावलम्बन जैसे धर्म के मौलिक तत्त्वों से जीवन-व्यवहार को अनुप्राणित करने का प्रयास करें। इससे आपका स्वयं का जीवन तो स्वस्थ बनेगा ही, राष्ट्र के भविष्य को संवारने में भी निर्णायक भूमिका निभा सकेंगे।

जयपुर

२६ फरवरी १९५८

## अणुव्रत-आन्दोलन का लक्ष्य\*

भौतिक विकास के साथ नैतिक विकास का संतुलन रहे तो अशान्ति उभरती नहीं। परन्तु जब जीवन का आध्यात्मिक पक्ष दुर्बल होता है तो पग-पग पर अशान्ति का अनुभव होने लगता है। आज जो भय, संदेह और अशान्ति का बोलबाला है, उसका कारण आध्यात्मिक पक्ष का दुर्बल होना ही है। अणुव्रत-आन्दोलन का लक्ष्य है—आध्यात्मिक भावना को जगाना।

वैयक्तिक, सामाजिक और राजनैतिक जीवन के सभी पक्षों में विकार घुस आये हैं। अणुव्रत-आन्दोलन जीवन के इन पक्षों को मिटाने की बात नहीं कहता। वह तो कहता है कि इनमें जो अप्रामाणिकता और विकृति है, उसे मिटाने का यत्न किया जाये। चरित्र-विकास के बिना कोई भी समाज और राष्ट्र उन्नत नहीं हो सकता। भारत का राष्ट्रीय चरित्र कैसा है—यह एक प्रश्न है। इसका उत्तर प्रत्येक भारतीय को देना है। यहां के लोग दर्शन की बहुत ऊंची-ऊंची बातें करते हैं। सैद्धांतिक गौरव की चर्चा में भी बहुत आगे बढ़े हुए हैं। किन्तु आचरण की गहराई उतनी नहीं है, जितनी कि हांनी चाहिए। ये जो विचार और आचार 'कथनी और करनी' की खाई है, उसे पाटने के लिये हमें सामूहिक प्रयत्न करना है। धर्मस्थान में धर्म की उपासना और कार्यक्षेत्र में उसकी पूर्ण विस्मृति, यह विपर्यास है। इसी कारण धर्म बदनाम हो रहा है। अणुव्रत-आन्दोलन का लक्ष्य है कि यह विपर्यास मिटे। बुद्धिवादी लोग धर्म के मौलिक तत्व—अहिंसा, सत्य और अपरिग्रह के प्रति निष्ठावान बन सकें, इसलिए उनके सामने धर्म का व्यावहारिक रूप प्रस्तुत करना भी आन्दोलन का एक लक्ष्य है। मुझे यह बताते हुए प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है कि इस दिशा में अच्छी गति से कार्य हो रहा है। मैं इस बात से भी अत्यन्त उत्साहित हूँ कि लगभग सभी संप्रदाय के लोगों ने इसे समानरूप से अपनाया है। अणुव्रत-आन्दोलन के प्रचार-प्रसार के लिये हमने यह तीसरी लम्बी यात्रा की है। इस वर्ष हमने आन्दोलन का एक विशेष कार्यक्रम चुना है। मद्य-निषेध, मिलावट-निषेध और

---

\*प्रेस-कान्फ्रेंस में प्रदत्त वक्तव्य।

रिश्वत-निषेध --इन तीनों का सामूहिक प्रसार करना है। पर इस प्रयास की सफलता तभी संभव है, जब सभी स्तर पर लोगों का सहयोग प्राप्त हो। जो लोग अणुव्रत-आन्दोलन के प्रति आशावान हैं, उन सबसे मेरा यह अनुरोध है कि वे इस कार्यक्रम में अपना-अपना योग दें। जिनमें ये विकार हैं, वे उन्हें छोड़कर और जिनमें ये नहीं हैं, वे दूसरों को छोड़ने की प्रेरणा देकर या वैसा प्रयत्न करके ही अपना योग दे सकते हैं।

जयपुर

२८ फरवरी १९५८

## जैन दर्शन

### जैन दर्शन का वैशिष्ट्य

जैन दर्शन संसार का एक महान् और प्रमुख दर्शन है। अहिंसा, अपरिग्रह आदि धर्म के मौलिक तत्त्वों के बारे में जैसी सूक्ष्मता एवं गहराई से इस दर्शन में विचार हुआ है, वैसा अन्यत्र प्राप्त नहीं होता। इस दर्शन का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य यह है कि यह एक आत्मकर्तृत्ववादी दर्शन है। यह कहता है कि सुख-दुःख की कर्ता आत्मा है। कोई भी दूसरा अन्य व्यक्ति इसके लिए जिम्मेवार नहीं है। और तो क्या, भगवान का भी इसमें कोई हस्तक्षेप नहीं होता। व्यक्ति सत्-असत् जैसी प्रवृत्ति करता है, उसी के अनुरूप वह सुख-दुःख को प्राप्त करता है। इसी प्रकार यह कहता है कि सुख-शान्ति का अक्षय कोष अपनी आत्मा ही है। जैसे-जैसे हमारी आत्मा विशुद्ध बनती जाती है, वैसे-वैसे वह अक्षय कोष प्रकट होने लगता है। भौतिक पदार्थों या भोग-विलास में सुख-शान्ति को खोजना मात्र मृगमरीचिका है। वहां सुख कहां, मात्र सुखाभास है, जो कि व्यक्ति को भ्रान्त बनाये रखता है। जैन दर्शन के अनुसार भयंकर-से-भयंकर किसी युद्ध को जीतना जितना दुष्कर नहीं, उतना दुष्कर एक अपनी आत्मा का जीतना है। इसलिए वह आत्म-विजय को परम विजय मानता है। ये सारी बातें व्यक्ति को आत्मोन्मुख बनने के लिए प्रेरित करती हैं।

### अनेकान्त का मूल्य

अनेकान्तवाद के रूप में जैन दर्शन ने विश्व को एक ऐसा सिद्धांत दिया है, जो व्यक्ति का अनन्त सत्य की यात्रा पर प्रस्थित करता है। इस सिद्धांत को स्वीकार कर व्यक्ति विरोधी-से-विरोधी विचारों में भी सामंजस्य का सूत्र खोज सकता है। व्यक्ति से लेकर अन्तरराष्ट्रीय स्तर तक के जितने भी विवाद हम देखते हैं, उनका सुन्दर समाधान इस सिद्धांत के माध्यम से बड़ी सहजता से निकाला जा सकता है।

संकीर्ण सांप्रदायिकता को दूर हटाएं

जैन दर्शन की एक बड़ी विशेषता यह भी है कि इसके सिद्धांत अत्यंत

मनोवैज्ञानिक हैं। पर कुछेक कारणों से इसका प्रचार-प्रसार बहुत कम हुआ है। इस कारण लोग इसके बारे में तथ्यपरक जानकारी बहुत कम रखते हैं। मैं इसके लिए सबसे अधिक जिम्मेवार स्वयं जैन लोगों को ही मानता हूँ। उन्होंने इस बिंदु पर गंभीरता से चिंतन और योजनाबद्ध ढंग से कार्य किया ही नहीं। और करें भी तो कैसे? उन्होंने अपने दिमाग को संकीर्ण साम्प्रदायिकता से जकड़ रखा है। मैं जब से जयपुर आया हूँ, इस शहर की बसावट से अत्यंत प्रभावित हूँ। विशेषतः यहां की लम्बी-चौड़ी विशाल सड़कों ने मुझे प्रभावित किया है। इन सड़कों को देखकर कई बार मन में चिंतन आता है, क्या ही अच्छा होता कि लोग अपने दिल और दिमाग को इन सड़कों की तरह विशाल बनाते। अब भी समय है कि जैन लोग इस बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित कर अपनी संकीर्ण साम्प्रदायिकता से मुक्त बनें। इसके लिए उन्हें पंचसूत्रीय कार्यक्रम अपनाना होगा। पांच सूत्र ये हैं—

१. मंडनात्मक नीति बरती जाए। अपनी मान्यता का प्रतिपादन किया जाए। दूसरों पर लिखित या मौखिक आक्षेप न किया जाए।
२. दूसरों के विचारों के प्रति सहिष्णुता रखी जाए।
३. दूसरे सम्प्रदायों और उनके अनुयायियों के प्रति घृणा तथा तिरस्कार की भावना का प्रचार न किया जाए।
४. कोई सम्प्रदाय-परिवर्तन करे तो उसके साथ सामाजिक वहिष्कार आदि अवांछनीय व्यवहार न किया जाए।
५. धर्म के मौलिक तत्व—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को जीवनव्यापी बनाने का सामूहिक प्रयत्न किया जाए।

मैं मानता हूँ, यदि इन पांच सूत्रों को हृदय से अपनाया जाता है तो संकीर्ण सांप्रदायिकता की भावना समाप्त होकर जैन एकता का सुंदर वातावरण निर्मित हो सकेगा। इसका सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि जैनों की आवाज में एक बल आ जाएगा। महावीर के सिद्धांतों का वे प्रभावी ढंग से प्रचार-प्रसार कर सकेंगे। जैन शासन की यह बहुत महत्त्वपूर्ण सेवा होगी।

जयपुर

१ मार्च १९५८

## अणुव्रत आन्दोलन : आध्यात्मिक आन्दोलन

मेरा दिमाग बिलकुल खुला है

अणुव्रत-आन्दोलन अहिंसा के आधार पर चल रही एक आध्यात्मिक आयोजना है। इसे लेकर मैंने, मेरे साधु वर्ग ने, साध्वी वर्ग ने कार्य किया और कर रहे हैं। लोगों ने इसे समझा, इसको प्रसिद्धि भी मिली, देश के बौद्धिक वर्ग ने इसे खूब बढ़ावा भी दिया। यह स्थिति देखकर मेरे मन में कई बार विचार उठता है, कहीं यह कम पसीने की कमाई तो नहीं है? कहीं अतिरंजन ख्याति तो नहीं है? और इसके साथ ही मैं अन्तर्-अवलोकन में खो जाता हूँ, सूक्ष्म आत्मालोचन करता हूँ। इन क्षणों में मुझे प्रतिभासित होता है, अन्तर् आत्मा से आश्वस्ति का स्वर सुनाई पड़ता है—नहीं, यह कम पसीने की कमाई नहीं है, अतिरंजन ख्याति नहीं है। काम हुआ है, हो रहा है। देश में वैचारिक जागृति पनपी है, पनप रही है। उसी के कारण इसके प्रति लोग आशाभरी नजरों से निहार रहे हैं। फिर जब-कभी मैं समालोचना सुनता हूँ तो मुझे क्षोभ नहीं, बल्कि संतोष होता है कि चलो चिंतन का एक अवसर मिला। मैं पुनः सोचूँ। और मैं सोचता भी हूँ। मेरा दिमाग बिलकुल खुला है और चाहता हूँ, सदा खुला ही रहे।

करनी के स्तर पर आदर्श उपस्थित करें

बंधुओ ! अणुव्रत आन्दोलन व्यापक है। सभी लोगों के सुझावों को यहां स्थान है। और होना भी चाहिए, क्योंकि इसके केन्द्र में अहिंसा है। सहिष्णुता और सह-अस्तित्व अहिंसा के दो मुख्य पहलू हैं। मैं चाहूंगा, देश के विचारक एवं प्रबुद्धजन इस अहिंसामूलक आंदोलन पर अपना ध्यान केन्द्रित करें, गंभीर चिंतन करें और चिंतन करने पर उन्हें यदि ऐसा लगे कि यह कार्यक्रम उनके लिए उपयोगी है तो वे इसकी आचारसंहिता को स्वीकार करें। इससे वे स्वयं तो लाभान्वित होंगे-ही-होंगे, औरों के लिए भी प्रेरणा बन सकेंगे। आदर्श उपस्थित कर सकेंगे। न केवल कथनी के स्तर पर, बल्कि करनी के स्तर पर।



## सम्प्रदाय और आंख

कई बार कहीं-कहीं से यह स्वर सुनाई पड़ता है—जब आप अणुन्नत आंदोलन का व्यापक कार्य कर रहे हैं, फिर सम्प्रदायविशेष के दायरे में क्यों हैं ? आप उससे बाहर क्यों नहीं आ जाते ? मैं उनसे कहना चाहता हूँ कि अपरिग्रह, अस्तेय, सत्य और अहिंसा की बुनियाद पर खड़ा सम्प्रदाय संकीर्ण दायरा नहीं हो सकता । यदि धार्मिक संगठन को अपेक्षा से उसे दायरा माना भी जाए तो वह ऐसा दायरा है, जो प्रतिबंधन नहीं, उन्मोचन देता है । कुंठा नहीं, गति-प्रगति देता है । कोरी आंखों से आकाश को देखने पर बहुत कम नक्षत्र देखे जा सकते हैं । किन्तु इसके स्थान पर यदि दूरबीन लगाकर देखा जाए तो आकाश में सौरमंडल और अधिकाधिक नक्षत्र बहुत आसानी तथा अत्यंत स्पष्टता से देखे जा सकते हैं । अब समझने की बात यह है कि आंखें यहां दूरबीन के दायरे में आती हैं । पर यह दुपहर के प्रकाश की तरह स्पष्ट है कि वह दायरा उनकी दर्शन-शक्ति को बढ़ाता ही है, घटाता नहीं । यही बात अपरिग्रह, सत्य, अहिंसा जैसे तत्त्वों पर आधारित धर्म-संप्रदाय के लिए भी है । आप लोगों में से भी यदि किसी के मन में इस प्रकार की कोई अवधारणा हो तो वह अपनी अवधारणा को परिमार्जित कर ले ।

जयपुर

५ मार्च १९५८

## व्यापारी आत्मालोचन करे

अर्थ साधन है, साध्य नहीं

आज मैं व्यापारी लोगों के बीच उपस्थित हूँ। व्यापारी लोग अर्थाजन करने के लिए व्यापार करते हैं। अर्थ गृहस्थ की एक अनिवार्य अपेक्षा है, उसके लिए इसका बड़ा उपयोग है, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता। यदि कोई करता है तो वह यथार्थ को अनदेखा करता है, भ्रूणलाता है। पर अर्थ के संदर्भ में व्यक्ति का दृष्टिकोण सम्यक् होना चाहिए। रूपक की भाषा में वह रोग की दवा है, दैनिक भोजन नहीं। वह सामाजिक/पारिवारिक जीवन चलाने का साधन है, साध्य नहीं। इसे साध्य मान लेना एक मौलिक भूल है, भयंकर भूल है। इतनी भयंकर कि जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति के जीवन का सारा क्रम ही बदल जाता है। आज ऐसी स्थिति बहुत प्रकट और व्यापक रूप में दिखाई पड़ रही है। यह इस बात की सूचना है लोगों का अर्थ के प्रति दृष्टिकोण सम्यक् नहीं है। उन्होंने साधन के स्थान पर उसे साध्य मान लिया है, लक्ष्य के रूप में स्वीकार कर लिया है, उसे जीवन-मूल्यांकन का मौलिक आधार बना लिया है। ऐसी स्थिति में वह उसकी प्राप्ति के लिए शोषण, धोखा, अन्याय, कालाबाजारी जैसी कोई भी बुराई को स्वीकार करने में संकोच नहीं करता, उससे परहेज नहीं करता। येन-केन-प्रकारेण अधिक-से-अधिक धन बटोर लेने में ही वह अपने जीवन की सार्थकता महसूस करता है। व्यापारी लोग स्वयं को टटोलें। क्या उनकी यह स्थिति नहीं है? अपने व्यापारिक जीवन से प्रामाणिकता, नैतिकता, सत्यनिष्ठा, ईमानदारी जैसे तत्त्वों को विदा नहीं कर रहे हैं? एक वह भी समय था, जब भारतीय व्यापारियों की पूरे विश्व में एक शाख थी, प्रतिष्ठा थी। प्रामाणिकता, नैतिकता आदि के लिए दूसरे-दूसरे राष्ट्रों के लिए उदाहरण थे, आदर्श थे। परन्तु अब तो वह स्थिति अतीत की स्मृतिमात्र रह गई है। मैं उपस्थित व्यापारियों के माध्यम से भारत के पूरे व्यापारी वर्ग से पुनः-पुनः कहना चाहता हूँ कि अर्थ के लिए वह अपने नैतिक स्तर को न गिराए, अमूल्य जीवन को चंद चांदी के टुकड़ों की कीमत पर न बेचे। वह इस तथ्य का आत्मसात् करे कि शान्ति और सुख धन में नहीं, संयम, सादगी और सात्विक वृत्तियों में है। धन की भूमिका अधिक-से-अधिक

भोग-उपभोग के साधन/सामग्री जुटाने तक है।

जरूरी है आस्था में बदलाव

मैं बहुधा व्यापारियों के मुंह से इस आशय की शब्दावली सुनता हूँ कि प्रामाणिकता, ईमानदारी, सत्य से व्यापार चलना संभव नहीं है। मैं इस अवधारणा से सहमत नहीं हूँ। मैं तो मानता हूँ, यह बिलकुल संभव है। इससे भी आगे मैं तो यह भी कहना चाहता हूँ कि इसे संभव बनाना उपयोगी और आवश्यक भी है। जीवन में प्रामाणिकता, नैतिकता, ईमानदारी, सत्य-निष्ठा आनी ही चाहिए। हां, इस कारण इतना तो संभव है कि प्रारंभ में व्यक्ति को कुछ कठिनाई उठानी पड़े, कुछ कष्ट भेलेना पड़े। परन्तु अन्तिम परिणाम अश्रेयस्कर नहीं हो सकता, यह असंदिग्ध है। जैसे-जैसे यह सचाई प्रकट होगी कि अमुक व्यक्ति या व्यापारी अप्रामाणिकता नहीं बरतता, भ्रष्टाचार और अनैतिकता नहीं करता, उसका सर्वत्र विश्वास जम जाता है। फलतः उसको व्यापार में औरों की अपेक्षा अधिक सफलता मिलती है। मेरे सामने कई व्यापारियों के उदाहरण हैं, जिन्होंने व्यापार में नैतिकता, प्रामाणिकता, सत्यनिष्ठा की टेक नहीं छोड़ी और अच्छी सफलता अर्जित की। इसलिए मैं व्यापारियों से कहना चाहता हूँ कि वे 'सचाई से काम नहीं चल सकता' अपने इस स्वर को बदलें। यह स्वर आत्म-साहस और आत्म-विश्वास की कमी का द्योतक है।

जरूरी है व्यवहार में बदलाव

मैं अनुभव कर रहा हूँ कि आज बाजार असुरक्षित समझे जाने लगे हैं। ग्राहक बाजार में इस बात के लिए पग-पग पर आशंकित रहता है कि जाने कब मैं ठगा जाऊँ। क्या व्यापारियों के लिए यह लज्जा की बात नहीं है? गम्भीर चिंतन की बात नहीं है? हालांकि मैं मानता हूँ कि सब व्यापारी ग्राहकों के साथ धोखाधड़ी नहीं करते। पर बहुलांश में जब ऐसा होता है तो पूरा व्यापारी समाज बदनाम होता है, उसके प्रति ग्राहकों के मन में अविश्वास का भाव पैदा होता है। व्यापारियों को मैं आह्वान करता हूँ कि वे अपनी इस तस्वीर को बदलने के लिए कृतसंकल्प हों। अणुव्रत आंदोलन समाज के अन्यान्य वर्गों की तरह व्यापारी वर्ग को भी नैतिक, प्रामाणिक एवं ईमानदार देखना चाहता है। आप अणुव्रत आन्दोलन के दर्शन को समझे और उसकी आचार-संहिता को स्वीकार कर आत्मसाक्षी से पालन करें। निश्चित ही आपके जीवन में एक क्रांतिकारी परिवर्तन घटित हो सकेगा।

जयपुर

९ मार्च १९५८

व्यापारी आत्मालोचन करें

२७

## नारी परिवार और समाज की निर्मात्री है

नारी हीन वृत्ति को त्यागे

महिला और पुरुष समाज के दो बराबर के वर्ग हैं। समाज-विकास के लिए महिला वर्ग का विकास उतना ही आवश्यक है, जितना कि पुरुष वर्ग का। मैं नहीं समझता, नारी अपने को अबला और कमजोर क्यों मानती है? क्यों ऐसा सोचती है कि पुरुष ने उसके विकास को अवरुद्ध कर रखा है? मेरी दृष्टि में यह उसकी अपनी हीन भावना का द्योतक है। भगवान महावीर ने हीन वृत्ति को उतना ही अहितकारी माना है, जितना कि अहं वृत्ति को। महिलाएं यदि वस्तुतः ही विकास करना चाहती हैं, अपने भविष्य को उज्ज्वल बनाना चाहती हैं तो उन्हें इस हीन वृत्ति से अपना दामन छुड़ाना होगा।

कैसा समानाधिकार ?

कभी-कभी नारी की ओर से समानाधिकार का स्वर सुनाई देता है। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि कैसा समानाधिकार? क्या करेगी वह समानाधिकार प्राप्त करके? उसके अपने अधिकार ही बहुत हैं। वह परिवार, समाज और राष्ट्र की निर्मात्री है। क्या यह कोई कम अधिकार है? यदि वह अपने इस एक अधिकार के प्रति भी गंभीर बन जाए और उसका सम्यक् उपयोग करना सीख जाए तो समाज में एक गुणात्मक परिवर्तन आ सकता है। इसलिए मैं महिला-वर्ग से कहना चाहता हूँ कि वह समानाधिकार की नहीं, स्वाधिकार की बात करे।

नारी-शक्ति का विस्फोट हो

आज समाज और राष्ट्र की जो स्थिति है, वह महिलाओं से अज्ञात नहीं है। मानवता मूर्च्छितप्रायः बन रही है। समाज के छोटे-बड़े सभी वर्ग बुराईयों से ग्रस्त बन रहे हैं। चारों ओर अशांति व्याप्त है। इस स्थिति में मैं महिलावर्ग को आह्वान करना चाहता हूँ कि वह आगे आए और मानवता को नवजीवन देने के लिए अपनी नारी-शक्ति का विस्फोट करे। अनैतिकता और भ्रष्टाचार के अन्धकार को मिटाने के लिए नैतिकता का दीप जलाए।

यह उसकी बहुत बड़ी सेवा होगी। पर इसके लिए उसे सबसे पहले अपने जीवन को संवारना होगा। उसे संयम, शील, सादगी जैसे गुणों से भावित करना होगा। खयाल रहे, स्वयं जागृत होकर ही व्यक्ति दूसरों को जागृति का संदेश दे सकता है। अणुव्रत आंदोलन से जुड़कर महिलाएं अपने जीवन को सही मोड़ दे सकती हैं। मुझे आशा है, महिलाएं मेरे आह्वान का सकारात्मक उत्तर देंगी।

जयपुर

९ मार्च १९५८

## समाज-सुधार का आधार--व्यक्ति-सुधार

### कल और आज

भारतीय संस्कृति विश्व की महान् संस्कृति है। इस संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहां सत्ताधीशों एवं धनकुबेरों को बहुमान नहीं मिला। यहां प्रतिष्ठा मिली उन त्यागी-तपस्वी साधु-संतों को, जिन्होंने धन-वैभव और सत्ता को ठुकराकर संयम, चारित्र्य और सेवा का जीवन अपनाया। उसी की यह निष्पत्ति माननी चाहिए कि अर्थवाद भारतीय जीवन पर हावी नहीं हो सका। पर युग बदला, स्थितियां बदलीं, जन-मानस बदला और आज सब कुछ उस अतीत गौरव के प्रतिकूल हो रहा है। जीवन पर अर्थ प्रभावी और हावी हो गया है। जीवन का मूल्यांकन अर्थ में समाहित हो चला है। येन-केन-प्रकारेण अर्थ का संग्रह कर लेना मात्र ही जीवन का लक्ष्य हो गया है। मेरी दृष्टि में यह सांस्कृतिक पतन और आध्यात्मिक गिरावट है। इसके दुष्परिणाम हमारे सामने प्रत्यक्ष हैं। चारों ओर शोषण, विश्वासघात, अप्रामाणिकता, अनैतिकता और हिंसा का खुला तांडव हो रहा है। यह स्थिति देखकर मेरे मन में बहुत विचार आता है। अनेक बार मस्तिष्क में यह प्रश्न कौंधता है कि अतीत के चारित्रिक गौरव से सम्पन्न भारतीयजन क्या इस स्थिति पर गंभीरता से ध्यान देंगे? चिंतन करेंगे? जीवन में व्याप्त बुराइयों की कालिख धो डालने का साहस जुटा पाएंगे? अणुव्रत आंदोलन इस दिशा में उनका कुशल मार्गदर्शन कर सकता है।

### समाज-सुधार की प्रक्रिया

आज व्यक्ति समाज-सुधार और राष्ट्र-सुधार की लम्बी-चौड़ी बातें करता नहीं थकता। पर महत्त्वपूर्ण प्रश्न तो यह है कि सुधार की इस उदात्त भावना से क्या वह अपना जीवन संजोने की भी बात सोचता है? यों सुधार की बात चाहे जहां-कहीं से उठे, जिस-किसी स्तर पर उठे, उसका स्वागत है, तथापि मैं कहूंगा कि आप औरों के सुधार की बातों को एक बार गौण करें, पहले अपना सुधार करें। यह इसलिए कि जब तक व्यक्ति स्वयं का सुधार नहीं कर लेता, तब तक न तो उसकी आवाज का कोई असर

हो सकेगा और न वह स्वयं भी सुख से जीने की भूमिका में पहुंच पाएगा । हम इस बात को गंभीरता से समझें कि समष्टि का मूल व्यष्टि है । चूंकि व्यक्ति-व्यक्ति समाज और राष्ट्र का पूरक है, इसलिए समाज-सुधार और राष्ट्र-सुधार के लिए व्यक्ति-व्यक्ति को सुधारना जरूरी है । हम जन-जन को यह तथ्य समझाने का प्रयास कर रहे हैं । अणुव्रत आन्दोलन अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह आदि से संबंधित छोटे-छोटे संकल्पों के माध्यम से व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन को एक नया मोड़ देना चाहता है । उसके सुधार का मार्ग प्रशस्त करता है । मैं समाज-निर्माण एवं राष्ट्र-निर्माण की तड़प रखने वाले सभी लोगों से पूछना चाहता हूं, क्या वे व्यक्ति-सुधार के इस कार्यक्रम को अपनाने का साहस करेंगे ? पर मैं इसका मात्र मौखिक नहीं, बल्कि क्रियात्मक उत्तर चाहता हूं । यदि उत्तर सकारात्मक होगा तो मैं विश्वास के साथ कह सकता हूं कि समाज-सुधार और राष्ट्र-सुधार की उनकी भावना अवश्य साकार होगी ।

दौसा

१३ मार्च १९५८

## महके अब मानव-मन

शराब विवेक को कुंद बनाती है

आज के दुष्प्रवृत्तियों एवं दुर्व्यसनों से ग्रस्त जीवन को देखकर मेरे मन में विचार आता है कि मानव का विवेक कहां खो गया है ? उसकी मनन-शक्ति कुंठित क्यों हो गई है ? अन्यथा वह क्यों नहीं सोचता कि यह जिदगी क्या पागल की तरह वृथा और निस्सार गंवा देने की है ? क्या मानव जीवन इतना ही है—मनुष्य पैदा हुआ, बड़ा हुआ, उन्मत्त की तरह दुष्प्रवृत्तियों में फंसा रहा... और एक दिन आया कि जीवन-नाटक का पटाक्षेप हो चला ? मैं पूछना चाहता हूं, शराब जैसी दुष्प्रवृत्तियों में फंसा मानव क्या यही नहीं करता ? बन्धुओ ! शराब मनुष्य के विवेक को कुंद बना देती है । उसका सेवन करने वाला अपना होश-हवाश गंवा बैठता है । किन्तु बात यहां पर पहुंचकर भी समाप्त नहीं होती, और आगे बढ़ती है । जहां शराब ने अपने पैर पसारे, चोरी, व्यभिचार, हत्या, जुआ जैसी अनेक बुराइयां स्वतः चली आती हैं और व्यक्ति का शतमुखी पतन प्रारम्भ हो जाता है । कौन इस तथ्य से अपरिचित है कि शराब रूपी दुर्दम पिशाचिनी ने अनगिन घरों को श्मशान बना दिया है । इसलिए जो लोग इस बुराई से ग्रस्त हैं, वे अविलंब इसको छोड़ने के लिए अपने साहस को जुटाएं और संकल्पबद्ध बनें । इसी प्रकार जो लोग इससे बचे हुए हैं, वे भी भविष्य में कभी इसका प्रयोग न करने के लिए संकल्पित हों । इससे उनका स्वयं का जीवन तो स्वस्थ होगा-ही-होगा, गांव का वातावरण भी स्वस्थ बनेगा ।

मानव क्यों नहीं सोचता ?

बन्धुओ ! मैं मानता हूं, ईमानदारी और सत्याचरण मानव जीवन की शोभा हैं । जिस व्यक्ति के जीवन में ईमानदारी, सचाई और नैतिकता नहीं, वह कहने भर को मानव है, मात्र मानवीय भौतिक पिंड है । उसमें मानवता कहां ? पर कहना नहीं होगा कि आज राष्ट्र के जन-जीवन में अधिकांशतः ऐसा ही कुछ दिखाई देता है । यह मात्र मेरा ही अनुभव नहीं, अपितु आपका भी ऐसा ही होगा । स्वार्थों में अंधा बना मानव अपना ईमान



बेचते, अवांछनीय-से-अवांछनीय प्रवृत्ति करते जरा भी नहीं सकुचाता । उसकी आत्मा जरा भी प्रकंपित नहीं होती । गहरों में रहने वाले बहुत-सारे व्यापारी अपनी दुकान में विक्रय की जाने वाली वस्तुओं में तरह-तरह की मिलावट कर स्वार्थों की वेदी पर नैतिकता को कुर्बान करते तनिक भी नहीं हिचकिचाते । गांव वाले भी इस दौड़ में पीछे नहीं हैं ! वे दूध में पानी तथा घी में बेजिटेबल मिलाते हैं । यह घोर पतन है, मानवता की विडम्बना है, महापाप है । मानव क्यों नहीं सोचता, जिस पैसे के लिए वह इतना पाप करता है, मरने के समय क्या वह साथ निभाएगा ? परभव में उसके साथ चलेगा ? जब यह बिल्कुल स्पष्ट है कि वह मौत के समय साथ नहीं निभाता, एक नया पैसा भी परभव में साथ नहीं चलता, तब फिर इतना पाप किसलिए ? क्या यह एक प्रकार का पागलपन नहीं है ? नशा नहीं है ? मूढता नहीं है ? अपेक्षा है, मनुष्य अपने विवेक को जगाए और सद्गुणों से अपने मन को महकाए । पतन के गर्त से निकल कर मानवता का राजमार्ग अपनाए । अणुव्रत आंदोलन मानवता का राजमार्ग प्रशस्त करता है । आप आज से ही शुभ पदन्यास करें ।

रायपुरा

१४ मार्च १९५८

## व्यसनमुक्त जीवन जीएं

### विवेक-शक्ति का उपयोग हो

मनुष्य जीवन दुर्लभ है—यह शास्त्रों की स्पष्ट उद्घोषणा है। इस दुर्लभता को प्राप्त कर प्राणी सत्प्रवृत्त रहे, इसी में उसके जीवन की सार्थकता है। उसे दुर्व्यसनों में पशुओं की तरह गुजार देना बहुमूल्य जीवन को कोड़ी के मोल बेच देने के तुल्य है। मैं कई बार सोचा करता हूँ कि मनुष्य एक मनन-शील प्राणी है। भले और बुरे का विवेक करने की शक्ति उसमें है। उस शक्ति का उपयोग वह क्यों नहीं करता? क्यों नहीं वह दुष्प्रवृत्तियों से विरत होता है? क्यों नहीं अपने को सत्प्रवृत्तियों में संलग्न करता है? आज शराब, मांस, जुआ, व्यभिचार, मिलावट, ब्लेकमार्केटिंग जैसी अनैतिक एवं कलुषित वृत्तियों ने उसके जीवन को जर्जरित बना रखा है। ये ही वे दुर्गुण हैं, जो मनुष्य-जीवन को बर्बादी के कगार पर पहुंचा देते हैं। इनसे एक ओर जहां आत्मा के सत्य, शील, संतोष, समता, सौजन्य, सदाचार जैसे सद्गुणों का नाश होता है, वहीं दूसरी ओर पैसे की बर्बादी और पारिवारिक जीवन की शांति भी खण्डित होती है, व्यवस्थागत ढांचा भी चरमराता है। यही तो कारण है कि जहां-जहां ये दुर्गुण प्रभावी हुए हैं, वहां-वहां जीवन नारकीय जैसा बन गया है। आप जरा सोचें, शराब भी कोई पीने की चीज है? उसको पीने से इन्सान अपनी गुणात्मकता को खोकर हैवान बन जाता है, अपनी सुध-बुध तक गंवा बैठता है। मांसाहारी लोग इस बिन्दु पर अपना ध्यान क्यों नहीं केन्द्रित करते कि जिन प्राणियों का मांस वे खा रहे हैं, उन प्राणियों को भी अपना जीवन उतना ही प्यारा है, जितना उनको अपना? यह क्रूरता क्यों? फिर एक बात और भी है। चूँकि मांस तामसिक भोजन है, इसलिए यह बहुत स्पष्ट है कि वह व्यक्ति की वृत्तियों को तामसिक बनाता है, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति अनेक प्रकार की अमानुषिक प्रवृत्तियों में संलग्न होता है। इसलिए मैं सभी से कहना चाहता हूँ कि जिनमें ये या इस प्रकार की बुराइयां हैं वे अविलम्ब इनसे छूटने के प्रति जागरूक बनें, संकल्पबद्ध बनें।

### साहस जुटाएं

अणुव्रत आंदोलन मानव-जीवन में व्याप्त बुराइयों पर सीधी चोट

करता है। आप लोग भी इस आंदोलन की नियमावली को देखें और स्वीकार करें। मैं देखता हूँ, कुछ लोग सही मार्ग को जानकर भी उस पर चलते नहीं। कारण भले कुछ भी क्यों न हो, पर यह वृत्ति उनके लिए हितकर नहीं है। लाभप्रद नहीं है। मैं नहीं समझता कि मार्ग को स्वीकार करने में कैसा भय ? कैसा संकोच ? बस, थोड़े से साहस की अपेक्षा है। व्यक्ति यदि मन को मजबूत बनाकर थोड़ा-सा साहस जुटा लेता है, तो उसका काम आसान हो जाता है। आप भी यह साहस जुटाएं। इससे आपको एक नई रोशनी प्राप्त होगी। आप स्वयं तो सुख और शान्ति का जीवन जी ही सकेंगे, आपका परिवार एवं पास-पड़ोस भी अच्छा जीवन जीने की प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रेरणा प्राप्त करेगा।

भोजपुर

१४ मार्च १९५८

## धर्म की सच्ची आराधना

### संयम का आनंद

आदमी की यह सहज आकांक्षा होती है कि मैं बड़ा बनूँ। आकांक्षा कोई बुरी नहीं है, बशर्ते बड़प्पन का मानक सही हो। मेरी दृष्टि में विपुल धन-राशि, गगनचुंबी अट्टालिकाएँ, आज्ञावान सेवकों की भीड़, सत्ता और अधिकार बड़प्पन-मूल्यांकन के आधार नहीं हैं। वास्तव में बड़ा वही है, जिसने आत्म-शुद्धि के मार्ग पर चरणन्यास किया है, संयम के साथ अपने जीवन को जोड़ा है। संयम के आनन्द की बात मैं आपसे क्या बताऊँ? और वह बताने की बात है भी नहीं। उसे तो मात्र अनुभव ही किया जा सकता है। जो भी व्यक्ति इस पथ पर पदन्यास करता है, उसे स्वयं यह अनुभूति हो जाती है। यह एक ऐसी आनन्दानुभूति है, जो अन्यत्र दुर्लभ ही नहीं, असंभव भी है। इस आनन्द की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह भौतिक सुविधा और अनुकूलता की तनिक भी अपेक्षा नहीं रखता। इस अपेक्षा से अभाव का जीवन जीनेवाला भी अपने जीवन को संयममय बनाकर स्वयं को इस आनन्दानुभूति से गुजार सकता है।

### त्याग और संयम की प्रतिष्ठा हो

हम भारतीय तत्त्व-चिंतन और संस्कृति पर गौर करें। यहाँ बाहर से अकिंचन दिखनेवाला व्यक्ति सर्वाधिक सम्मानास्पद एवं वंदनीय माना गया। सत्ता और संपत्ति को वह मूल्य नहीं मिला, जो त्याग और संयम को मिला। पर आज यह स्थिति बदल रही है। सत्ता और संपत्ति को अतिरिक्त मूल्य मिलने लगा है। त्याग का मूल्य लोग कुछ कम कर आंकने लगे हैं। संयम की प्रतिष्ठा क्रमशः घट रही है। यह अच्छा नहीं हुआ है। इसके परिणामस्वरूप आज जन-जीवन में विकृतियाँ घर कर रही हैं। चारों ओर भ्रष्टाचार बढ़ रहा है। आदमी येन-केन-प्रकारेण अधिक-से-अधिक धन बटोरने में लगा है। सत्ता और अधिकार प्राप्त करने के लिए बेतहाशा दौड़ रहा है। संपत्ति और सत्ता-प्राप्ति की यह अंधी दौड़ उसे पतन के गर्त में ले जा रही है। अन्तर्-जागृति और स्वोन्मुखता का तत्त्व लुप्तप्रायः दिखाई

दे रहा है। अपेक्षा है, भारतीय जन अपने अतीत की प्रतिष्ठा को समझें और उसके अनुरूप बनने का प्रयत्न करें। इसके लिए उन्हें एक नया मोड़ लेना होगा। अपने जीवन को त्याग से अनुप्राणित करना होगा, संयम से भावित करना होगा। ख्याल रहे, संयम और त्याग की साधना ही धर्म व अध्यात्म की सच्ची आराधना है।

बेबर

१४ मार्च १९५८

## ऊंचा जीवन

आत्म-नियंत्रण ही सच्चा सुख है

मैं उस व्यक्ति के जीवन को ऊंचा जीवन नहीं मानता, जिसके खान-पान का स्तर ऊंचा है, रहन-सहन ऊंचा है, जीवन-यापन की बहुविध सुविधाएं उपलब्ध हैं। मेरी दृष्टि में ऊंचा जीवन वह है, जो संयम से संवलित है। जहां संयम नहीं, आत्म-नियंत्रण नहीं, वहां मैं मृत्यु देखता हूं। वहां केवल मनुष्य का शारीरिक आकार है, आत्मा तो वहां मूर्च्छित और म्रियमाण ही है। यहां यह समझ लेना आवश्यक है कि संयम या आत्म-नियंत्रण कोई पर-सापेक्ष तत्त्व नहीं है। यह तो नितांत आत्म-सापेक्ष ही है। संयत और आत्म-निर्यता जिस आंतरिक तुष्टि का अनुभव करता है, वह असंयत को कब सुलभ हो सकती है? इससे आप संयम या आत्म-नियंत्रण का मूल्य और माहात्म्य अच्छी तरह से समझ सकते हैं। अपेक्षा है, आप लोग भी अपने जीवन को अधिकाधिक संयत बनाएं, आत्म-नियंत्रण को साधें। आपका मन, आपकी वाणी, आपकी शारीरिक क्रियाएं, आपकी वृत्ति, आपकी विभिन्न गतिविधियां सब संयम के अधिक-से-अधिक निकट रहें। यदि ऐसा होता है तो आप अपने जीवन में अनिर्वचनीय सुख और आनन्द की अनुभूति कर सकेंगे।

हीन और जघन्य वृत्ति

मैं पूछना चाहता हूं, संसार में क्या कोई ऐसा व्यक्ति भी है, जो सुख और शांति की चाह नहीं रखता? मैंने तो ऐसा कोई व्यक्ति आज तक नहीं देखा। यदि आपमें से किसीके कोई ऐसा व्यक्ति ध्यान में हो तो वह उसको मुझसे मिलाए। पर मैं जानता हूं, आपमें से कोई भी इस प्रकार के कोई व्यक्ति से भेंट नहीं करा सकता। संसार में ऐसा कोई व्यक्ति है ही नहीं, जिसके मन में दुःख की आकांक्षा हो, जो सुख न चाहता हो। और इससे भी आगे वास्तविकता तो यह है कि व्यक्ति की सुख-प्राप्ति की आकांक्षा इतनी तीव्र है कि वह येन-केन-प्रकारेण उसे उपलब्ध होना चाहता है। भले किसी को लूटना पड़े, उत्पीड़न देना पड़े, उसके कोई प्रकंपन नहीं होता। उसके

सामने एक ही लक्ष्य रहता है—अपने लिए सुख-सुविधाएं बटोरना, सुख-सुविधाओं के साधन जुटाना। मेरी दृष्टि में यह बिल्कुल जघन्य और हीन वृत्ति है। इसके परिणामस्वरूप आज चारों ओर आपसी संघर्ष, कलह, वैमनस्य और हिंसा का बोलबाला हो रहा है। जगत् का वातावरण धुंधला और निराशापूर्ण बनता जा रहा है। यदि इस निराशा के अंधियारे को मिटाना है तो व्यक्ति-व्यक्ति को यह दृढ़ संकल्प करना होगा कि वह अपने सुख के लिए दूसरे को दुःख देने पर उतारू नहीं होगा। मेरे मन में कई बार विचार आता है कि व्यक्ति यह क्यों नहीं देखता कि प्रतिकूल आचरण से जिस प्रकार उसे दुःख होता है, क्या दूसरों को भी वैसा नहीं होता ?

अणुव्रत सार्वभौम और मानव धर्म है

सुख और आनन्द के संदर्भ में एक बात समझ लेने की है। भौतिक पदार्थ एवं सुविधाजन्य सुख और आनन्द क्षणिक है। स्वल्पकालिक तृप्ति के साथ ही अतृप्ति शुरू हो जाती है और वह क्रमशः बढ़ती जाती है। यह सच्चा सुख नहीं है। सच्चा सुख तो संयम और आत्म-नियन्त्रण में है। इस सुख के समक्ष भौतिक सुख सर्वथा नगण्य है। संयम और आत्म-नियन्त्रण से प्राप्त सुख को उपलब्ध हो जाने के पश्चात् व्यक्ति की भौतिक सुख-प्राप्ति के प्रति आकांक्षा सिमटने लगती है। अणुव्रत आंदोलन व्यक्ति-व्यक्ति को संयममय जीवन जीने के लिए उत्प्रेरित करता है, आत्म-नियन्त्रण के पथ पर पदन्यास करने का आह्वान करता है। इसकी बड़ी विशेषता यह है कि यह किसी वर्गविशेष का नहीं, किसी सम्प्रदायविशेष का नहीं, किसी कौमविशेष का नहीं। यह तो समस्त मानव-जाति का है। दूसरे शब्दों में यह सार्वभौम और मानव धर्म है। आज के वैषम्यपूर्ण और अशांत वातावरण में यह समता और शांति का सन्देश देनेवाला उपक्रम है। आपसे अपेक्षा है, आप इसकी आचार-संहिता को संकल्प के स्तर पर स्वीकार करें। निश्चित ही आपके जीवन में वास्तविक सुख और आनन्द का स्रोत फूटेगा।

महुआ

१६ मार्च १९५८

## सम्यक् आस्था का निर्माण हो

### आस्थाहीनता का युग

आज का युग विकास का युग माना जाता है। विज्ञान नित नए-नए आविष्कारों से संसार को चमत्कृत कर रहा है, सुख-सुविधाओं से विभिन्न साधन उपलब्ध करा रहा है। पर यह कैसी विडम्बना है कि एक तरफ तो भौतिक विकास अपने उत्कर्ष पर है और दूसरी तरफ मानवता का दुर्भिक्ष पड़ रहा है ! अनैतिकता अनियंत्रित गति से चारों ओर प्रसार पाती जा रही है। इसके परिणामस्वरूप मनुष्य का जीवन अप्रामाणिकता, चौर्य, भ्रूठ, भ्रष्टाचार, अन्याय, शोषण, हिंसा आदि दुष्प्रवृत्तियों से ओतप्रोत हो रहा है। भले लोग एक-दूसरे पर बुरा होने का आरोप लगाते हैं, पर सचाई यह है कि समाज का कोई भी वर्ग ऐसा नहीं है, जो बुराइयों से अछूता हो। विद्यार्थी, अध्यापक, व्यापारी, राज्यकर्मचारी, मजदूर सभी वर्गों की स्थिति कुछ कमोबेश एक जैसी है। राष्ट्र के हितचिंतक इस स्थिति से काफी चिंतित हैं। निश्चित ही यह स्थिति अच्छी नहीं है, पर मैं इससे भी अधिक गंभीर बात इसको को मानता हूं कि आज मनुष्य सचाई, प्रामाणिकता, ईमानदारी आदि के प्रति आस्थाहीन होता जा रहा है। यह कहा जाना कि भ्रूठ के बिना काम नहीं चल सकता, कम तोल-माप आदि के बिना व्यापार-व्यवसाय नहीं चल सकता, उसकी श्रद्धाहीनता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसे मैं भ्रूठ बोलने, मिलावट करने, कम तोल-माप करने आदि से भी ज्यादा बड़ी बुराई मानता हूं। शराब पीना निश्चित ही बुरा है, पर उससे भी अधिक बुरा यह मानना है कि शराब पीना अच्छा है।

### सबसे बड़ा पाप

पूछा जा सकता है, आप श्रद्धाहीनता या असम्यक् श्रद्धा को भ्रूठ बोलने, चोरी करने, शराब पीने जैसी दुष्प्रवृत्तियों से भी अधिक बुरा क्यों मानते हैं ? उत्तर बहुत साफ है। श्रद्धाहीनता या असम्यक् श्रद्धा को मैं भ्रूठ, चोरी आदि दुष्प्रवृत्तियों से भी अधिक बड़ी बुराई इसलिए मानता हूं कि उसमें व्यक्ति का दृष्टिकोण मिथ्या बन जाता है। यानी वह गलत को सही



मान लेता है। एक व्यक्ति चोरी अवश्य करता है, पर उसे बुरा मानता है तो देर-सवेर उसके उस दुष्प्रवृत्ति से छूटने की संभावना बनी रहती है। आज वह मजबूरीवश चोरी करता है। पर जब कल उसके सामने मजबूरी नहीं होगी तो बहुत संभव है कि वह चोरी करना छोड़ देगा। इसके विपरीत जो व्यक्ति चोरी करना अच्छा मानता है, उसकी चोरी छूटनी असंभवप्रायः है, भले उसके सामने मजबूरी की स्थिति न हो। भगवान महावीर ने मिथ्या दृष्टि-कोण को सबसे बड़ा पाप माना है। इसलिए मैं आपसे कहना चाहूंगा कि आप सबसे पहले अपनी श्रद्धाहीनता को मिटाएं, असम्यक् श्रद्धा को हटा कर सम्यक् श्रद्धा का निर्माण करें। श्रद्धा जब सम्यक् बनेगी तो आचरण के सम्यक् बनने का मार्ग स्वतः प्रशस्त बन जाएगा।

भरतपुर

१९ मार्च १९५८

## धर्म और धार्मिक

धर्म जीवन की पवित्रता का साधन है

धर्म जीवन की पवित्रता का एकमात्र साधन है, आधार है। जिस प्रवृत्ति से जीवन की पवित्रता नहीं सधती, वह धर्म कदापि नहीं है। पर आज उसका जो स्वरूप सामने आ रहा है, वह उसकी इस गुणात्मकता के अनुकूल नहीं है। आप देखें, तम्बाकू पीने वाला कहता है, चिलम सुलगाने को जरा आग दे दो, इससे बड़ा धर्म होगा। भीख मांगने वाला दुआ देता है, एक पैसा दे दो, बड़ा धर्म होगा। इतना ही नहीं, हिंसा और शोषण में लगा व्यक्ति भी अपने कारनामों पर धर्म की छाप लगाना चाहता है। सचमुच स्वार्थान्ध व्यक्ति ने धर्म का बहुत बड़ा नुकसान किया है। ऐसी स्थिति में लोग धर्म को अफीम कहते हैं तो बुरा क्या है? मैं मानता हूँ, जब तक धर्म से अपने स्वार्थ को साधने की मनोवृत्ति नहीं मिटेगी, तब तक उसकी तेजस्विता प्रकट नहीं हो सकती। हम ध्यान दें, धर्म के मौलिक तत्त्व हैं—सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, संयम, संतोष और शील। जीवन की पवित्रता इन्हीं तत्त्वों की आराधना से सधती है। स्वार्थवृत्ति, हिंसा, शोषण, अनाचार से उसका कोई संबंध नहीं है, कहीं दूर का भी संबंध नहीं है। धर्म जीवन की पवित्रता को साधने का अपना यह कार्य करता रहे, इसके लिए आवश्यक है कि उसका सम्यक् पालन किया जाए।

सच्चा धार्मिक कौन ?

मैं देखता हूँ, आज धर्म को धर्म-स्थानों एवं धर्मग्रन्थों में आरक्षित कर दिया गया है। पर इससे उसकी सुरक्षा नहीं होगी। उसकी सुरक्षा का तो एक ही उपाय है, एक ही विकल्प है कि उसे जीवन में उतारा जाए। जीवन के व्यवहार एवं आचरण में जीया जाए। मैं आपसे ही पूछना चाहता हूँ, मन्दिर की नित फेरी लगानेवाला, संतों के स्थान पर प्रतिदिन जानेवाला, नियमित भगवान के नाम की माला गुननेवाला यदि अपनी दुकान में बैठकर भ्रष्ट आचरण करता है, मिलावट और धोखाधड़ी करता है, कम तोल-माप करता है, तो क्या उसे धार्मिक माना जाए? उपासना में बढ़-चढ़कर रस

लेनेवाला यदि गरीबों का शोषण करता है, घर-परिवार में छोटी-छोटी बात पर कलह करता है, आक्रोश करता है तो उसे धार्मिक समझा जाए ? समझा जाए तो क्यों ? वस्तुतः सच्चा धार्मिक वही है, जिसका व्यक्तिगत, पारिवारिक, व्यावसायिक, राजनैतिक, सार्वजनिक सभी प्रकार का जीवन अहिंसा, सत्य, समता, करुणा, क्षमा, मैत्री, सहिष्णुता, प्रामाणिकता, नैतिकता जैसे तत्त्वों से अनुप्राणित हो। मेरी दृष्टि में उपासना दो नंबर की बात है। धार्मिक बनने के लिए प्राथमिक अपेक्षा है—व्यक्ति आचरण और व्यवहार को सम्यक् बनाए, पवित्र बनाए, शुद्ध बनाए। यदि वह इस प्राथमिक अपेक्षा को पूरा कर लेता है और उपासना में कम भी रस लेता है या बिल्कुल भी रस नहीं लेता है तो भी उसकी धार्मिकता को कोई आंच नहीं आएगी। इसलिए अपेक्षा है कि व्यक्ति आचरण और व्यवहार के स्तर पर धार्मिक बने। अणुव्रत राष्ट्र में यही कार्य रहा है। आप भी अणुव्रती बनकर सच्चे धार्मिक बन सकते हैं।

आगरा

२२ मार्च १९५८

## अहिंसा धर्म का प्राणतत्त्व है\*

धर्म क्या है ?

धर्म संसार के सर्वाधिक चर्चित दो-चार शब्दों में से एक है। क्या है धर्म ? धर्म है जीवन की पवित्रता, पवित्र जीवन की साधना। मैं नहीं समझता, जहां आचरण में पवित्रता नहीं, सात्विकता नहीं, वहां कैसा धर्म ? और जीवन में पवित्रता व सात्विकता तब तक नहीं सध सकती, जब तक कि व्यक्ति यह नहीं सोचता कि मेरी तरह ही सबको सुख प्रिय है। जिस प्रकार मुझे दुःख अप्रिय है, उसी प्रकार संसार के सभी प्राणियों को वह अप्रिय है। किसी एक को भी वह काम्य नहीं है। ऐसी स्थिति में उसका यह परम कर्त्तव्य बनता है कि वह इस बात के लिए क्षण-क्षण में जागरूकता बरते कि अपने सुख के लिए दूसरे के सुख को नहीं लूटेगा, उसके सुख में बाधक नहीं बनेगा। स्वयं के जीने के लिए दूसरे के जीवन को खतरे में नहीं डालेगा, उसके प्राणों का वियोजन नहीं करेगा। एक शब्द में कहा जाए तो यह अहिंसा की साधना है। अहिंसा धर्म का प्राणतत्त्व है। जीवन में जो महत्त्व प्राण का है, वही धर्म में अहिंसा का है। इस एक बात से आप अहिंसा का महत्त्व समझ सकते हैं।

रोटरियन्स बन्धुओं से अपेक्षा

अणुव्रत आन्दोलन अहिंसा, सत्य आदि धर्म-तत्त्वों पर आधारित एक ऐसा व्यापक कार्यक्रम है, जो जन-जीवन में सात्विकता एवं पवित्रता लाना चाहता है। आज के लोक-जीवन में व्याप्त तरह-तरह की बुराइयों पर सीधा प्रहार कर उन्हें समाप्त करने के लिए उसके अन्तर्गत छोटे-छोटे व्रतों की एक ऐसी आचारसंहिता बनाई गई है, जो सभी के लिए व्यवहार्य है। मैं चाहूंगा, रोटरियन्स बन्धु न केवल इस आचारसंहिता को स्वयं देखें, समझें ही, अपितु उसके अनुरूप अपने जीवन को भी ढालें, दूसरों को इसकी सलक्ष्य प्रेरणा भी करें। समाज और राष्ट्र की यह उनकी बहुत बड़ी सेवा होगी।

आगरा

२६ मार्च १९५८

\* रोटरी क्लब के सदस्यों के बीच प्रदत्त प्रवचन

## व्यापारी मिथ्या आस्था का त्याग करें

जरूरी है इच्छाओं का सीमकरण

भगवान महावीर ने कहा—इच्छाएं आकाश के समान अनन्त हैं। यह बहुत ही गहरी बात है। ज्यों-ज्यों व्यक्ति की लालसा बढ़ती है, त्यों-त्यों लोभ बढ़ता चला जाता है। लोभ बढ़ता चला जाता है, त्यों-त्यों उसके जीवन में असंयम की मात्रा भी क्रमशः बढ़ती चली जाती है। इसका कारण ? कारण बहुत स्पष्ट है। अन्तहीन लालसाओं की पूर्ति के लिए वह शोषण और अनैतिक आचरण के लिए भी तत्काल उतारू हो जाता है। अवांछनीय-से-अवांछनीय प्रवृत्ति करने में उसे कोई संकोच या लज्जा की अनुभूति नहीं होती। आज व्यापारियों के जीवन में ऐसा स्पष्ट दिखाई देता है। मैं उनसे कहना चाहूंगा कि वे अपना आत्मालोचन करें, अन्तर् को टटोलें, क्या वे ऐसा कर वास्तविक सुख और शांति की अनुभूति करते हैं ? मैं जानता हूं, वे नहीं करते। यदि करते तो त्यागी-अकिंचन साधु-संतों के पास क्यों आते ? सच्चे सुख और शांति की चाह ही उन्हें उनके चरणों में उपस्थित करती है। पर साधु-संतों के चरणों में उपस्थित होने पर भी उन्हें तब तक सुख और शांति कैसे मिल सकेगी, जब तक कि वे उनके बताए गए मार्ग पर नहीं बढ़ेंगे, इच्छाओं-आकांक्षाओं का अल्पीकरण और संकोच नहीं करेंगे।

सम्यक् आस्था निर्मित हो

मैं देखता हूं, आज अधिकांश व्यापारियों की यह मान्यता बन गई है कि व्यापार और सत्यनिष्ठा से व्यापार-व्यवसाय नहीं चल सकता। यदि कोई ऐसी आदर्श की बात करता है, तो उसे भूखे मरना पड़ता है। इसी का यह परिणाम है कि व्यावसायिक आदान-प्रदान में प्रामाणिकता, नैतिकता, ईमानदारी आदि तत्त्वों का क्रमशः ह्रास होता जा रहा है। दिखाया कुछ जाता है और दिया कुछ जाता है। यह कितनी गहन और जुगुत्सित बात है ! फिर भारतीय व्यापारियों पर तो यह आरोप विशेष तौर पर है, जो कि वर्तमान स्थितियों को देखते हुए गलत नहीं लगता। व्यापार-व्यवसाय में इस प्रकार की अप्रामाणिकता बरतनेवाले इस तथ्य को क्यों भूल जाते हैं कि

व्यापारी मिथ्या आस्था का त्याग करें

४५

गलत काम कर वे अपना ही विश्वास खोते हैं, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें व्यावसायिक दृष्टि से बड़ा नुकसान उठाना पड़ता है। इसके समानान्तर जो व्यापारी अपनी यह प्रामाणिकता बनाए रखते हैं, उनका विश्वास जम जाता है। फलतः उनकी व्यावसायिक प्रगति आगे-से-आगे चली जाती है। मैं व्यापारियों से कहना चाहता हूँ के वे अपनी इस मिथ्या आस्था को मिटाएं और उसके स्थान पर सम्यक् आस्था का निर्माण करें। सही आस्था का यह निर्माण उनकी आचरण-शुद्धि का भी सुदृढ़ आधार बन सकेगा।

आगरा

२६ मार्च १९५८

## जैन दर्शन का व्यापक प्रचार हो

जैन संस्कृति एक व्यापक, उदार और महान् संस्कृति है। यद्यपि इस संस्कृति के आगे 'जैन' विशेषण लगा है, पर वस्तुतः यह किसी वर्ग-विशेष की नहीं, किसी वर्णविशेष की नहीं, बल्कि सबकी है। सम्पूर्ण मानव-जाति का ही नहीं, अपितु समग्र प्राणी-जगत् का अभ्युदय यह चाहती है।

महान् अवदान

जैन दर्शन अनेकान्त पर आधारित एक युक्ति-सम्मत विचार-दर्शन है। यह सापेक्ष दृष्टिकोण का आश्रयी है। एक ओर यह एकता का हामी है, तो दूसरी तरफ अनेकता को भी स्वीकार करता है। यह बहुत गहरा तत्व है। पर जितना गहरा है, उतना ही उपादेय भी है। व्यक्ति-व्यक्ति, परिवार-परिवार, समाज-समाज, राष्ट्र-राष्ट्र के बीच जो विवाद खड़े होते हैं, उन्हें इस अनेकान्त के माध्यम से बड़ी आसानी से सुलझाया जा सकता है। यह जैन दर्शन का विश्व को एक महान् अवदान है। इस अवदान का अभी तक सही-सही मूल्यांकन नहीं हुआ है, पर जिस दिन ऐसा होगा, उस दिन निश्चय ही सारा संसार भगवान महावीर के प्रति अत्यंत भक्ति भाव से श्रद्धा-प्रणत होगा।

जैन दर्शन में अहिंसा पर बहुत सूक्ष्मता और व्यावहारिक दृष्टिकोण से चिंतन किया गया है। उसके आधार पर संसार की विभिन्न समस्याओं का समुचित समाधान खोजा जा सकता है, विश्व-मैत्री की भावना को साकार किया जा सकता है।

जैन एकता के पांच सूत्रः

जैन दर्शन के सन्दर्भ में लोगों को प्रामाणिक और विस्तृत जानकारी बहुत कम है। इस स्थिति के बनने के पीछे अनेक कारण हो सकते हैं, पर मूलभूत कारण जैनों का अपना प्रमाद है। उन्होंने इस क्षेत्र में सलक्ष्य ध्यान ही नहीं दिया। ध्यान देने की बात भी आगे की है, वे अभी तक एकता के सूत्र में भी नहीं बन्धे। विभिन्न सम्प्रदायों के लोग छोटी-छोटी बातों को लेकर संघर्ष करते हैं। इस स्थिति से उन्हें उबरना होगा। अन्यथा वे जैन शासन की

जैन दर्शन का व्यापक प्रचार हो

प्रभावना नहीं कर सकते। विभिन्न सम्प्रदायों के अनुयायियों में ऐक्य और समन्वय बना रहे हैं, इसके लिए मैंने एक पंचसूत्रीय कार्यक्रम सुझाया है—

१. मंडनात्मक नीति बरती जाए। अपनी मान्यता का प्रतिपादन किया जाए। दूसरों पर मौखिक या लिखित आक्षेप न किया जाए।
२. दूसरों के विचारों के प्रति सहिष्णुता रखी जाए।
३. दूसरे सम्प्रदाय के साधु-साधिवियों के प्रति घृणा और तिरस्कार की भावना का प्रचार न किया जाए।
४. सम्प्रदाय-परिवर्तन के लिए दबाव न डाला जाए। स्वेच्छा से कोई व्यक्ति सम्प्रदाय-परिवर्तन करे तो उसके साथ सामाजिक बहिष्कार आदि के रूप में अवांछनीय व्यवहार न किया जाए।
५. जैन धर्म के सर्व-सम्प्रदायमान्य सिद्धान्तों का संगठित रूप में प्रचार किया जाए।

सभी सम्प्रदायों के लोग यदि इन सूत्रों को स्वीकार कर चलेंगे तो मेरा ऐसा दृढ़ विश्वास है कि पारस्परिक सौहार्द, सौजन्य तथा मैत्री का एक सुन्दर वातावरण निर्मित होगा। जैन धर्म के व्यापक प्रचार एवं प्रभावना का कार्य तीव्र गति से आगे बढ़ सकेगा।

आगरा

२६ मार्च १९५८



## जैन संस्कृति

### पुरुषार्थवादी संस्कृति

जैन संस्कृति विश्व की एक महान् संस्कृति है। इस संस्कृति की अपनी कुछ विशेषताएं हैं। इसकी प्रमुख एक विशेषता है कि यह पुरुषार्थ-प्रधान संस्कृति है। पर इसका यह तात्पर्य नहीं कि यह भाग्य, नियति, काल आदि के अस्तित्व को अस्वीकार करती है। भाग्य आदि तत्त्वों को भी यह स्वीकार करती है, पर सर्वाधिक महत्त्व पुरुषार्थ को ही देती है। प्रकारान्तर से हम ऐसा भी कह सकते हैं कि यह मानव को परमुखापेक्षी न बनाकर उसे स्वमुखापेक्षी बनने की प्रेरणा देती है।

### अपेक्षित है आत्मालोचन

जैन संस्कृति की दूसरी उल्लेखनीय विशेषता यह है कि यह प्राणिमात्र के लिए उस महाविकास का द्वार खोलती है, जहां तक किसी दूसरे ने शायद सोचने का भी साहस नहीं किया। यहां तक कि यह हर आत्मा को परमात्मा बनने का अधिकार देती है। उस शिखर तक पहुंचने की सम्प्रेरणा देती है, उसका मार्ग-दर्शन करती है। जैनों के लिए यह कितने गौरव की बात है कि उन्हें ऐसी महान् संस्कृति में पलने-पुषने का अवसर मिला है। पर मुझे लगता है, जैन लोग अपनी इस संस्कृति का सही-सही मूल्यांकन नहीं कर पा रहे हैं। उसके संस्कारों को आत्मसात् नहीं कर पा रहे हैं। मैं पूछना चाहता हूं, जैन संस्कृति में विश्वास करनेवाला क्या कभी परावलंबी हो सकता है? अपने-आपको हीन-दीन समझ सकता है? यदि उसमें ये बातें हैं तो उसने जैन-संस्कृति का आलोक कहां पाया? अपेक्षा है, जैन लोग अपना आत्म-निरीक्षण करें। जैन संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में अपने संस्कार, व्यवहार एवं आचरण की तटस्थ समीक्षा करें। ऐसा करने से उनके सामने सारी स्थिति स्वयं स्पष्ट हो जाएगी। यह स्पष्टता उन्हें स्वयं को जैन संस्कृति के अनुरूप ढलने में महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी। मैं नहीं समझता, जब तक जैन लोगों का स्वयं का जीवन, जीवन का व्यवहार जैन संस्कृति के अनुकूल नहीं होगा, दूसरे-दूसरे लोगों के मन में उसके प्रति आकर्षण का भाव कैसे जागेगा? मैं

मानता हूँ, जैन संस्कृति अपनी गुणात्मकता के आधार पर सारे संसार में प्रसार पाने की क्षमता रखती है। पर जैनों का अपना प्रमाद ही उसे इस प्रसार से रोके हुए है। यदि अब भी जैन लोग जागरूक बनकर इस दिशा में सक्रिय बनते हैं तो उसके व्यापक फैलाव के कार्य में काफी सफलता मिल सकती है। अपेक्षा है, जैन लोग सामूहिक रूप में इस बिन्दु पर चिंतन करें, गंभीरता से चिंतन करें।

एटा

९ अप्रैल १९५८

## जीवन का अन्तरंग पक्ष पुष्ट हो

जीवन के दो पक्ष हैं— अंतरंग और बहिरंग । अंतरंग पक्ष के विकास के लिए आत्म-संयम, त्याग, तप, इच्छा-निरोध, अनासक्ति आदि साधन हैं । भौतिक सुख-सुविधा और वासना जीवन को उसकी अन्तर्मुखता से पराङ्गमुख और बहिर्पक्ष की ओर उन्मुख बनाती है । इसका परिणाम यह होता है कि जीवन अस्त-व्यस्त व अनियंत्रित बन जाता है । इस स्थिति में अनैतिकता उसके जीवन में अपना अड्डा बना लेती है । भ्रष्टाचार बुरी तरह प्रभावी बन जाता है । जायज-नाजायज, करणीय-अकरणीय का विवेक समाप्तप्रायः हो जाता है । दुर्भाग्य से आज राष्ट्र में ऐसी ही स्थिति बन रही है । राजनैतिक, सामाजिक, पारिवारिक और वैयक्तिक जीवन में अनीति का पूर-सा आ रहा है । यदि समय रहते इस तीव्र प्रवाह को नहीं रोका गया तो सात्त्विक, संयममय जीवन-पक्ष की दीवार कभी भी ढह सकती है । क्या यह बात आपको काम्य है ? यदि नहीं है तो आपको आज से ही सजग होना होगा । व्यक्ति-व्यक्ति की सजगता से ही इस स्थिति से निपटा जा सकता है । मेरा मानना है, जिस क्षेत्र में जन-चेतना जागृत हो जाती है, उस क्षेत्र में करणीय कुछ भी असंभव नहीं रहता । अणुव्रत आन्दोलन इस दिशा में आपके लिए पथ का आलोक है । वह अनैतिकता के प्रवाह को रोककर जीवन के आध्यात्मिक/अंतरंग/सात्त्विक पक्ष को सुरक्षा प्रदान करना चाहता है । असत्य और अप्रामाणिकता के आघातों से दबती-पिसती मानवता को संबल प्रदान करना चाहता है । आप इस आन्दोलन को निकटता से देखें, समझें और इसकी छोटी-सी आचार-संहिता को संकल्प के स्तर पर स्वीकार करें । उसके अनुसार अपने जीवन-व्यवहार को ढालें । निश्चित ही आपके जीवन का अन्तरंग पक्ष पुष्ट होगा । आपको पदार्थनिरपेक्ष सहज सुख और आनन्द की अनुभूति हो सकेगी । आप अपने जीवन की सार्थकता अनुभव कर सकेंगे ।

एटा

९ अप्रैल १९५८

जीवन का अन्तरंग पक्ष पुष्ट हो

५१

## दुर्लभं भारते जन्म

संस्कृत के किसी प्राचीन कवि ने कहा है—‘दुर्लभं भारते जन्म ।’ इसका शब्दार्थ है—भारतवर्ष में जन्म मिलना दुर्लभ है। प्रश्न होता है, ऐसा क्यों ? भारतवर्ष में ऐसी कौन-सी विशेषता या विलक्षणता है कि जिसके कारण यहां जन्म ग्रहण करना इतना ऊंचा माना गया है, इतनी बड़ी उपलब्धि माना गया है, जबकि दूसरे-दूसरे देश भी तो धन, वैभव, सत्ता और अधिकार के क्षेत्र में समय-समय पर विश्व में अग्रणी रहे हैं, आज भी हैं ? मैं मानता हूँ, ‘दुर्लभं भारते जन्म’ इस उक्ति के मूल में भावना यह है कि भारतवर्ष में पैदा होने वाला भारतीय संस्कृति में जीता है। भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहां धन, वैभव, सत्ता, अधिकार आदि को सर्वोच्च मूल्य नहीं दिया गया है। यहां तो ऊंचा जीवन उसे ही माना गया है जो संयम, सात्विकता और सच्चरित्र के मार्ग पर अग्रसर है। यद्यपि भौतिक दृष्टि से यह अभावों का जीवन माना जा सकता है, पर अध्यात्म-दृष्टि से यही श्रेष्ठ जीवन है। जो व्यक्ति इस प्रकार का जीवन जीता है, वह सचमुच ही अत्यंत सौभाग्यशाली है। क्या भारतीय जन आज इस बात को भूल नहीं रहे हैं ? मुझे तो ऐसा ही लगता है कि अधिकांश लोग श्रेष्ठ जीवन के उन मूल्य-मानकों को भूल रहे हैं। जीवन-मूल्यांकन का उनका दृष्टिकोण बहिर्मुखी और भौतिकवादी बन रहा है। आध्यात्मिक दृष्टि या अन्तर्मुखी दृष्टि गौणप्रायः हो रही है। मेरी दृष्टि में राष्ट्र की यह सबसे बड़ी क्षति है। इसका दुष्प्रभाव हमारे सामने प्रत्यक्ष है। राष्ट्रीय चरित्र में अभूतपूर्व गिरावट आ रही है। जो भारतवर्ष सारे संसार को नीति, न्याय, सत्यनिष्ठा की शिक्षा देता था, आज वहीं खुलकर अनीति खेल रही है। भ्रष्टाचार पनप रहा है। अन्याय हो रहा है। भ्रूठ और अज्ञामाणिकता का नाच हो रहा है। क्या भारतीयों के लिए यह लज्जा की बात नहीं है ? यदि वे गौरव के साथ जीना चाहते हैं तो उन्हें गहराई से आत्मालोचन करना होगा। जो-जो बुराइयां उनके जीवन में घर कर गई हैं, उन्हें एक-एक को चुन-चुनकर बाहर करना होगा। उनके स्थान पर सत्य, सात्विकता, संतोष, शील, संयम आदि तत्त्वों की प्रतिष्ठा करनी होगी। अपने जीवन

को बहिर्मुखता से अन्तर्मुखता की ओर मोड़ना होगा। आध्यात्मिक भावना का विकास करना होगा। साधु-संत जन-जन को यही प्रेरणा देने के लिए गांव-गांव में परिभ्रमण करते हैं। आपका पुनीत कर्तव्य है कि आप उनसे प्रेरणा प्राप्त कर अपनी जीवन-धारा को सही दिशा में मोड़ें। यह मोड़ आपके जीवन के लिए वरदान सिद्ध होगा। आपके सौभाग्य का सूरज चमकने लगेगा। आपका भारतवर्ष में जन्म लेना सार्थक बन जाएगा।

छिबरा मऊ

१५ अप्रैल १९५८

## धर्म का स्वरूप

### ऋषिप्रधान देश

भारतवर्ष अध्यात्म-साधना का एक महान् केन्द्र है। इसका एक अपना गौरवशाली इतिहास है। यहां के ऋषि-महर्षियों ने आत्म-तत्त्व की खोज और उसकी उपलब्धि में अपने जीवन को भोंक दिया था। इसीलिए मैं इसे ऋषिप्रधान देश कहता हूं, भले यह कृषिप्रधान देश कहलाता है। पर यह कितने खेद की बात है कि आज उसका गौरव धुंधला रहा है, समाप्त हो रहा है। जीवन-मूल्य बड़ी तेजी से बदल रहे हैं। जहां त्याग, संयम, आत्मानुशासन, सादगी आदि तत्व अच्छे जीवन के मापक थे, वहां सत्ता और संपत्ति के आधार पर व्यक्ति का अंकन किया जा रहा है। इसके कारण राष्ट्र में भ्रष्टाचार का बोलबाला हो रहा है। व्यक्ति धन और सत्ता की प्राप्ति के लिए नीचे-से-नीचे धरातल पर उतरने में नहीं सकुचाता। इस स्थिति से राष्ट्र-हितैषी लोगों का चिंतित होना स्वाभाविक है। चारों तरफ निराशा व्याप रही है। पर मैं निराश-हताश नहीं हूं। हीनता-दीनता की बात मुझे पसंद नहीं है। मैं तो बड़े आशा भरे स्वर में कहना चाहता हूं कि प्रत्येक भारतीय को यह अनुभूति होनी चाहिए कि भारत की आत्मा मूर्च्छित अवश्य हुई है, वह मर नहीं गई है। जिस प्रकार अभिमान करना हानिकारक है, उसी प्रकार हीनभाव भी आत्म-शक्ति को कुंठित करनेवाला है। अपेक्षा इतनी ही है कि प्रत्येक भारतीय नागरिक अपनी संयमप्रधान संस्कृति को समझे और उसको पुनर्जीवित करने के प्रति जागरूक बने।

### धर्म अमर है, अमर रहेगा

भारत के ऋषि-मुनियों ने यहां जन-जन को धर्म के संस्कारों से संस्कारित किया। धर्म का यथार्थ स्वरूप आत्म-साधना एवं जीवन-शुद्धि में सन्निहित है। पर आज उसका यह सही स्वरूप समाप्त हो रहा है। उसे प्रदर्शन और आडम्बर में जकड़ दिया गया है। जहां वह धार्मिक के जीवन में भ्रलकना चाहिए, वहां आज उसे तथा उसके साक्षात् प्रतीक भगवान और ज्ञान को स्वर्ण, रजत एवं मृणमय पाषणों में मढ़ दिया गया है। जो धर्म

आत्मशुद्धि का साधन है, उसे स्वार्थ-पोषण का साधन बनाकर उसका दुरुपयोग किया गया है। तभी तो यह स्वर सुनने को मिलता है कि धर्म खतरे में है। पर मैं आपसे ही पूछना चाहता हूँ, क्या आत्म-शुद्धि का साधन-स्वरूप धर्म कभी खतरे में हो सकता है? मेरा अटूट विश्वास है कि वह सभी प्रकार के खतरों, अवरोधों, बाधाओं और उलझनों से परे है। इसीलिए मैंने खुली आवाज में कहा, धर्म सदा अमर है और अमर रहेगा। संसार की बड़ी-से-बड़ी कोई शक्ति भी उसको नहीं मिटा सकती, उसकी तेजस्विता को धूमिल नहीं कर सकती।

### धन बनाम धर्म

धर्म के क्षेत्र में एक बात और बुरी हुई है। तथाकथित लोगों ने उसे धन के साथ जोड़ दिया है। पर मैं आपसे बहुत स्पष्ट शब्दों में कहना चाहता हूँ कि धन से उसका कोई संबंध नहीं है, कहीं दूर का भी संबंध नहीं है। यदि धन से ही धर्म होता तो पूंजीपतियों की तो खूब बन जाती। और-और पदार्थों की तरह वे उसका भी अनाप-सनाप संग्रह कर लेते, गोदाम भर लेते। बेचारे गरीबों के तो कुछ भी हाथ नहीं लगता। वे देखते-के-देखते ही रह जाते। पर सचार्थ यह है कि धन से वह खरीदा नहीं जा सकता। उसकी प्राप्ति तो त्याग, संयम और तितिक्षा से होती है और उनकी साधना का अधिकार अमीर-गरीब, हरिजन-महाजन, स्त्री-पुरुष सबको समान रूप से है।

बन्धुओ ! धर्म को विभिन्न प्रकार की विकृतियों से मुक्त कर उसे अपने सही रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए एक क्रांति की अपेक्षा है। अणुव्रत आंदोलन के माध्यम से हम यही कार्य करना चाहते हैं। आप भी इस कार्यक्रम के साथ जुड़कर धर्म-क्रांति में योगभूत बन सकते हैं। क्या मैं आपसे सहयोग की अपेक्षा कर सकता हूँ ?

कानपुर

२२ अप्रैल १९५८

## बड़ा कौन ?

विपरीत धारा में बहता जन-जीवन

बड़प्पन की कसौटी ऊंचे कुल से पैदा होना नहीं है। सत्ताधारी और विपुल वैभवशाली होना भी नहीं है। सही माने में बड़प्पन तो सदाचरण, संयम और संतोष में है। व्यक्ति अपने जीवन को जितना अधिक सदाचारी बनाएगा, संयम से भावित करेगा, संतोष से पुष्ट करेगा, वह उतना ही ऊंचा और श्रेष्ठ होगा। पर वर्तमान की त्रासदी यह है कि जीवन-मूल्यांकन के मापक गलत हो गए हैं। आज बड़ा वह माना जाता है, जिसके पास भौतिक साधनों की प्रचुरता है, जो बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं का स्वामी है, जिसके अधिकार में विपुल पूंजी है, जिसका खजाना सोने-चांदी से भरा पड़ा है। मेरी दृष्टि में यह मिथ्या दृष्टिकोण है। उसकी यह दुष्परिणति है कि जन-जीवन विपरीत धारा में बहता जा रहा है। व्यक्ति थोड़ी-सी अर्थ-प्राप्ति के लिए अनुचित-से-अनुचित और अवांछनीय-से-अवांछनीय कार्य करते नहीं सकुचाता। इस त्यागप्रधान संस्कृति वाले देश की यह कैसी स्थिति बनी है !

सच्चा सुख

मैं कई बार सोचता हूं, आदमी धन के पीछे बेतहाशा क्यों दौड़ता है ? आखिर उसे मिलता क्या है ? समाधान मिलता है, वह उसमें कुछ सुख देखता है। सुख की आकांक्षा ही उसे इस ओर प्रेरित और प्रवृत्त करती है। पर गंभीर प्रश्न तो यह है कि धन से प्राप्त होनेवाला सुख क्या सच्चा सुख है ? यदि धन में ही सुख होता तो बड़े-बड़े राजे-महाराजे और धनकुबेर उसे त्यागकर अकिंचन साधु क्यों बनते ? वस्तुतः सच्चा सुख संयम में है, आत्म-नियंत्रण में है। चूंकि मानव मननशील प्राणी है, वास्तविक और कृत्रिम का विवेक करने का सामर्थ्य उसमें है, इसलिए उससे अपेक्षा की जाती है कि वह इस सन्दर्भ में गहन मनन कर सच्चे सुख का पथ स्वीकार करे।

संयम या आत्म-नियंत्रण से मिलनेवाले सुख की बात मैं क्या बताऊं ! वह तो अनिर्वचनीय है। केवल उसका अनुभव ही किया जा सकता



है। जो अनुभूति से गुजर चुके हैं, वे ही उसकी महत्ता जानते हैं। आप भी जब संयम या आत्म-नियंत्रण का पथ स्वीकार करेंगे तो स्वयं उस अनुभूति से संपन्न हो जाएंगे, उसकी महत्ता से परिचित हो जाएंगे।

मैं देखता हूँ, लोग आत्म-नियंत्रण की बात का मूल्यांकन न करने के कारण इस पथ से दूर-दूर ही रहते हैं अथवा जानकर भी अपनी दुर्बलता के कारण उस पर कदम नहीं बढ़ा पाते। इस वजह से उनके जीवन में अनेक प्रकार की विषमताएं और समस्याएं पैदा हो जाती हैं। वर्ग-संघर्ष, आपसी कलह, दुर्दान्त लालसा ये सब उसी के विभिन्न परिणाम हैं। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्ति संयम और आत्म-नियंत्रण की बात का यथार्थ मूल्यांकन करता हुआ स्वेच्छा से इस दिशा में अग्रसर हो। परिस्थितियों से बाधित होकर अथवा परवशता में संयम का पथ अपनाना उसके लिए कहां तक शोभास्पद है, यह वह स्वयं समझ सकता है।

### अणुबम बनाम अणुव्रत

अणुव्रत आन्दोलन संयम की भित्ति पर अवस्थित एक जीवननिर्माण-कारी व्यापक कार्यक्रम है। आज भौतिकवाद अपने चरम-विकास की भूमिका में है। उसका दुष्परिणाम हमारे सामने है। ज्यों-ज्यों भौतिकता बढ़ी है, त्यों-त्यों विनाश की लीला भी बढ़ती गई है। और आज तो वह अपने चरम शिखर को छू रही है। सम्पूर्ण विश्व आज बारूद के ढेर पर पड़ा है। अणु-बम उसका पूर्ण रूप है। ऐसे समय में अणुव्रत आन्दोलन निर्माण का पथ प्रशस्त करता है। वह जन-जीवन में शान्ति और समता का समावेश करना चाहता है। एक अपेक्षा से यह अणुबम और अणुव्रत में सीधी टक्कर है। अणुबम की नींव जहां हिंसा पर टिकी है, वहीं अणुव्रत आत्म-नियंत्रण, अहिंसा और मैत्री पर टिका है। वह समाज के विभिन्न वर्गों में फैले संघर्ष और क्लेश को दूर करने का एक अमोघ साधन है। उदाहरणार्थ, आज पूंजीपति वर्ग और मजदूर वर्ग में खुला संघर्ष चल रहा है। यह बताए जाने की अपेक्षा नहीं है कि उसका आधार अर्थ है। अणुव्रत आन्दोलन इस समस्या को संयम या आत्म-नियंत्रण की भूमिका पर समाहित करना चाहता है। इस संदर्भ में उसका मार्गदर्शन है—पूंजीपति असीम अर्थ-लालसा, शोषण और उत्पीड़न को छोड़ें। अर्थ को अपने जीवन का चरम लक्ष्य न मानें। वृत्तियों को संयमोन्मुख बनाएं। इसी प्रकार श्रमिकजन श्रम से जी चुराने या कम-से-कम श्रम कर मालिक से अधिक-से-अधिक पैसा पाने की मनोवृत्ति का त्याग करें। इस तरह वह दोनों ही वर्गों को आत्मानुशासन की ओर प्रवृत्त करने का प्रयास करता है। इसी प्रकार दूसरे-दूसरे वर्गों में चल रहे पारस्परिक संघर्ष एवं इसी प्रकार की अन्यान्य समस्याओं को समाहित करने के लिए भी आत्मनियंत्रण का आलोक

बड़ा कौन ?

बिखेरता है। जिन लोगों ने भी इसके आलोक में अपने कदम बढ़ाए हैं, उन्होंने समाधान की मंजिल को पाया है। अपेक्षा है, इस कार्यक्रम को सभी स्तर पर जन-समर्थन मिले। आत्म-नियंत्रण की प्रबल प्रेरणा देने वाले इस कार्यक्रम के व्यापक फैलाव से हम एक नए विश्व के सृजन की संभावना को जन्म दे सकते हैं।

कानपुर  
अप्रैल

## सुखी जीवन का साधना-पथ

### सार्थक जीवन की पहचान

मनुष्य जीवन दुर्लभ है, अमूल्य है—यह शास्त्रों की वाणी है। ऐसा क्यों ? कारण यही कि इस जीवन में जो आत्माराधना की जा सकती है, वह अन्य किसी जीवन में संभव नहीं है। पर बड़े खेद की बात है कि इस जीवन का सही मूल्यांकन नहीं किया जा रहा है। कोई इसका मूल्य पैसों से आंक रहा है तो कोई अन्य जड़ पदार्थों से। मैं मानता हूँ, इस प्रकार मूल्यांकन करनेवाला कोई भी व्यक्ति जीवन की सार्थकता प्राप्त नहीं कर सकता। पूछा जा सकता है, सार्थक जीवन की पहचान क्या है ? सार्थक जीवन की पहचान बहुत सीधी-सी है। सुख-शांतिमय जीवन सार्थक जीवन है। जिस व्यक्ति के जीवन में सुख-शांति नहीं, उसका जीवन सार्थक जीवन कदापि नहीं हो सकता, भले वह बहुत बड़ा धनपति क्यों न हो, बड़े-से-बड़ा सत्ताधीश क्यों न हो।

जीवन को सुख-शांतिमय बनाने के लिए, जीवन की सार्थकता प्राप्त करने के लिए हमारे तीर्थंकरों ने साधन रूप में तीन तत्व बताये हैं। वे तीन तत्व हैं—सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य।

### सम्यक् दर्शन का मूल्य

दर्शन का अर्थ यहां देखना या फीलोसफी नहीं है। यहां इसका अर्थ है—तत्त्व-श्रद्धा। सम्यक् दर्शन अर्थात् यथार्थ तत्त्व-श्रद्धा। जो तत्व जैसा है, उसे ठीक उसी रूप में समझना। दिन को दिन समझना और रात को रात। अमृत को अमृत समझना और जहर को जहर। धर्म को धर्म समझना और अधर्म को अधर्म। अब कोई धर्म को अधर्म समझे या अधर्म को धर्म समझे, यह सम्यक् दर्शन नहीं है। यह मिथ्या दर्शन है। इस मिथ्या दर्शन अर्थात् अयथार्थ श्रद्धा या विश्वास से व्यक्ति का बहुत बड़ा अहित होता है। इतना बड़ा कि बहुत-सारे व्यक्ति उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। बड़ी-से-बड़ी दूसरी कोई भी बुराई जितना बड़ा अहित करती है, उससे भी कई गुणा ज्यादा नुकसान इससे होता है। यहां तक कहा गया है कि जब तक व्यक्ति मिथ्यादर्शन से मुक्त होकर सम्यक् दर्शन को प्राप्त नहीं हो जाता, तब तक

उसका ज्ञान भी अज्ञान है। फिर उससे सम्यक् आचरण की तो आशा भी कैसे की जा सकती है। इसलिए सबसे पहले व्यक्ति को तत्त्व के प्रति अपनी श्रद्धा को सम्यक् बनाना चाहिए।

**जरूरी है आत्म-दर्शन का भाव**

ज्ञान के सन्दर्भ में भी एक बात जान लेने की है। ज्ञान के पीछे आत्म-दर्शन का भाव होना चाहिए। जिस ज्ञान के पीछे आत्म-दर्शन का अभाव होता है, वह व्यक्ति के लिए वरदान नहीं बन सकता। आज वैज्ञानिकों ने अपने आविष्कारों से सारे संसार को चमत्कृत किया है। यह ज्ञान का कोई कम विकास नहीं है। पर कहां है उसके पीछे आत्म-दर्शन का भाव? ऐसी स्थिति में वह वरदान कहां बन रहा है? तब उसे सद्ज्ञान कैसे कहा जा सकता है? इसका ही तो यह फलित है कि सच्चरित्र के रूप में उसका जो परिणाम सामने आना चाहिए था, वह नहीं आ रहा है। मानव अपनी मानवता को तजकर दानव बन रहा है। उस पर भौतिकता प्रभावी और हावी हो रही है।

सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र की इस पावन त्रिवेणी में व्यक्ति-व्यक्ति स्नात हो, यह सबसे बड़ी अपेक्षा है। इस अपेक्षा की पूर्ति से ही सुख-शांतिमय जीवन की आकांक्षा पूरी हो सकती है, अन्यथा वह आकाशकुसुम तोड़ने जैसी बात होगी।

**सच्चा सुख क्या है ?**

परन्तु सुख के सन्दर्भ में लोगों में भ्रांति बहुत है। बहुत कम लोगों को वास्तविक सुख की पहचान है। प्रश्न है, हम वास्तविक सुख किसे मानें? हमारे ऋषि-मुनियों ने इस दिशा में हमारा कुशल मार्ग-दर्शन किया है। परिणाममधुर सुख ही वास्तविक सुख है। आपातमधुर सुख अर्थात् वार्तमानिक क्षणिक सुख वास्तविक सुख नहीं है। पदार्थसापेक्ष सुख मात्र आपात-मधुर है, परिणाममधुर नहीं, इसलिए वह वास्तविक सुख कदापि नहीं हो सकता। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र की आराधना से प्राप्त होनेवाला सुख परिणाम-मधुर है, इसलिए वह वास्तविक सुख है। यदि आपके मन में इस वास्तविक सुख को प्राप्त करने की ललक है तो आप भी इन तीनों तत्त्वों की आराधना की दृष्टि से जागरूक बनें। आप का जीवन सार्थक और सफल हो जाएगा।

**कानपुर**

**२४ अप्रैल १९५८**

## आचार की प्रतिष्ठा

ज्ञानी कौन ?

आज मैं आप वकीलों के बीच उपस्थित हूँ। वकील बौद्धिक होते हैं। पर मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि आप केवल बौद्धिक व्यायाम में ही अपने को न खपा दें। यद्यपि बोध या बौद्धिकता भी जीवन-विकास का एक पहलू और पक्ष है। पर आपको यह भी नहीं भूलना चाहिए कि जिस बोध के साथ सम्यक् आचार का योग नहीं है, वह बोध या ज्ञान व्यक्ति के लिए भार से अधिक और कुछ भी नहीं है। हमारे धर्मशास्त्रों में उस विद्या को अविद्या और उस ज्ञान को अज्ञान कहा गया है, जो सच्चरित्र से रहित है। इस सन्दर्भ में यह बात अवश्य जान लेने की है कि यहां 'अविद्या' और 'अज्ञान' शब्द विद्याभाव और ज्ञानाभाव के वाचक नहीं हैं, अपितु कुत्सित विद्या और कुत्सित ज्ञान के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे यहां ज्ञानी का आचारसम्पन्न होना आवश्यक माना गया है, अन्यथा अच्छा पढ़ा-लिखा होने के उपरान्त भी वह अज्ञानी ही है। इस परिप्रेक्ष्य में आप आचार का मूल्यांकन करें।

बदलता मूल्य

आप देखें, हमारी भारतीय संस्कृति में पूज्य उसे ही माना गया है, जिसका आचार ऊंचा है, भले ज्ञान की अपेक्षा से वह क्षीण भी क्यों न हो। यह आचार की प्रतिष्ठा का ही परिणाम है कि यहां त्याग और तप को सर्वोच्च मूल्य दिया गया। पर आज स्थिति बदल चुकी है। त्याग-तप के स्थान पर अर्थ सर्वोच्च मूल्य बन रहा है। सर्वत्र उसी की प्रतिष्ठा हो रही है। आचार को बहुत गौण कर दिया गया है। इसका दुष्परिणाम हमारे सामने प्रत्यक्ष है। आदमी पैसे की प्राप्ति के लिए बड़ा-मे-बड़ा गलत कार्य करने को तैयार हो जाता है। ईमान और भगवान को भी दांव पर लगाने से नहीं हिचकिचाता। इससे समाज में अनैतिकता, असदाचार, हिंसा आदि बुराइयां बढ़ी तेजी से बढ़ रही हैं। आपसी सौहार्द और मैत्री के सम्बन्ध कच्चे धागों की तरह टूट रहे हैं। ऐसी विकट स्थिति में आप लोगों का कर्तव्य है कि आप अपने-आपमें एक मोड़ लाएं, जिससे कि आपका जीवन ऊंचा और अच्छा बने। साथ-ही-साथ

आचार की प्रतिष्ठा

६१

समाज का वातावरण भी स्वस्थ बने। पारस्परिक मैत्री और विश्वास की जड़ों को सींचन मिले।

### सुधार का मार्ग

कुछ लोग डण्डे और कानून के द्वारा बुराइयों को मिटाने की बात करते हैं। मुझे यह स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं है कि इनसे भी बुराइयों को मिटाने में एक सीमा तक सहयोग मिल सकता है। पर ऐसा नहीं मानता कि इनके द्वारा कोई स्थायी परिवर्तन आ सकता है। व्यक्ति आतंकित होकर कुछ समय के लिए बुराई से उपरत हो सकता है, पर हृदय-परिवर्तन के अभाव में वह अवसर मिलते ही पुनः बुराई में प्रवृत्त हो जाता है। स्थायी परिवर्तन या सुधार हृदय-परिवर्तन से ही संभव है। एक बार बुराई के प्रति घृणा का भाव पैदा हो जाने के पश्चात् व्यक्ति अच्छे-से-अच्छा मौका मिलने पर भी उसमें प्रवृत्त नहीं हो सकता। इसलिए हृदय-परिवर्तन का मार्ग ही अभीष्ट है। अणुव्रत आंदोलन हृदय-परिवर्तन का ही मार्ग है। छोटे-छोटे संकल्पों के माध्यम से वह समाज में परिवर्तन लाना चाहता है, आचार की प्रतिष्ठा करना चाहता है, मानव को सच्चा और अच्छा मानव बनाना चाहता है। हजारों-हजारों लोगों ने इसके संकल्पों को स्वीकार कर अपने जीवन को संवारा है, अपने जीवन की सार्थकता प्राप्त की है। आप भी इस आंदोलन के संकल्पों को स्वीकार करें। आपके स्वस्थ जीवन की यात्रा प्रारम्भ हो जाएगी।

बार एशोसिएशन, कानपुर

२५ अप्रैल १९५८

## बुनियाद पर ध्यान केन्द्रित हो

राष्ट्र के उज्ज्वल भविष्य का आधार

मनुष्य का जीवन एक भवन की तरह है। जिस प्रकार भवन की मजबूती उसकी नींव की मजबूती पर निर्भर करती है, उसी प्रकार जीवन की स्वस्थता विद्यार्थी-जीवन की स्वस्थता पर निर्भर है। विद्यार्थी-जीवन मनुष्य की बुनियाद है। यदि विद्यार्थी अवस्था में सुसंस्कारों का वपन नहीं होता, तो जीवन कभी भी स्वस्थ नहीं हो सकता, इसलिए अध्यापकों और अभिभावकों को बच्चों में सुसंस्कार-वपन की दृष्टि से पूर्ण सजग रहना चाहिए। ऐसा करके ही वे एक स्वस्थ समाज और विकसित राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं।

हम इस बात को समझें कि विद्यार्थी-जीवन वृक्ष की कोमल टहनी जैसा होता है। उसे चाहे जिस ओर झुकाया जा सकता है, मोड़ा जा सकता है। वही टहनी जब मोटी हो जाती है, तब फिर उसे झुकाना, मोड़ना कठिन हो जाता है। इस रूपक के माध्यम से मैं आप सबको यह प्रेरणा देना चाहता हूँ कि आप विद्यार्थी-जीवन के इस स्वर्णिम अवसर का उपयोग करते हुए छात्र-छात्राओं को चरित्रशीलता, नीतिनिष्ठा, विनय, अनुशासन के पथ पर अग्रसर करें। इन संस्कारों के अभाव में उनका भविष्य धुंधला बन जाता है, जो न उनके स्वयं के लिए काम्य है और न राष्ट्र के लिए ही।

अपेक्षित है धार्मिक शिक्षा

बच्चों को सुसंस्कारित करने के लिए भारतीय शिक्षा-पद्धति में उन्हें व्यापक और उदार धार्मिक शिक्षा देने का क्रम रहा है। लेकिन दुर्भाग्य से आज वह क्रम बंदप्रायः हो गया है। उसीका यह दुष्परिणाम है कि आज की नई पीढ़ी में दुःशील, उच्छृंखलता, अनुशासनहीनता जैसी बुराइयां पनप रही हैं। इस क्रम को पुनः प्रारम्भ कर इन अवांछनीय प्रवृत्तियों को बढ़ने से रोका जा सकता है।

विद्यार्थी स्वयं सजग रहें

विद्यार्थी-वर्ग से मैं कहना चाहता हूँ कि वह संस्कारों की दृष्टि से

बुनियाद पर ध्यान केन्द्रित हो

जागरूक रहे। आज राष्ट्र में जो नैतिक अधःपतन हो रहा है, उसको रोकने के लिए उसकी यह जागरूकता निर्णायक भूमिका निभाएगी। यदि एक-एक विद्यार्थी यह संकल्प कर लेता है कि वह किसी भी अनैतिक आचरण को अपने जीवन में स्थान नहीं देगा, अनुशासनहीनता और उच्छृंखलता जैसी प्रवृत्तियों से कोसों दूर रहेगा तो राष्ट्र की तस्वीर स्वयं बदल जाएगी। समाज और राष्ट्र के भावी कर्णधार आज के विद्यार्थी ही तो हैं। उनका जीवन बुराइयों से जिस सीमा तक अछूता रहेगा, वे समाज और राष्ट्र की उतनी ही अच्छी सेवा कर सकेंगे। अणुव्रत आंदोलन विद्यार्थियों की नैतिक एवं चारित्रिक चेतना जागृत करने का अभियान चला रहा है। यह प्रसन्नता की बात है कि राष्ट्र के विद्यार्थी बड़ी संख्या में इस अभियान के साथ जुड़ रहे हैं। उपस्थित छात्राओं से भी आह्वान करता हूँ कि वे इस अभियान के साथ जुड़कर अपने जीवन में बुराइयों के प्रवेश को रोकने के लिए सुरक्षा-कवच बनाएं।

कानपुर

२६ अप्रैल १९५८



## सच्ची सेवा

### नैतिक पतन और उसका परिणाम

भारतवर्ष गुलामी की लम्बी शृंखला को काटकर आजाद हुआ। पर राष्ट्र की जो स्थिति है, उसे देखकर ऐसा नहीं लगता कि राष्ट्र आजाद है। यद्यपि राष्ट्र ने आर्थिक दृष्टि से प्रगति की है, तथापि किसी को भी चैन नहीं है। सर्वत्र एक बेचैनी छाई हुई दिखाई देती है। यों तो इसके अनेक कारण हो सकते हैं, पर जो मुख्य कारण है, वह यह कि राष्ट्र के नैतिक और चारित्रिक विकास का कोई आसार दिखाई नहीं देता। प्रतिदिन इस दृष्टि से वह ह्रास की ओर जा रहा है। समाज का कोई भी वर्ग ऐसा नहीं है, जो अपने-आपको इस पतन से बचा सका हो। लोगों की स्वार्थवृत्ति क्रमशः बढ़ती जा रही है। लोग राष्ट्र के प्रति अपनी जिम्मेवारी को समझते नहीं हैं। यदि समझते भी हैं तो उसे निभाने की कोशिश नहीं करते। इसका फलित यह हुआ है कि राष्ट्र के विकास के लिए शुरू की गई विभिन्न योजनाएं वैसा फल नहीं ला रही हैं, जैसा लाना चाहिए। मेरा विश्वास है, जब तक राष्ट्र का नैतिक एवं चारित्रिक पतन नहीं रुकता, इस मोर्चे पर वह प्रगति की ओर अग्रसर नहीं होता, तब तक अन्यान्य क्षेत्रों में होने वाली प्रगति सुख और खुशहाली लानेवाली सिद्ध नहीं हो सकती। इस प्रगति के साथ ही उनका अनुकूल परिणाम आ सकता है। इसलिए आज की सबसे बड़ी आपेक्षा राष्ट्र के नैतिक एवं चारित्रिक विकास की है। राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक अपने मन में यह संकल्प संजोए कि वह अपने जीवन को नैतिक एवं चारित्रिक दृष्टि से ऊंचा उठाएगा।

### सच्चे जन-सेवक बनें

जन-सेवकों से विशेष रूप से कहना चाहता हूँ कि वे अपने दायित्व को गंभीरता से समझें। उनकी हर छोटी-बड़ी प्रवृत्ति/आचरण/व्यवहार का असर जन-साधारण पर पड़ता है। इसलिए नैतिक एवं चारित्रिक दृष्टि से वे एक ऐसा आदर्श उपस्थित करें, जिससे सभी लोगों को नैतिक एवं सच्चरित्र बनने की प्रेरणा मिले। राष्ट्र और जनता की उनकी यह सबसे बड़ी सेवा होगी।

## चतुराई का उपयोग जीवन-निर्माण की दिशा में हो

व्यापारी लोगों से भी एक बात कहना चाहता हूँ। उनके बारे में ऐसा कहा जाता है कि वे बहुत चतुर होते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में मेरा उनको आह्वान है कि वे अपनी इस चतुराई का उपयोग जीवन-निर्माण की दिशा में करें। वे इस बात पर ध्यान दें कि व्यापार का क्षेत्र निर्भयता एवं प्रामाणिकता का क्षेत्र है। पर दुर्भाग्य से आज वह बहुत बदनाम है। वह भय, भ्रष्टाचार और अप्रामाणिकता का प्रमुख केन्द्र बन रहा है। इस बदनामी को मिटाकर उन्हें अपनी प्रतिष्ठा पुनः कायम करनी है। इसके लिए उन्हें अपने व्यवहार और आचरण पर सूक्ष्मता से ध्यान देना होगा। जो अनैतिक और भ्रष्ट प्रवृत्तियाँ उन्हें बदमान करने में कारण बन रही हैं, उन्हें चुन-चुनकर बाहर करना होगा। उनके स्थान पर नैतिक एवं प्रामाणिक व्यवहार को प्रतिष्ठित करना होगा। यह एक ऐसा कार्य है, जो न केवल उनके स्वयं के लिए वरदायी है, अपितु राष्ट्रीय चरित्र को ऊँचा उठाने की दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण है।

अणुव्रत आंदोलन के रूप में हमने एक जीवन-निर्माणकारी कार्यक्रम प्रारम्भ किया है। यह कार्यक्रम व्यक्ति-व्यक्ति को अपनी जीवनगत बुराइयों से मुक्त होकर नैतिक एवं प्रामाणिक जीवन जीने की अभिप्रेरणा देता है। आप भी इस आंदोलन से जुड़कर अपने जीवन-निर्माण की दिशा का उद्घाटन करें।

कानपुर

२६ अप्रैल १९५८

## मानवता का आंदोलन

### अतीत और वर्तमान

भारतवर्ष एक अध्यात्मप्रधान देश है। अध्यात्म एवं धर्म के संस्कार यहां के लोगों की नस-नस में प्रवाहित रहे हैं। प्राचीन समय में यहां के आम आदमी का नैतिक स्तर बहुत ऊंचा था। यहां तक कहा जाता है कि व्यापारी दुकानों में ताले नहीं लगाते थे। बाहर जानेवाले घरों को खुला छोड़कर चले जाते। वापस आने पर उन्हें अपने घर का सारा समान ज्यों-का-त्यों पड़ा मिलता। लोगों में दूसरे की वस्तु को चोरी की भावना से लेने की प्रवृत्ति नहीं थी। वे सामान्यतः संतोष का जीवन जीते थे। उनकी वृत्ति सात्विक थी। सादगी और स्वावलंबन उनके जीवन के शृंगार थे। पर आज स्थिति इसके सर्वथा प्रतिकूल देखने को मिल रही है। लोगों का नैतिक स्तर रसातल को छूने लगा है। लोभ का भूत इस तरह सवार हो गया है कि व्यक्ति संसार का सारा धन बटोर लेना चाहता है, जैसे-तैसे बटोर लेना चाहता है। सादगी और स्वावलंबन की बातें कहीं अपवाद रूप में ही देखने को मिलती हैं। भ्रष्टाचार इस तरह व्याप्त हो गया है कि धर्मस्थानों में भी व्यक्ति अपने-आपको सुरक्षित महसूस नहीं करता। और तो क्या, उसको यहां तक आशंका बनी रहती है कि कहीं कोई जूते उठा न ले जाए। ग्राहक बाजार में जाता है तो इस बात के लिए आशंकित रहता है कि वस्तु का क्रय करते हुए वह कहीं ठग न लिखा जाए। समाज का कोई भी वर्ग ऐसा नहीं है, जो अनैतिकता एवं अप्रामाणिकता से सर्वथा मुक्त हो, भ्रष्टाचार से अछूता हो। मैं मानता हूं, यह स्थिति राष्ट्र के विकास में बहुत बड़ा अवरोध है। यदि राष्ट्र के नागरिक सच्चे मन से राष्ट्र के भविष्य को उज्ज्वल देखना चाहते हैं तो उन्हें अपने जीवन की धारा को बदलना होगा। स्वार्थ और लोभ जैसी हीन वृत्तियों से दामन छोड़ाकर समता और संतोष के साथ सम्बन्ध जोड़ना होगा। अप्रामाणिकता, अनैतिकता, धोखाधड़ी जैसे विकारों को जीतकर नीतिनिष्ठा, प्रामाणिकता एवं सचाई से जीवन को विभूषित करना होगा।

स्वयं से शुरुआत हो

प्रश्न है, इस परिवर्तन के अभियान को कौन चलाएगा ? इसकी शुरुआत कहां से होगी ? मेरा अभिमत है, इस दिशा में व्यक्ति-व्यक्ति को स्वयं ही अभियान चलना होगा । स्वयं से ही शुभ शुरुआत करनी होगी । दूसरों की प्रतीक्षा की बात बेमानी है । अणुव्रत आन्दोलन इस दिशा में आपका मार्ग प्रशस्त करता है । इसकी छोटी-सी आचार-संहिता को स्वीकार कर व्यक्ति अपने जीवन को सदाचार और नैतिकता के ढांचे में ढाल सकता है । दूसरे शब्दों में कहा जाए तो यह एक मानवता का आन्दोलन है । यह व्यक्ति-व्यक्ति में मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करने का कार्य कर रहा है । आप भी इस आन्दोलन से जुड़ें, इसकी आचार-संहिता को देखें, समझें और उसे संकल्प के स्तर पर स्वीकार करें । इससे आपका जीवन मानवता की प्रभा से भाषित हो उठेगा ।

रामकृष्ण मिशन, जवाहर नगर (कानपुर)

२७ अप्रैल १९५८

## मानवता का राजमार्ग

### आदर्श नागरिक बनने का मंत्र

प्रकृति के जगत् में हम देखते हैं, चांद अपनी चांदनी, सूरज अपनी धूप और बादल अपनी वर्षा सब पर बिना किसी भेदभाव के करता है। ऐसा नहीं कि चांदनी, धूप और वर्षा एक घर पर तो हुई पर दूसरे और तीसरे घर पर नहीं। ठीक इसी प्रकार अणुव्रत आन्दोलन हर जाति, हर वर्ग, हर सम्प्रदाय के लोगों में समान रूप से काम करता है। जिस प्रकार यह एक महाजन को अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के आधार पर निर्मित छोटे-छोटे व्रतों को लेने के लिए प्रेरित करता है, उसी प्रकार एक हरिजन भाई को भी करता है। एक डॉक्टर, वकील और मंत्री को भी ऐसी ही प्रेरणा देता है। दूसरे शब्दों में यह तो मानवता का राजमार्ग है, जिस पर कि चलने का अधिकार मानव-मात्र को है। मैं आप को आह्वान करता हूं कि आप दानवता की कंटकाकोर्ण और भटकावभरी पगडंडियों को छोड़कर मानवता के इस राजमार्ग पर आएँ। यह बहुत संभव है कि कुछ कठिनाइयाँ भी उपस्थित हों, वे आपके जीवन में कुछ अवरोध भी उपस्थित करें, पर अन्तिम विजय आपकी ही है, इसमें किसी प्रकार का सन्देह करने की कोई गुंजाइश नहीं है। मेरी ऐसी भावना है कि व्यक्ति समाज और राष्ट्र में एक आदर्श नागरिक बनकर रहे। अणुव्रत की आचार-संहिता को स्वीकार कर वह इस अर्हता से सम्पन्न बन सकता है।

### संकल्प-चेतना जागे

कुछ लोग व्रत-ग्रहण करने की बात से बहुत घबराते हैं। मैं उन्हें आश्वस्त करना चाहता हूं कि अणुव्रत के व्रतों को स्वीकार करने में घबराते की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि अणुव्रत के नियमों को बहुत व्यावहारिक बनाया गया है। सम्पूर्ण हिंसा से एक सामान्य आदमी उपरत नहीं हो सकता, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए नियम यह बनाया गया है कि व्यक्ति निरपराध प्राणी की संकल्पपूर्वक घात न करे। यही बात सत्य के सन्दर्भ में है। सम्पूर्ण सत्य का पालन सबके लिए संभव नहीं होता। इसलिए

कहा गया है कि अणुव्रती ऐसा भूठ न बोले, जिससे किसी का अनर्थ हो जाए। इसी क्रम में प्रकार अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह से सम्बन्धित नियम भी इतने व्यावहारिक बनाए गए हैं कि जिन्हें आम आदमी अच्छे ढंग से निभा सकता है। इसलिए मैंने कहा कि अणुव्रत के नियमों को स्वीकार करने में घबराने की कोई अपेक्षा नहीं है। अपेक्षा इतनी ही है कि व्यक्ति की संकल्प-चेतना जागे। इस चेतना के जागने के पश्चात् व्रत-ग्रहण का मार्ग स्वयं निर्बाध हो जाता है। क्या मैं विश्वास करूँ कि आप अपनी संकल्प-चेतना को जगाकर मानवता के राजमार्ग पर आएं ?

उन्नाव

१ मई १९५८

## मानव-जीवन की विडम्बना

यह कैसी विडम्बनाभरी बात है कि आंखों के होते हुए भी आज आदमी अंधा बना जा रहा है। यद्यपि उसके चर्म-चक्षु खुले हैं, पर अन्तर् चक्षु मुंदे-से हैं। वह जीवन का मूल्यांकन आचार और विचार से नहीं, अपितु सिक्कों से कर रहा है। आत्म-शुद्धि और जीवन की पवित्रता के साधन—धर्म को स्वार्थपूर्ति का साधन बना रहा है। क्या यह आंखों के रहते अंधापन नहीं है? मानव-जीवन की विडम्बना नहीं है? यदि मानव नहीं संभला और इसी प्रवाह में बहता चला तो वह अपने अस्तित्व को विलीन कर देगा, इसमें किंचित् भी संदेह नहीं है। इसलिए मैं कहना चाहता हूँ कि मानव अपने विवेक को जगाए, धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझे और उसकी सही स्थान पर प्रतिष्ठा करे। पूछा जा सकता है कि धर्म का सही स्वरूप क्या है? धर्म का सही स्वरूप है—सत्य, अहिंसा, संतोष जैसे तत्त्वों की साधना। इन तत्त्वों को व्यक्ति अपने जीवन में संजोए। यही धर्म की सही प्रतिष्ठा होगी। यदि ऐसा होता है तो मैं पूर्ण विश्वास के साथ कहता हूँ कि उसके अन्तर् चक्षु स्वयं उद्घाटित हो जाएंगे। उसे अपने जीवन में चारों ओर एक नए आलोक का दर्शन होगा। दूसरे शब्दों में कहूँ तो उसका काया-कल्प हो जाएगा। वह अपने-आपको एक ऐसे नए स्वरूप में देखेगा, जो दुःख का नहीं, सुख का प्रतीक होगा। अशान्ति का नहीं, शान्ति का प्रतीक होगा। विषमता का नहीं, समता का प्रतीक होगा। अणुव्रत आंदोलन उसकी सम्प्राप्ति का एक व्यवहार्य उपक्रम है। आप इस आन्दोलन के दर्शन को समझें, इसकी आचार-संहिता को स्वीकार कर अणुव्रती बनें। निश्चित ही आपको अनिर्वचनीय संतोष की अनुभूति होगी।

उन्नाव

३ मई १९५८

## धर्म का शुद्ध स्वरूप प्रकट हो

धर्म जीवन की पवित्रता का अद्वितीय साधन है। सुख और शांति का एकमात्र आधार है। पर हम देखते हैं कि आज का बौद्धिक मानव उसका नाम भी सुनना पसन्द नहीं करता। उसके प्रति उसके मन में एक खीभ और नफरत का भाव है। यही कारण है कि उसकी चर्चा सामने आते ही वह नाक-भौंह सिकोड़ने लगता है। ऐसा क्यों? इसका कारण बहुत स्पष्ट है। धर्म की गुणात्मकता आज सुरक्षित नहीं रही है। तथाकथित धार्मिकों ने उसे प्रदर्शन, आडम्बर और रूढ़ परम्पराओं में जकड़ दिया है। उसे स्वार्थसिद्धि का साधन बना लिया है। सचमुच ही यह बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति बनी है। धर्म के साथ बहुत बड़ा अन्याय हुआ है। ऐसी स्थिति में बौद्धिक व्यक्ति धर्म से नफरत करे, उससे दूर भागने का प्रयास करे तो किसी को भी आश्चर्य क्यों होना चाहिए। हाँ, ऐसी स्थिति में भी वह उससे नफरत नहीं करता है, उससे दूर नहीं भागता है, तो आश्चर्य की बात अवश्य है। मेरा दृढ़ विश्वास है, यदि धर्म अपने मूल स्वरूप को पुनः प्राप्त कर ले, वह जीवन की पवित्रता और जीवन-जागृति का निर्विकल्प साधन बन जाए, आन्तरिक सुख और शान्ति का आधार बन जाए तो बौद्धिक वर्ग तो क्या, कोई बड़ा-से-बड़ा नास्तिक भी उससे घृणा नहीं कर सकता। मैं आपसे ही पूछना चाहता हूँ, जीवन की पवित्रता कौन नहीं चाहता? सुख और शांति की आकांक्षा से कौन नहीं बंधा है? जीवन-जागृति किसे काम्य नहीं है? अणुव्रत आंदोलन के माध्यम से हम धर्म को उसके मौलिक एवं शुद्ध स्वरूप में प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहे हैं। हालाँकि आज तथाकथित धर्माधिकारियों ने धर्म को जाति, वर्ण, वर्ग, सम्प्रदाय की संकीर्ण सीमाओं में बांध दिया है, पर अपने शुद्ध स्वरूप में तो वह आकाश की तरह व्यापक है, सार्वजनीन है। जाति, वर्ण, वर्ग, सम्प्रदाय आदि की सभी प्रकार की सीमाओं से सर्वथा अतीत है। अणुव्रत धर्म के उसी व्यापक रूप को जन-जन के जीवन में प्रतिष्ठित करने का कार्यक्रम है, अभियान है। आचरण और व्यवहार के स्तर पर व्यक्ति-व्यक्ति को धार्मिक बनाने का पवित्र संकल्प है। यही तो कारण है कि हजारों-लाखों लोग इस आन्दोलन से न केवल प्रभावित और आकर्षित



ही हो रहे हैं, अपितु इसकी आचार-संहिता को जीवन में भी उतार रहे हैं। उसके सांचे में अपने जीवन को ढालने का भी प्रयास कर रहे हैं। क्या आप भी अपने जीवन को अणुव्रत के सांचे में ढालने का प्रयास करेंगे ? अणुव्रत की आचार-संहिता को स्वीकार करेंगे ? यदि आपका उत्तर सकारात्मक है तो निश्चित ही आपका जीवन पवित्र बनेगा, आप सुख और शान्ति की अकथनीय अनुभूति को प्राप्त होंगे।

लखनऊ

७ मई १९५८

## जीवन को संवारें

भारतवर्ष ऋषि-मुनियों का देश है। यहां त्याग, तप और संयम की सर्वोच्च प्रतिष्ठा रही है। उसी जीवन को ऊंचा और श्रेष्ठ माना गया है, जो सच्चरित्र-युक्त हो, सत्यनिष्ठा, नीतिनिष्ठा, प्रामाणिकता से सम्पन्न हो। पर युग बदला और युग के बदलने के साथ ही जीवन के मूल्य-मानक बदल गए। आज सच्चरित्र, सत्यनिष्ठा, प्रामाणिकता आदि का स्थान अर्थ ने ले लिया है। इसी कारण व्यक्ति अर्थ के पीछे पागल-सा हो रहा है। उसकी प्राप्ति के लिए वह जघन्य-से-जघन्य कार्य करते भी नहीं हिचकिचाता। थोड़े-से पैसों के लिए अपने ईमान को बेचते नहीं सकुचाता। ऐसा प्रति-भाषित होता है कि अर्थ मनुष्य का जीवन-साध्य बन गया है, जबकि वास्तव में वह जीवन-यापन का साधनमात्र है। यह भयंकर भूल हुई है। इस भूल के कारण समाज में भ्रष्टाचार, शोषण, चोरबाजारी, रिश्वत, हिंसा जैसी अनेकानेक बुराइयां व्यापक रूप में फैली हैं। आम आदमी का जीवन इन बुराइयों का घर बन गया है। क्या व्यापारी, क्या मजदूर, क्या विद्यार्थी, क्या अध्यापक, क्या पुरुष और क्या महिला सभी कमोबेश इन बुराइयों की गिरफ्त में हैं। और तो क्या, शासक-वर्ग भी, जिस पर राष्ट्र के प्रशासन को चलाने की गुरुतर जिम्मेवारी होती है, इन बुराइयों से मुक्त नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि समाज का कोई भी वर्ग ऐसा नहीं है, जो इन बुराइयों से सर्वथा बचा हुआ हो। ऐसी स्थिति में राष्ट्र का भविष्य उज्ज्वल कैसे होगा। इसलिए मैं सभी से कहना चाहता हूँ कि वे इस बिन्दु पर गंभीरता से चिंतन करें और इस धारणा को हृदय में अंकित कर पुष्ट कर लें कि अर्थ जीवन का साध्य नहीं है। उसके लिए अपना ईमान नहीं बेचना है, गलत काम नहीं करना है। यदि व्यापक रूप में यह एक कार्य होता है, तो निस्संदेह राष्ट्रीय चरित्र ऊंचा उठेगा।

मैं एक अर्किचन परिव्राजक हूँ। कोई भौतिक मांग मैं आपसे नहीं करूंगा। केवल एक अपेक्षा आपसे रखता हूँ कि आप अपने जीवन को नैतिक, प्रामाणिक एवं सच्चरित्रनिष्ठ बनाए रखने के लिए सदा जागरूक रहें। यदि आपका जीवन इस दृष्टि से स्वस्थ है, तब तो बहुत शुभ है। बस, आप

उसकी स्वस्थता को सुरक्षित रखने के लिए अप्रमत्त रहें। पर किसी कारण यदि अनैतिकता, भ्रष्टाचार, अप्रामाणिकता, रिश्वत, मद्यपान जैसी बुराइयां आपके जीवन में घुसपैठ कर गई हों तो आप उन्हें बाहर निकालने के लिए आत्म-साक्षी से संकल्पबद्ध हों, ताकि भविष्य में आपका जीवन इन बुराइयों से बचा रह सके। आपका यह कदम स्वयं आपके लिए तो मंगलकारी होगा ही, राष्ट्रीय चरित्र को ऊंचा उठाने में भी योगभूत हो सकेगा।

पुलिस लाइन्स, लखनऊ

११ मई १९५८

## आस्था सम्यक् बने

### सत्य-अहिंसा और जीवन-व्यवहार

सत्य और अहिंसा जीवन को संवारने वाले दो तत्व हैं। पर जाने क्यों, आज के मानव-मस्तिष्क में यह मिथ्या आस्था घर कर गई है कि अहिंसा और सत्य से जीवन नहीं चल सकता। वास्तविकता तो यह है कि हिंसा और असत्य से जीवन का काम नहीं चल सकता। क्यों? इसलिए कि ये दोनों आत्मा के स्वभाव नहीं हैं, गुण नहीं हैं। आत्मा के गुण सत्य और अहिंसा हैं। अब समझने की बात यह है कि जब सत्य और अहिंसा आत्मा के मौलिक गुण हैं, आत्म-स्वभाव हैं, तब उनके आधार पर जीवन कैसे नहीं चलेगा? मैं थोड़ा और विस्तार में जाना चाहता हूँ। एक व्यक्ति यदि यह निर्णय कर ले कि मैं सत्य का सर्वथा वर्जन कर मात्र असत्य से अपना काम चलाऊंगा तो क्या आप यह कल्पना कर सकते हैं कि उसका काम चल सकेगा? बहुत स्पष्ट है, कदापि नहीं चल सकेगा। यदि उससे पूछा जाएगा कि तुम कौन हो, तो क्या वह अपने आपको मनुष्य न बताकर पशु बताएगा? और कदाचित् बताएगा भी तो उसके लिए कितनी हास्यास्पद बात होगी। तात्पर्य यह है कि असत्य के आधार पर जीवन-व्यवहार नहीं चल सकता।

यही बात अहिंसा के लिए भी है। यदि कोई व्यक्ति सबके साथ हिंसक मनोवृत्ति से व्यवहार करे तो क्या कोई भी समझदार आदमी यह कल्पना कर सकता है कि उसका काम चल सकेगा? एक दिन भी चल सके, यह संभव प्रतीत नहीं होता। अतः श्रेयस्कर यही है कि मनुष्य अपनी अवधारणा को सम्यक् बनाए। अपने दिमाग से इस मिथ्या अवधारणा को निकाल दे कि अहिंसा और सत्य का जीवन-क्रम में प्रयोग अव्यवहार्य है। हाँ, यह तो सम्भव है कि अहिंसा और सत्य पर चलने से व्यक्ति के सामने कुछ कठिनाइयाँ आएँ, उसे सुख-सुविधाओं के साधन कुछ कम उपलब्ध हों, पर इसके समानान्तर यह भी सच है कि कठिनाइयों और सुख-सुविधाओं के साधनों की कमी के बावजूद भी उसको सहज शान्ति की अनुभूति होगी। वह शान्ति असत्य और

हिंसा से प्राप्त सुख-सुविधाओं के साधनों की प्रचुरता में भी नहीं हो सकती ।

**सत्य-अहिंसा का प्रचार क्यों ?**

बन्धुओ ! हिंसा और असत्य का संसार से सर्वथा उच्छेद हो जाएगा, ऐसा सोचना अतिकल्पना है । ऐसा न कभी अतीत में सम्भव हुआ है और न भविष्य में कभी संभव है । प्रश्न किया जा सकता है कि तब अहिंसा और सत्य का प्रचार क्यों किया जाए ? उसका क्या उद्देश्य हो सकता है ? उत्तर सीधा-सा है—हिंसा और असत्य अहिंसा और सत्य पर हावी न हो जाएं, इसलिए इनका प्रचार आवश्यक है ।

जितनी भी दुष्प्रवृत्तियां आज हम जन-जीवन में देख रहे हैं, उनके मूल में असत्य और हिंसा ही हैं । उनको मिटाने के लिए जन-जीवन को अधिकाधिक सत्य-अहिंसामय बनाना होगा । अणुव्रत आंदोलन इसी पवित्र उद्देश्य से कार्य कर रहा है । इस कार्यक्रम की सफलता के लिए राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक का सक्रिय सहयोग अपेक्षित है । आप भी राष्ट्र के नागरिक हैं । क्या आप मेरी अपेक्षा को पूरी करेंगे ?

क्लेक्टरेट; लखनऊ

१४ मई १९५८

## धर्म वर्तमान जीवन से जुड़े

मूलभूत समस्या क्या है ?

संसार की आबादी बड़ी तीव्र गति से बढ़ रही है। पर उस अनुपात में मानवता नहीं बढ़ रही है, बल्कि उसका क्रमशः ह्रास हो रहा है, ऐसा कहना अनुपयुक्त नहीं होगा। आदमी की नैतिकता बड़ी तेजी से रसातल की ओर जा रही है। उसी का यह प्रतिफल है कि चारों ओर भ्रष्टाचार फैल रहा है, हिंसा का वातावरण बन रहा है। इसका कारण क्या है ? इसका मूलभूत कारण है—अनास्था का भाव। अनास्था का भाव किसके प्रति ? अनास्था का भाव नैतिकता, प्रामाणिकता, आत्मनिष्ठा, अहिंसा आदि तत्वों के प्रति। इस अनास्था के कारण आज एक व्यापारी इस भाषा में सोचने लगा है कि अप्रामाणिकता, मिलावट, झूठा तोल-माप आदि के बिना व्यापार नहीं चल सकता। यदि वह गलत काम न करे तो उसे भूखा मरना पड़े। एक राज्याधिकारी सोचता है कि रिश्वत लिए बिना वह अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता। रिश्वत से सर्वथा दूर रहकर भी वह अपना काम चला सकता है, यह उसके समझ से परे की बात हो रही है। एक विद्यार्थी सोचता है कि परीक्षा में नकल करना तो आवश्यक है, अन्यथा वह उत्तीर्ण नहीं हो सकता। जनता सोचती है कि अपनी मांगें मनवाने के लिए जब तक तोड़-फोड़ और हिंसा नहीं की, तब तक सरकार मानेगी नहीं। सरकार भी यह सोचती है कि जब तक गोली नहीं चलाई जाएगी, तब तक यह जनता माननेवाली नहीं है। इस अनास्था ने सचमुच समाज और राष्ट्र का बहुत बड़ा अहित किया है। यदि हम समाज और राष्ट्र को विकासोन्मुख देखना चाहते हैं तो इस अनास्था को मिटाना होगा। इसके स्थान पर चारित्रिक एवं नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था जगानी होगी। मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करनी होगी।

तो परलोक स्वयं सुधरेगा

धर्म नैतिक, चारित्रिक एवं मानवीय मूल्यों की जन-जन में प्रतिष्ठा

का सबसे बड़ आधार और साधन है। पर आज उसका जो स्वरूप लोगों के सामने है, वह संतोषप्रद नहीं है। वह अपनी गुणात्मकता को सुरक्षित नहीं रख पाया है। धर्मग्रन्थों एवं पन्थों की सीमाओं में जकड़ा हुआ पड़ा है। जन-जीवन के व्यवहार और आचरण से उसका संबंध कटता-सा जा रहा है। क्या यह मानवता की विडम्बना नहीं है? मैं नहीं समझता, उन ऊंचे-ऊंचे आदर्शों से क्या बनने का है, जब जीवन के व्यवहार और आचरण में उनकी तनिक भी झलक नहीं है। लोग इस बात पर ध्यान क्यों नहीं देते कि धर्म मात्र परलोक-शुद्धि के लिए नहीं है, वह इस जीवन को भी विकसित और उन्नत बनाने का साधन है। फिर यह भी तो समझना चाहिए कि जो धर्म वर्तमान के जीवन को उन्नत और पवित्र नहीं बनाता, वह परलोक की शुद्धि का साधन कैसे बन सकेगा? अपेक्षा है, धर्म को वर्तमान जीवन के व्यवहार एवं आचरण की पवित्रता का साधन बनाया जाए। इससे परलोक तो स्वयं सुधर जाएगा। उसके बिगड़ने का कोई प्रश्न ही नहीं है। अणुव्रत आंदोलन व्यक्ति के वर्तमान जीवन को सुधारने का कार्यक्रम है। आचरण और व्यवहार की पवित्रता का उपक्रम है। इस आंदोलन के व्यापक फैलाव से नैतिक, चारित्रिक एवं मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा को सुदृढ़ आधार प्राप्त होगा। आप आंदोलन के छोटे-छोटे संकल्पों को स्वीकार करें। निश्चय ही आप सच्चे धार्मिक बनने का गौरव प्राप्त कर सकेंगे।

बक्सी तालाब

२६ मई १९५८

## अंधकार में प्रकाश खोजें

अपेक्षित है आत्म-मंथन

यह जीवन एक यात्रा है। इस यात्रा का पथ कभी समतल मैदान से होकर गुजरता है तो कभी चढ़ाव-उतारभरी विषम घाटियों से होकर। व्यक्ति के जीवन में कुछ प्रसंग ऐसे आते हैं, जब वह स्वार्थ, लोभ, लालसा तथा प्रतिहिंसा जैसे असद् भावों से आहत हो अपना आत्म-संतुलन खो बैठता है। ऐसी स्थिति में उसे औचित्य-अनौचित्य का भान नहीं रहता। करणीय-अकरणीय का विवेक नहीं रहता। यह आत्म-दौर्बल्य उसे अपराध की ओर ढकेलता है। इसके परिणामस्वरूप वह कभी हत्या करता है, कभी चोरी करता है, डाका डालता है, कभी धोखाधड़ी और जालसाजी करता है। अब यदि अपराध प्रकट और प्रमाणित हो जाता है तो उसे बंदी बनाकर कारावास में डाल दिया जाता है। मैं मानता हूँ, सचमुच बंदीपन एक दुःख दुःख है, क्योंकि बंदी का जीवन पारतंत्य का जीवन है और पारतंत्य से बढ़कर इस जगत् में कोई दुःख नहीं होता, अभिशाप नहीं होता। परन्तु मैं बंदीजनों से कहना चाहता हूँ कि वे अपना विवेक जागृत करें और दुःख में भी सुख का स्रोत बहाएं। अंधकार में भी प्रकाश खोजने की कला सीखें। अभिशाप को भी वरदान में बदलना सीखें। वे पारतंत्य के इस जीवन में रोयें-बिलखें नहीं, अपितु आत्म-मंथन करें, स्वयं के द्वारा हुए अपराधों का पर्यवेक्षण करें। भावी-जीवन में उनकी पुनरावृत्ति न करने का संकल्प करें। यदि पर्यवेक्षण से गुजरने पर किसी को ऐसा लगे कि उसके द्वारा कोई अपराध नहीं हुआ है तो यह मानकर अपने मन को समझाए कि संभवतः कोई भेरा पूर्व का संस्कार ऐसा रहा होगा, जिसका प्रतिफल मैं आज भोग रहा हूँ। मैं तो बंदी हूँ, परतंत्र हूँ, पर संसार में ऐसे भी तो बहुत-सारे प्राणी हैं, जो व्यावहारिक दृष्टि से बंदी नहीं हैं, पर प्रकृतिदत्त ऐसी परतंत्रता में जकड़े हुए हैं कि उनका जीवन किसी भी बंदी से कम क्लेश-पूर्ण और कष्टमय नहीं है। मैं पूछना चाहता हूँ, क्या अंधे, बहरे, मूक, पंगु, विकलांग आदि का जीवन ऐसा ही नहीं है? वे देख नहीं सकते, सुन नहीं सकते, बोल नहीं सकते, चल नहीं सकते, शरीर की अनेक आवश्यक क्रियाएं



ढंग से संपादित नहीं कर सकते । फिर एक बात और भी है । सजा की अवधि समाप्त होने पर आप तो संभवतः कारावास से छूट भी जाएंगे, पर उनका यह जीवनभर का बंदीपन कौन मिटा सकता है । इस बात को दृष्टिगत रखते हुए प्रत्येक बंदी को चाहिए कि वह अपने वर्तमान जीवन को निराशा-हताशा और विलाप में न बिताए । उसे तो ऐसा ही मानना चाहिए कि वह अपना ऋण चुका रहा है ।

**संकल्प-चेतना जगाएं**

हम अणुध्रत आंदोलन के रूप में एक व्यापक कार्यक्रम चला रहे हैं । यह कार्यक्रम व्यक्ति-व्यक्ति के सुधार से समाज-सुधार की परिकल्पना लेकर चलता है । इसके माध्यम से एक तरफ जहां राज्याधिकारी, कर्मचारी, मजदूर, व्यापारी, विद्यार्थी, अध्यापक आदि वर्गों के लोगों के चरित्र को ऊंचा उठाने का प्रयास कर रहा है, वहीं दूसरी ओर समाज से पृथग्भूत तथा उपेक्षित कहे जाने वाले वर्ग को भी नैतिक एवं चारित्रिक दृष्टि से उन्नत एवं समृद्ध बनाने के लिय सचेष्ट है । इसी उद्देश्य से आज मैं कारावास में आपके बीच आया हूं । मेरा आह्वान है कि चारित्रिक विशुद्धि के द्वारा जीवन को संवारने के लिए आप अपनी संकल्प-चेतना को जागृत करें । निश्चित ही आपके जीवन का एक शुभ अध्याय शुरू होगा ।

सीतापुर

६ जून १९५८

## साहित्यकार नैतिक जागरण के सजग प्रहरी बनें

साहित्य जीवन का एक मधुर और सरल पहलू है। हृदय को जैसी आनन्दानुभूति और तुष्टि साहित्य के अनुशीलन में होती है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। मेरी दृष्टि में साहित्यकार बहुत बड़ी शक्ति का ज्योतिर्मय पुंज है। युग-युग में वह जन-जीवन की धारा को एक अभिनव मोड़ देता रहा है। उसकी कोमलकान्त पदावली में एक सहज आकर्षण होता है, जो तत्वोपदेश में एक विशेष प्रकार की सुकुमारता ला देता है। इसीलिए प्राचीन कवियों ने साहित्यकार के माध्यम से दिये जाने वाले उपदेश को कान्तासम्मित उपदेश कहा है।

आज का युग नैतिक दुर्भिक्ष का युग है। जीवन के नैतिक एवं चारित्रिक मूल्य बिखरते जा रहे हैं, नष्ट होते जा रहे हैं। स्वार्थपरायणता एवं लोभवृत्ति ने मानव को इतना निकृष्ट बना दिया है कि नीतिनिष्ठा, सत्यनिष्ठा, प्रामाणिकता, ईमानदारी, सदाचरण जैसे गुण तिरोहित होते जा रहे हैं। ऐसे विषम समय में साहित्यकार और कवि पर लोक-जीवन की धारा को नया मोड़ देने का एक बिना सौंभा हुआ उत्तरदायित्व आ जाता है। इसलिए जन-जीवन को सुसंस्कारसंपन्न और संयमप्रधान बनाने में एक बड़ी भागीदारी आज के साहित्यकार को निभानी है। अणुव्रत आंदोलन पिछले एक दशक से राष्ट्र में आध्यात्मिक जागृति एवं नैतिक उत्थान की एक महत्वाकांक्षी योजना लिए कार्यरत है। मैं चाहता हूँ, साहित्यकार बन्धु आत्म-शुद्धि एवं जीवन-शुद्धि के इस मंगल अभियान में अपना समुचित योगदान दें। वे नैतिक जागरण के सजग प्रहरी बनें। यह राष्ट्र और समाज की अत्यन्त उल्लेखनीय सेवा होगी।

हिन्दी सभा, सीतापुर

४ जून १९५८

## आदर्श जन-सेवक कौन ?

जनता आचरण देखती है

आज मैं महिला कार्यकर्त्रियों के प्रशिक्षण-शिविर में आया हूँ। सार्वजनिक कार्यकर्ताओं या कार्यकर्त्रियों की जीवनशैली कैसी होनी चाहिए, इसका स्पष्ट चित्र शिविर-प्रशिक्षु प्रत्येक कार्यकर्त्री के दिमाग में बिलकुल स्पष्ट होना चाहिए। एक अच्छे कार्यकर्ता का जीवन विनय, त्याग, ऋजुता एवं नैतिकला से अभिमंडित होना चाहिए, अन्यथा वह जनता को प्रभावित नहीं कर सकता। लोगों पर उसके कहने का वह प्रभाव नहीं पड़ता, जो उसकी जीवन-चर्या का पड़ता है। जनता यह नहीं देखती कि वह क्या कहता है? बल्कि वह तो यह देखती है कि वह क्या करता है? उसका आचरण कैसा है? लोगों के साथ उसका व्यवहार कैसा है? उसकी विचार-शैली कैसी है? विकास-अवरोधक तत्व

अहंकार जीवन-विकास का सबसे बड़ा अवरोधक तत्व है। यह विनय-नम्रता जैसे सात्विक गुणों को ढकता है। इसलिए प्रत्येक कार्यकर्त्री के लिए यह अत्यावश्यक है कि वह इससे सलक्ष्य बचती हुई अपने जीवन में निर्हंकारिता को प्रकटाए, सात्विक गुणों की सुरक्षा करे।

दंभ और छलना भी जीवन-विकास के अन्य बाधक तत्व हैं। प्रत्येक कार्यकर्त्री को इनसे भी अपने को अछूता और अप्रभावित रखना अपेक्षित है। इससे उसे अपने जीवन को संवारने में बहुत महत्त्वपूर्ण सहयोग प्राप्त होगा। सेवाधर्मः परम गहनो

प्रश्न है, वह इनसे अछूती और अप्रभावित कैसे रहे? इसके लिए उसे स्वयं को साधना होगा। अपने-आपमें ही वह क्षमता पैदा करनी होगी। गहराई से देखा जाए तो एक जन-सेवक का जीवन साधना का जीवन है। यह कोई बच्चों का खेल-तमाशा नहीं। राजर्षि भर्तृहरि ने तो यहां तक कह दिया— 'सेवाधर्मः परम गहनो योगिनामप्यगम्यः।' सेवा परम गहन तत्व है, योगिजनों के लिए भी वह अगम्य है। उसके रहस्य को समझना उनके लिए भी सहज नहीं है। पर इस बात को सुनकर किसी कार्यकर्त्री को निराश-

आदर्श जन-सेवक कौन ?

८३

हताश होने की जरूरत नहीं है। जरूरत यह है कि वह जागरूक एवं उद्बुद्ध बनकर आगे बढ़े। ख्याल रहे यह वह राजपथ है, जिस पर चलने वाला निर्बाध रूप में अपनी मंजिल तक पहुंचता है।

### जीवन सच्चरित्र एवं संयम से भावित हो

कार्यकर्त्रियां यह भी समझे कि वे जन-सेविकाएं बनकर जनता पर कोई अहसान नहीं करतीं। निश्चय में तो इस बहाने वे अपनी ही सेवा करती हैं। आप देखें, सच्चा जन-सेवक वही होता है, जो सच्चरित्र हो, जिसकी वृत्तियां संयमित हों। मैं पूछना चाहता हूं, क्या सच्चरित्र एवं संयममय जीवन जीना अपनी सेवा नहीं है? यदि कार्यकर्त्रियों के समक्ष यह तथ्य स्पष्ट होगा तो उनके मन में अभिमान आने की संभावना स्वयं क्षीण हो जाएगी।

### जरूरी है ज्ञान और क्रिया का योग

प्रशिक्षु कार्यकर्त्रियों का ध्यान मैं एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु पर केन्द्रित करना चाहता हूं। ज्ञान की जीवन में असंदिग्ध रूप से उपयोगिता है, उपादेयता है। पर उसके साथ चरित्र का योग भी आवश्यक है। चरित्रशून्य ज्ञान तो बेल पर लदी पुस्तकों के समान है, जिनका कि उसके लिए भार ढोने से अधिक और कोई उपयोग नहीं होता। इसलिए प्रत्येक प्रशिक्षु कार्यकर्त्री अपने मन में यह संकल्प संजोए कि वह सद्ज्ञान के अनुरूप ही अपने आचरण को बनाएगी।

### सच्ची-सेवा

आज राष्ट्र में नैतिक एवं मानवीय मूल्यों का ह्रास बड़ी तेज गति से हो रहा है। यदि समय रहते इस ह्रास को नहीं रोका गया तो राष्ट्र के सामने एक भयंकर विषम स्थिति पैदा हो जाएगी। राष्ट्र को वह स्थिति न देखनी पड़े, इसके लिए जन-जन की नैतिक एवं मानवीय चेतना को जागृत करना आज सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और आवश्यक काम है। शिविरार्थी कार्यकर्त्रियां यदि इस काम को अपने हाथ में लेती हैं, तो यह जनवादी राष्ट्र की सबसे बड़ी सेवा होगी। अण्व्रत आंदोलन नैतिक एवं मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा के उद्देश्य से प्रारम्भ किया गया एक व्यापक अभियान है। इस अभियान के माध्यम से वे इस कार्य को बहुत व्यवस्थित रूप में सम्पादित कर सकती हैं। वे जन-जन को इस अभियान के साथ जोड़ने का कार्य करें, उससे पूर्व यह अपेक्षित है कि वे स्वयं इस अभियान के साथ सक्रिय रूप में जुड़ें। ख्याल रहे, स्वयं जलकर ही दीपक दूसरों को प्रकाश बांट सकता है।

सीतापुर

५ जून १९५८

## अन्तर्-चक्षुओं का उद्घाटन हो

नेत्रहीनों का कैसा जीवन ?

आज मैं विश्वप्रसिद्ध नेत्र-चिकित्सालय में आया हूँ। मुझे बताया गया कि सेवा, व्यवस्था, चिकित्सकों आदि की दृष्टि से यह एशिया का सबसे बड़ा चिकित्सालय है। आप जानते हैं, आंख शरीर का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसके अभाव में व्यक्ति का जीवन कितना दुःखमय बन जाता है, यह किसी से छुपी हुई बात नहीं है। आप ही बताएं, नेत्रहीनों का कैसा जीवन ? उनके लिए तो जीवन में अंधेरा-ही-अंधेरा है। दिन और रात दोनों एक सरीखे हैं।

अन्तर्-चक्षु का महत्व

परन्तु एक बात बहुत ध्यान देने की है। आज आदमी अन्तर्-चक्षुओं अथवा ज्ञान-चक्षुओं की दृष्टि से भी अन्धा बनता जा रहा है। यह बाह्य नेत्रहीनता से भी अधिक गंभीर स्थिति है। यह आंतरिक अंधेपन का ही परिणाम है कि मनुष्य को बुरे-से-बुरा काम भी अच्छा लगता है। निकृष्ट-से-निकृष्ट कार्य भी श्रेष्ठ लगता है। उसीकी यह दुष्परिणति है कि आज वह शोषण, अन्याय, विश्वासघात, मिथ्याचार, हत्या जैसे अमानवीय कृत्यों में फंसता हुआ जरा भी संकोच नहीं करता। दंभचर्या एवं दूषित वृत्तियों से उसका जीवन जर्जरित हो रहा है। इसलिए आज की सबसे बड़ी अपेक्षा यह है कि जन-जन के अन्तर्-चक्षु उद्घाटित करने का सघन प्रयत्न किया जाए।

‘चक्खुदयाणं’ होते हैं आप्तपुरुष

हमारे यहां प्राचीन ग्रन्थों में आप्तपुरुषों के लिए ‘चक्खुदयाणं’ विशेषण का प्रयोग हुआ है। ‘चक्खुदयाणं’ का हिन्दी रूप होगा—चक्षुप्रद। यानी आन्तरिक आंख देनेवाला। इसी क्रम में गुरु को नेत्रोन्मीलक कहा गया है। ज्ञान रूपी अंजन की शलाका के द्वारा वे जन-जन के नेत्रों का उन्मीलन करते हैं। यहां भी आंतरिक नेत्रों के उन्मीलन की बात है। इससे आप स्पष्ट अनुमान कर सकते हैं कि भारतीय चिंतन में आंतरिक चक्षुओं को कितना महत्व दिया गया है। बहुत सच तो यह है कि अन्तर्-चक्षुओं के आधार पर ही मनुष्य सही अर्थ में मनुष्य बनता है। आन्तरिक अंधेपन के

अन्तर्-चक्षुओं का उद्घाटन हो

रहते मानव-मानव कहलाने के योग्य भी नहीं रहता । उस स्थिति में वह पशु से भी बदतर और हीन होता है ।

अणुव्रत आंदोलन इस आंतरिक अंधेपन को मिटाकर जन-जन को नया आलोक प्रदान करता है, जिसको कि प्राप्त कर वह अपने जीवन को सही दिशा में गतिशील कर सकता है । यह आंदोलन हिंसा, असत्य, शोषण; अन्याय, विश्वासघात जैसी घिनौनी प्रवृत्तियों का परिहार कर मानव-मानव को नैतिक एवं मानवीय दृष्टि से उद्बुद्ध देखना चाहता है । मैं चाहता हूँ, इस महाचिकित्सालय के चिकित्सक, अधिकारी एवं कार्यकर्ता सभी इस आंदोलन के आधार एवं स्वरूप को समझें और इस अभियान के साथ सक्रिय रूप में जुड़ें । यदि ऐसा होता है तो मैं दृढ़ विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि यह चिकित्सालय न केवल बाहरी नेत्र और दृष्टि देने वाला ही होगा, अपितु आंतरिक चक्षुओं के उद्घाटन का भी प्रमुख केन्द्र बन जाएगा ।

सीतापुर

५ जन १९५८

## सुख की मृगमरीचिका से बचें

### आत्म-विस्मृति की स्थिति

मनुष्य संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। पर आज वह आत्म-दौर्बल्य से ग्रस्त है। इसलिए वह असुविधा और प्रतिकूल परिस्थिति से लोहा लेने का साहस अपने में नहीं पाता है। असीम शक्तियों का धनी इस प्रकार असहाय-सा बन जाए, यह मानवता की बहुत बड़ी अवमानना है। प्रश्न है, यह क्यों है? इसका उत्तर सीधा-सा है—मानव अपने स्वरूप को भूला जा रहा है। वह सुखाभास को सुख मान भ्रमित हो रहा है। कृत्रिम तृप्ति में आसक्त बन रहा है। इसका दुष्परिणाम प्रत्यक्ष है। आज वह सत्य, शौच, सदाचार, नैतिकता से परे हो रहा है। उसे ऐसा लगता है कि मैं इनसे जुड़ा रहकर अपनी लक्ष्य-संसिद्धि नहीं कर सकता। यह कैसी आत्म-विस्मृति की स्थिति है! मेरी स्पष्ट मान्यता है कि जब तक मानव इस स्थिति से नहीं उबरेगा, तब तक उसका जीवन एक विडम्बना से अधिक कुछ नहीं होगा। इसलिए यह नितान्त अपेक्षित है कि वह आत्म-स्वरूप को पहचानने का प्रयास करे। यह प्रयास उसे अपनी आत्म-शक्तियों से परिचित कराएगा, प्रतिकूलता एवं असुविधा से लोहा लेने का सामर्थ्य प्रदान करेगा। वह मानवीय प्रतिष्ठा के अनुकूल अपने जीवन का निर्माण कर सकेगा।

### भौतिकता का बढ़ता प्रभाव

आज की यह बहुत बड़ी त्रासदी है कि मानव-जीवन पर भौतिकवाद प्रभावी बनता जा रहा है। इस कारण मानव अपनी राह से भटक गया है। वह आवश्यकताओं को बढ़ाता है और उनकी पूर्ति के लिए तरह-तरह के उपक्रम करता है। इस प्रयत्न में वह भूल जाता है कि न्याय और सत्य की हत्या नहीं होनी चाहिए। उसे तो मात्र एक बात याद रहती है कि उसका स्वार्थ पूरा होना चाहिए। भले वह शोषण से हो, अन्याय से हो, अनीति से हो, असत्य से हो। कैसी बात है कि वह ऐसा करता तो इसलिए है कि उसे सुख की प्राप्ति होगी, शांति की प्राप्ति होगी, परन्तु यथार्थ में उसे न सुख ही मिलता है और न शांति ही! यह तो एक मृग-मरीचिका है।

सुख की मृगमरीचिका से बचें

पानी होने के आभास के कारण बेचारा हरिण हांपता-हांपता भी दूर-से-दूर दौड़ता जाता है और वह मृत्तिकामय मैदान पानी का आभास देता हुआ उसे उत्तरोत्तर आगे-से-आगे खींचता चला जाता है। पर वह कब तक दौड़ता रह सकता है ? आखिर दम तोड़ देता है। क्या आज के मनुष्य की भी यही दशा नहीं है ? यदि वह इस दशा से छूटना चाहता है तो उसे भौतिकवाद की मृग-मरीचिका की निःसारता को समझना होगा। आत्म-शोधन के मार्ग पर चरणन्यास करना होगा। इसके सिवाय दूसरा कोई विकल्प नहीं है, जो व्यक्ति को सच्चे सुख और शांति की अनुभूति करा सके। मैं पूछना चाहता हूँ, क्या ऐसा कोई व्यक्ति है, जो सुख और शांति की चाह नहीं रखता ? जब हर व्यक्ति इस चाह के साथ जुड़ा हुआ है, तो उसे इसकी उपलब्धि के सही मार्ग को अपनाना चाहिए। ध्यान रहे, सही मार्ग ही व्यक्ति को अभीप्सित मंजिल पर पहुंचा सकता है।

**मानव को मानव की प्रतिष्ठा दिलानेवाला कार्यक्रम**

अणुवत आंदोलन आत्म-संयम की भूमिका पर व्यक्ति-व्यक्ति के लिए सुख और शांति का मार्ग प्रशस्त करने वाला कार्यक्रम है। आप यह कभी न भूलें कि सच्चे सुख और शांति का मार्ग आत्म-संयम के समतल मैदान से होकर गुजरता है। यह आंदोलन हृदय-परिवर्तन की कार्यशैली से मनुष्य को उसकी प्रतिष्ठा प्रदान करने का अभियान चला रहा है। इसका अभिप्रेत है कि मनुष्य की सुषुप्त आत्म-शक्तियां जागें और वह मानवता के राजमार्ग पर आत्म-विश्वास के साथ आगे बढ़े। अपेक्षा है, व्यक्ति-व्यक्ति इस आंदोलन की आत्मा से परिचित हो और इसके साथ हर स्तर पर जुड़े। वकील लोग बौद्धिक होते हैं, इसलिए वे इसके दार्शनिक पक्ष को स्वयं बहुत अच्छे ढंग से समझ सकते हैं और दूसरों को समझा भी सकते हैं। मैं चाहता हूँ, आप वकील जन अपनी बौद्धिक क्षमता का उपयोग इस रचनात्मक कार्य को आगे बढ़ाने में करें। इससे आप अपना हित तो साधेंगे ही, समाज, राष्ट्र एवं पूरी मानवता की बहुत बड़ी सेवा भी कर सकेंगे।

वार एसोसियेशन, सीतापुर

६ जून १९५८



## समाज-सुधार की प्रक्रिया

स्वयं से शुरुआत हो

आज चारों ओर समाज-निर्माण और राष्ट्र-निर्माण की चर्चा है। निर्माण भले किसी भी स्तर पर क्यों न हो, वह स्वागतार्ह है। पर इस सन्दर्भ में एक बात बहुत महत्वपूर्ण है। समाज-निर्माण एवं राष्ट्र-निर्माण की चर्चा करनेवाले तथा इसकी आकांक्षा करनेवाले सबसे पहले स्वयं के जीवन का निर्माण करें। शुभ शुरुआत स्वयं से होगी, तभी समाज-निर्माण एवं राष्ट्र-निर्माण की आकांक्षा फलीभूत हो सकेगी। अन्यथा वह मात्र चर्चा और आकांक्षा तक ही सीमित रह जाएगी, जिसकी कि कोई सार्थकता मैं नहीं देखता। मैं पूछना चाहता हूँ, क्या रोटी की चर्चा करने मात्र से पेट भर जाता है? स्पष्ट है, नहीं भरता। फिर उसकी चर्चा की क्या सार्थकता रह जाती है। इसी अपेक्षा से मैंने कहा, समाज-निर्माण एवं राष्ट्र-निर्माण की कोरी चर्चा की कोई सार्थकता दिखाई नहीं देती। उसकी सार्थकता तभी है, जब उसकी क्रियान्विति की सम्यक् प्रक्रिया को अपनाया जाए। उसकी सम्यक् प्रक्रिया यही है कि व्यक्ति-व्यक्ति स्वयं के निर्माण पर अपना ध्यान केंद्रित करे। व्यक्ति-व्यक्ति के जोड़ से ही समाज और राष्ट्र का निर्माण होता है, इसलिए व्यक्ति-व्यक्ति के निर्माण से समाज-निर्माण एवं राष्ट्र-निर्माण स्वयं फलीभूत हो जाएंगे।

आचार की उपेक्षा समाप्त हो

आज समाज-निर्माण एवं राष्ट्र-निर्माण की बात कार्यरूप नहीं ले रही है, इसका मूलभूत कारण यही तो है कि व्यक्ति स्वयं के जीवन-निर्माण की दिशा में गंभीर नहीं है। व्यक्ति के जीवन-निर्माण के दो पक्ष हैं—विचार और आचार। एक तरफ विचारों की उच्चता अपेक्षित है तो दूसरी तरफ आचार की शुद्धता। आज का आदमी बातें तो बहुत ऊंची-ऊंची करता है, पर उसके अनुरूप अपने जीवन को ढालने का प्रयास नहीं करता। मैं नहीं समझता, ज्ञान को वे बड़ी-बड़ी बातें किस काम की, जिनका आचरण व्यक्ति

समाज-सुधार की प्रक्रिया

स्वयं नहीं करता। यह जीवन के आचार-पक्ष की उपेक्षा का ही दुष्परिणाम है कि आज राष्ट्र में सर्वत्र परमार्थ के स्थान पर स्वार्थ, सदाचार के स्थान पर भ्रष्टाचार, संयम के स्थान पर असंयम, प्रामाणिकता के स्थान पर अप्रामाणिकता, सत्य के स्थान पर असत्य तथा श्रद्धा के स्थान पर छद्म प्रभावी हो रहा है।

और तो क्या, जन-सेवा जैसा कार्य भी स्वार्थपरायणता से जुड़ रहा है। क्या यह दंभ नहीं है? स्वार्थ छोड़े बिना परमार्थ सध जाए, यह कभी भी संभव नहीं है। सेवा का सबसे पहला कदम अपनी जीवन-शुद्धि है। प्रकारान्तर से हम इस बात को यों कह सकते हैं कि सेवा का सबसे पहला कदम आत्म-सेवा है, जिसके बिना कि जन-सेवा की बात निरर्थक है। जिसने अपने जीवन को नहीं मांजा, छल, कपट, भ्रूठ, विश्वासघात, अनीति जैसे दुर्गुणों से मुंह नहीं मोड़ा, वह जन-सेवा क्या करेगा। जो स्वयं नहीं सुधरा, वह जनता को सुधार की क्या दिशा देगा। इसलिए सबसे पहली अपेक्षा यही है कि व्यक्ति अपना ध्यान स्वयं के सुधार पर केंद्रित करे।

### सच्ची सेवा

आप देख रहे हैं, देश में स्वातंत्र्य आया पर इस स्वातंत्र्य के परिणामस्वरूप जन-जीवन में जो सुख और आनन्द की धारा प्रवाहित होनी चाहिए थी, वह नहीं हुई। लोगों ने कल्पना की थी— देश स्वतंत्र होने के पश्चात् अन्याय नहीं टिकेगा। कोई रिश्वत नहीं लेगा। एक-दूसरे के प्रति अविश्वास और धोखे की मनोवृत्ति नहीं पनपेगी। सर्वत्र सुख और चैन की बंशी बजने लगेगी। पर क्या यह सब उस भिखारी के स्वप्निल वैभव और ठाट-बाट जैसा नहीं है, जो सपना टूटने के साथ ही समाप्त हो गया। आज की जो स्थिति है, वह आपसे छुपी नहीं है। क्या अधिकारी, क्या व्यापारी, क्या मजदूर, क्या मिल मालिक, क्या विद्यार्थी, क्या अध्यापक, क्या अभिभावक सभी वर्गों के लोग एक विषमता, निराशा एवं उद्वेग की छाया में हैं। ऐसी स्थिति में सार्वजनिक कार्यकर्ताओं पर एक बहुत बड़ी जिम्मेवारी आती है। वे अपनी जीवन-साधना से समाज में नव-प्रेरणा भरें। राष्ट्र के पतनोन्मुख चरित्र को सहारा देने के लिए उच्च आचार एवं नैतिकता की एक मजबूत दिवाल खड़ी करें और उसकी पहली ईंट वे स्वयं बनें। इस दिशा में अणुन्नत आंदोलन उनके लिए पथ का आलोक बन सकता है। इस आलोक में कदम-कदम बढ़ते जाएं। उनकी सफलता असंदिग्ध है।

सीतापुर

१२ जून १९५५

## कार्यकर्ताओं की जीवन-दिशा

कार्यकर्ताओं का जनता के साथ सीधा सम्पर्क होता है। अतः उनके जीवन का सीधा प्रभाव समाज पर पड़ता है। इस अपेक्षा से उन पर जनता को प्रशिक्षित करने का बहुत गुरुतर दायित्व है। पर आज जनता की स्थिति को देखकर ऐसा लगता है कि कार्यकर्ता अपने उत्तरदायित्व को निभाने के प्रति जागरूकता नहीं बरत रहे हैं। उनका जीवन सहज रूप से संयत होना चाहिए। पर यह बहुत स्पष्ट है कि आज वे संयताचरण से दूर हटते जा रहे हैं। वे केवल अधिकार चाहते हैं, पर उनका कुछ कर्तव्य भी है, इस ओर उनका ध्यान नहीं जाता। इसलिए मैं उनसे कहना चाहूंगा कि सबसे पहले वे अपनी इन कमियों से छुटकारा पाने के लिए कृतसंकल्प हों। मैं आपसे ही पूछता हूँ, जो व्यक्ति अपने उत्तरदायित्व को नहीं समझता, समझता भी है तो उसे निभाने के प्रति जागरूकता नहीं बरतता, वह क्या कभी सफल हो सकता है? जिस कार्यकर्ता का जीवन असंयत वृत्तियों से घिरा हो, वह क्या सुख और शांति की अनुभूति कर सकता है? दूसरों के सुधार का मार्ग प्रशस्त कर सकता है? जो कार्यकर्ता अपने कर्तव्य के प्रति उपेक्षा का भाव बरतता है, उसे अनदेखा करता है, वह क्या कोई उल्लेखनीय कार्य कर सकता है? बहुत स्पष्ट है, इन सबका उत्तर नकारात्मक है। ऐसी स्थिति में मैं कार्यकर्ताओं को आह्वान करता हूँ कि वे अपने जीवन और जीवन-शैली पर गंभीरता से ध्यान दें। जो अवांछनीय तत्व उनके साथ जुड़ गए हैं, उनको एक-एक कर विदा करें। असत्य, विश्वासघात, धोखा, उत्पीड़न जैसे जीवन-घातक तत्वों से अपना संबंध तोड़ें। उनके स्थान पर सत्य, मैत्री, प्रामाणिकता, नीतिनिष्ठा जैसे सद्गुणों को संजोएँ, जिससे कि जीवन प्रेरक और आदर्श बने। जैसा कि मैंने प्रारंभ में ही कहा, जनता से सीधा संपर्क होने के कारण कार्यकर्ताओं का उस पर सीधा प्रभाव पड़ता है। इस स्थिति में यदि उनका जीवन प्रेरक और आदर्श होता है तो जानता को सहज रूप से सद्गुणों का प्रशिक्षण मिलता है। प्रेरणा मिलती है। आशा है, भारत सेवक समाज के कार्यकर्ता इन बातों पर अपना ध्यान केंद्रित कर एक मिसाल पेश करेंगे।

लखनऊ

१९ जून १९५८

## जीवन-विकास का मार्ग

मानव-समाज में नारी का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। जागृत नारी जहाँ अपने जीवन को विकसित करती है, वहाँ समूचे परिवार पर भी उसकी सात्विकता की छाप पड़ती है। उसके आदर्श जीवन का ज्योति-पिंड चारों ओर अपने प्रकाश की रश्मियाँ बिखेरता है। अतः प्रत्येक महिला को चाहिए कि वह इस योग्यता का वरण करने का संकल्प संजोए। पर ऐसा मात्र चाहने से नहीं होगा। उसके लिए तीन बातों की साधना भी अनिवार्य रूप में अपेक्षित है। वे तीन बातें हैं—सम्यक् श्रद्धा या विश्वास, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र। श्रद्धा का मिथ्यात्व व्यक्ति को भटका देता है। वह सही दिशा में गति नहीं कर पाता। सम्यक् श्रद्धा व्यक्ति के लिए हर परिस्थिति में सत्य पर अडिग बने रहने की प्रबल प्रेरणा होती है। सम्यक् ज्ञान उसे सत्याचरण पर निरन्तर आगे-से-आगे बढ़ने के लिए शाक्ति देता है, मार्ग प्रशस्त करता है। सम्यक् चारित्र तो मानव-जीवन का अन्तःसार ही है। उसके बिना तो जीवन निःसार है, भारभूत है। अहिंसा, मैत्री, भाईचारा, सहिष्णुता, समता, निर्लोभता, निर्गर्वता, प्रामाणिकता, सत्य, नीतिनिष्ठा आदि सद्गुण उसके ही विभिन्न फलित हैं। मैं चाहूँगा, प्रत्येक बहिन उपरोक्त तीनों बातों की आराधना करती हुई अहिंसा, मैत्री आदि सद्गुणों से अपने जीवन को अधिक-से-अधिक भावित करे। ये सद्गुण उसके जीवन में एक दिव्य चेतना का प्रादुर्भाव करेंगे। इसके परिणामस्वरूप उसका अपना अभ्युदय तो होगा-ही-होगा, बालकों तथा समग्र कौटुम्बिक जनों पर भी उसका सीधा असर होगा। यह एक प्रकट तथ्य है कि बालकों एवं पारिवारिक सदस्यों को सुसंस्कारित करने का जो कार्य अनेक प्रयत्नों से नहीं बनता, वह महिलाओं के पवित्र एवं सुसंस्कारित जीवन से अपने-आप हो जाता है।

डालीगंज (लखनऊ)

१९ जून १९५८

## अणुव्रत आंदोलन की प्रासंगिकता

### अर्थप्रधान मनोवृत्ति का दुष्परिणाम

अणुव्रत आंदोलन की दार्शनिक पृष्ठभूमि और उसके स्वरूप के संदर्भ में आपने अभी सुना। आज जबकि सारे संसार में अर्थवाद प्रभावी बन रहा है, अणुव्रम एवं उद्‌जनवम जैसे भयावह शस्त्रास्त्रों के कारण विध्वंश का वातावरण बना हुआ है, आपमें से कोई भी व्यक्ति इस भाषा में सोच सकता है कि व्रतों की चर्चा कहां तक संगत और प्रासंगिक है? संयम का चिंतन कहां तक उपयुक्त है? यों तो हर व्यक्ति अपने स्वतंत्र विचार के लिए सावकाश है, इसलिए किसी पर अपना विचार थोपा नहीं जा सकता। पर मैं व्रतों की चर्चा की अप्रासंगिकता एवं अनुपयुक्तता से सहमत नहीं हूं, बल्कि मैं तो कहना चाहता हूं कि आज वह बहुत अधिक प्रासंगिक है, उपयुक्त से भी आगे अत्यन्त आवश्यक भी है।

मैं बहुत स्पष्ट रूप से अनुभव कर रहा हूं कि अर्थप्रधान मनोवृत्ति ने आज मानव को उद्‌भ्रान्त बना दिया है। जो अर्थ जीवन का साधन मात्र है, वह साध्य के स्थान पर प्रतिष्ठित हो गया है। अर्थ की इस अस्थानीय प्रतिष्ठा ने अनेक प्रकार की समस्याएं पैदा की हैं। भ्रष्टाचार, अनैतिकता आदि इसके ही दुष्परिणाम हैं।

अर्थ के क्षेत्र में पारस्परिक स्पर्धा ने विज्ञान जैसे सृजनात्मक तत्व को भी विनाश के साधन के रूप में प्रस्तुत किया है। भोगवाद अपना मूंह खोले मानवता को निगलने के लिए आतुर है। इस स्थिति को हर हालत में नियंत्रित करने की अपेक्षा है। मैं मानता हूं, आज भारतवर्ष में जितनी भी कार्य-योजनाएं बन रही हैं, उनमें इस कार्य-योजना को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। प्रश्न होगा, इस स्थिति को नियंत्रित करने की प्रक्रिया क्या होगी? प्रक्रिया तो आप सबके सामने अब अस्पष्ट कहां है? मानव संयम, आत्म-नियंत्रण और त्याग का सही-सही मूल्यांकन करे, इन्हें अपने जीवन में स्थान दे। इसके सिवाय दूसरा कोई विकल्प नहीं, जो मानव-जाति को इस आसन्न खतरे से उबार सके।

अणुव्रत आंदोलन, जिसका कि उल्लेख मैंने प्रारम्भ में किया, इसी उद्देश्य से कार्यरत है। इसके व्यापक प्रचार-प्रसार के गर्भ में मैं न केवल भारतीय समाज और राष्ट्र के, अपितु पूरी मानव-जाति के बहुत बड़े हित का दर्शन कर रहा हूँ। कुछ ही वर्षों की काल-अवधि में इसने जो भावनात्मक एवं क्रियात्मक समर्थन व जन-सहयोग प्राप्त किया है, वह भविष्य के लिए एक शुभ संकेत है। उपस्थित कानपुर के कार्यकर्ता इस जीवन-निर्माणकारी अभियान को नगर के विभिन्न वर्गों तक पहुंचाने के लिए कृत-संकल्प होंगे, ऐसी अपेक्षा करता हूँ। आशा है, मुझे सकारात्मक उत्तर मिलेगा।

कानपुर

२८ जून १९५८

## मानव सबसे पहले मानव

### श्रेय पथ

मानव इस बात को न भूले कि और कुछ भी होने से पूर्व वह एक मानव है। इसलिए किसी भी बिन्दु पर उसका चिंतन सबसे पहले मानवता के दृष्टिकोण से होना चाहिए। मानव के बाद दूसरे नम्बर में वह एक धार्मिक है। पर धार्मिक होने से यहाँ मेरा अभिप्राय जैन, बौद्ध, सनातनी, ईसाई, मुस्लिम या पारसी होने से नहीं है। ये सब तो तीसरे-चौथे नम्बर की बातें हैं। मेरा धार्मिक होने से अभिप्रेत है—सत्य, अहिंसा, मैत्री, अपरिग्रह आदि आत्म-शुद्धिमूलक तत्वों को जीवनगत बनानेवाला। जैन, बौद्ध, वैदिक; ईसाई आदि तो पंथ हैं, सम्प्रदाय हैं, परम्पराएं हैं। इन सम्प्रदायों में से प्रत्येक सम्प्रदाय अहिंसा, सत्य आदि तत्वों का संवाहक हो सकता है, प्रचारक और प्रसारक हो सकता है, पर इनमें से कोई भी एकमात्र धर्म होने का दंभ नहीं भर सकता। वस्तुतः अहिंसा, सत्य आदि तत्व इतने व्यापक हैं कि किसी के दंभ भरने से ये किसी संप्रदायविशेष की संकीर्ण सीमाओं में समाते नहीं। दूसरे शब्दों में ये सार्वजनीन और सार्वभौम हैं। इन पर किसी सम्प्रदायविशेष का एकाधिकार नहीं हो सकता। इसलिए किसी सम्प्रदायविशेष का आधार ले संघर्ष में उलझ पड़ना मानव के लिए कभी भी श्रेयस्कर नहीं है। आपेक्षा है, यह बात सिद्धान्त-रूप में लोगों के हृदय में अंकित हो। मैं मानता हूँ, यही वह भावना है, जो मानव-जीवन को असंकीर्ण बना उसे श्रेयस् की दिशा देती है।

### जातिवाद अतात्त्विक है

सम्प्रदाय की तरह ही जाति, वर्ण आदि की सीमाएं भी धर्म की आराधना में बाधक नहीं बन सकतीं। किसी भी जाति, वर्ण, वर्ग में जन्म लेने वाला व्यक्ति उन्मुक्त भाव से धर्म की पालना कर सकता है। जो लोग धर्माराधना के क्षेत्र में जातिविशेष पर प्रतिबंध की बात करते हैं, वे वास्तव में धर्म के मर्म को समझते ही नहीं। धर्म तो सूरज की धूप और चांद की चांदनी की तरह है। उन पर कोई प्रतिबंध हो तो धर्म पर प्रतिबंध की बात

समझ में आ सकती हैं। अन्यथा ऐसी बात करना चिंतन के दारिद्र्य को प्रगट करता है। वैसे जाति, वर्ण आदि तो सामाजिक व्यवस्थाएं हैं, जो क्षेत्र, काल की अपेक्षानुसार समय-समय पर निर्मित होती रहती हैं, टूटती रहती हैं। इनको शाश्वत मानना भयंकर भूल है। फिर यह भी समझने जैसी बात है कि ऊंचापन-नीचापन जाति, वर्ण, आदि से संबंधित है ही नहीं। उसका आधार तो कर्म है। वही व्यक्ति ऊंचा और महान् है, जिसका आचरण और व्यवहार ऊंचा है, भले वह किसी भी जाति या वर्ण में क्यों न जन्मा हो। उच्च माने जाने कुल और जाति में पैदा होकर भी यदि व्यक्ति आचरण से गिरा हुआ है तो वह ऊंचा या महान् कदापि नहीं हो सकता। भगवान महावीर ने जातिवाद और वर्णवाद को सर्वथा अतात्त्विक बताया है। उनका संदेश है—मानव-जाति एक है। अपेक्षा है, महावीर का यह संदेश जनव्यापी बने, विश्वव्यापी बने। तभी मानव-जाति सुख और शांति से जी सकेगी।

कानपुर

१३ जुलाई १९५८



## विश्व-शांति का मार्ग

अहिंसा ही समाधान है

आज का मानव अशांत है। और अशांत भी वह किसी एक तरफ से नहीं, बल्कि चारों ओर से है। ऐसा कहना चाहिए कि उसकी अशांति क्रमशः अधिक व्यापक बनती जा रही है। विश्व के एक छोर से दूसरे छोर तक चारों ओर इस अशांति रूपी आग के शोले बरस रहे हैं। यद्यपि इस अशांति को मिटाने के अनेक प्रयत्न विभिन्न स्तरों पर हो रहे हैं, पर उनका कोई वांछित परिणाम नहीं आ रहा है। इसका कारण? कारण यही कि प्रयत्न और पुरुषार्थ की दिशा सही नहीं है। आप ही बताएं, जब रास्ता ही गलत पकड़ लिया, तब व्यक्ति कितनी भी दूर क्यों न चले, मंजिल कैसे मिलेगी? आप देख रहे हैं, बड़े-बड़े राष्ट्रों के शीर्षस्थ नेता अणुबमों, हाइड्रोजनबमों एवं राकेटों के निर्माण पर अपना ध्यान टिकाए हुए हैं। करोड़ों-करोड़ों, अरबों-अरबों रुपये इन पर खर्च किए जा रहे हैं। बड़ी तेजी से इनका निर्माण-कार्य चल रहा है। कहीं-कहीं इनके परीक्षण भी चल रहे हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि लोग हिंसा के माध्यम से शांति की प्राप्ति का प्रयास कर रहे हैं, जबकि हमारे आत्मज्ञानी ऋषि-मुनियों ने शांति का मार्ग अहिंसा बताया है। प्रश्न उपस्थित किया जा सकता है, जब भयंकर युद्ध हो रहा है, हिंसा के स्फुलिंग उछल रहे हैं, तब अहिंसा शांति स्थापित कैसे कर सकेगी? पर इसके साथ ही प्रति-प्रश्न यह पैदा हुए बिना भी नहीं रहेगा, क्या हिंसा से शांति स्थापित हो सकेगी? अब समझने की बात यह है कि हिंसा तो स्वयं अशांति है, अशांति का कारण है, बल्कि सबसे बड़ा कारण है। उसके माध्यम से शांति की प्राप्ति का प्रयत्न करना उतना ही निरर्थक है, जितना निरर्थक खून से सने कपड़े को खून से धोने का प्रयत्न। हिंसा से युद्ध की आग में घी सींचने का काम ही हो सकता है, पानी डालने का कदापि नहीं। पानी डालने का काम तो अहिंसा का है। वही एकमात्र इस कार्य को करने में सक्षम है।

राष्ट्रीय स्तर पर शांति का प्रसार हो

वर्तमान विश्व की स्थिति पर ध्यान दें। ईराक एक छोटा-सा राष्ट्र

विश्व-शांति का मार्ग

९७

है। वहां पर जन-क्रांति या सैनिक-क्रांति कुछ भी कहें, हुई है। वहां का बादशाह हिंसा का भक्ष्य बन गया है। इससे सारे विश्व में चिंता और भय का वातावरण बन गया है। किस क्षण युद्ध छिड़ जाए, हिंसा का ताण्डव नृत्य शुरू हो जाए, कहा नहीं जा सकता। एक तरफ अमेरिका एवं ब्रिटेन शांति/सुरक्षा के नाम पर अपनी सेनाएं भेज रहे हैं, तो दूसरी तरफ रूस उन्हें घमकी दे रहा है। इस स्थिति को देखकर ऐसा लगता है कि आज विश्व-शांति खतरे में है। अगर विश्व का एक किनारा अशांत है तो दूसरा किनारा शांत नहीं रह सकता। यदि संसार के एक राष्ट्र में अशांति फैलती है तो न केवल पड़ोसी राष्ट्र ही, अपितु दूर-दूर के राष्ट्र भी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। इसलिए आज अहिंसा को राष्ट्रीय स्तर पर प्रसारित करने की नितान्त अपेक्षा है। इसका अर्थ यह नहीं कि मैं व्यक्तिगत जीवन में शांति की कीमत कम करके आंक रहा हूं। आध्यात्मिक क्षेत्र में उसका पूरा महत्व है, उसके अभाव में व्यक्ति का जीवन भारभूत हो जाता है, उसकी कोई सार्थकता नहीं रहती। पर विश्व-वातावरण चूंकि राष्ट्रीय शांति-अशांति से प्रभावित होता है, इसलिए मैंने शांति को राष्ट्रीय स्तर पर प्रसारित करने की बात कही।

सह-अस्तित्व अहिंसा और विश्वमैत्री का ही एक रूप है। यह भविष्य के लिए एक शुभ संकेत है कि प्रायः सभी राष्ट्रों ने इसको सिद्धान्तरूप में स्वीकार किया है। मैं उनसे बलपूर्वक कहना चाहूंगा कि वे इस तत्व को सदैव याद रखें, भूलें नहीं, बल्कि उसे व्यवहार में उतारें। मेरी दृढ़ मान्यता है कि इसको व्यावहारिक धरातल मिलने से ही भाई-भाई, पड़ोसी-पड़ोसी, समाज-समाज व राष्ट्र-राष्ट्र परस्पर प्रेम से रह सकेंगे और तभी विश्व में सच्ची शांति और सुख का साम्राज्य स्थापित हो सकेगा।

कानपुर

२० जुलाई १९५८

## संयम की प्रतिष्ठा हो

अशांति क्यों ?

मैं बड़ी तीव्रता से अनुभव कर रहा हूँ कि आज मानव का जीवन कुछ उखड़ा-उखड़ा-सा, असंतुलित-सा और खोया-खोया-सा है। परिग्रह, अनैतिकता और अविश्वास से आक्रांत हो, वह अपने-आप को भूल-सा गया है। उसकी ही यह परिणति या दुष्परिणति है कि वह क्या पारिवारिक, क्या सामाजिक, क्या राष्ट्रीय और क्या अन्तर्राष्ट्रीय किसी भी स्तर पर शांति नहीं पा रहा है। जीवन के हर स्तर पर अशांति-ही-अशांति है। अनेक राष्ट्रों में युद्ध का खतरा मंडरा रहा है। कौसी विडम्बना है कि जनता लड़ना नहीं चाहती, युद्ध से दूर रहना चाहती है, पर कुछेक व्यक्तियों की महत्वाकांक्षा या पागलपन युद्ध की आशंका/संभावना को जन्म दे देता है। आप पूछ सकते हैं, यह सब क्यों है ? मेरी दृष्टि में इसका मूलभूत कारण है—जीवन में संयम का अभाव। राजनीति संयम से अनुशासित नहीं है, इसलिए वह उच्छृंखल हो रही है। उसी का यह दुष्परिणाम है कि इस क्षेत्र में शीर्षस्थ स्थान पर बैठे कुछ लोग शांति को दफना कर युद्ध थोप देते हैं। हा ! इतना बड़ा पाप करते उनकी आत्मा तनिक भी नहीं हिचकिचाती। यदि इस स्थिति से उबरना है तो क्या राजनीति, क्या समाजनीति हर क्षेत्र में संयम की प्रतिष्ठा करनी होगी। व्यक्ति-व्यक्ति को संयम के तत्व को आत्मसात् करना होगा।

अणुव्रत का अभिप्रेत

संयम को आत्मसात् करने के लिये परिग्रह, अनैतिकता और अविश्वास से छुटकारा पाना होगा। परिग्रह भोग-लिप्सा एवं भोगवृत्ति से पैदा होता है। अनैतिकता का हेतु बड़प्पन का भाव और मिथ्याचरण है। स्वार्थ का अतिरेक अविश्वास को उत्पन्न करता है। ये सब बहिर्मुखी जीवन के उपकरण हैं। इनसे उपरत होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। अन्यथा शांति-प्राप्ति की बात आकाश से फूल तोड़ने जैसी कल्पना बनकर रह जाएगी। अणुव्रत आन्दोलन, जिसकी विस्तृत चर्चा आपने सुनी, व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन

संयम की प्रतिष्ठा हो

९९

को बहिर्मुखता से अन्तर्मुखता की ओर मोड़ना चाहता है। एक कवि के शब्दों में वह चाहता है—

‘मानव आशा का दास न बने, आशा उसकी दासी बने।’

### कार्यकर्ताओं का दायित्व

संयम के अभाव में भ्रष्टाचार, रिश्वत, शोषण, मिलावट जैसी ढेर-सारी दुष्प्रवृत्तियाँ जन-जीवन में व्याप्त हो रही हैं। ऐसा प्रतिभासित हो रहा है कि मानवता सिसक-सिसक कर रो रही है। ऐसे समय में अणुव्रती कार्यकर्ताओं पर एक विशेष दायित्व है। वे स्वयं तो संयमोन्मुख रहें ही, दूसरे-दूसरे लोगों की जीवन-धारा को भी इस दिशा में मोड़ने का प्रयत्न करें। हृदय-परिवर्तन के घरातल पर सभी प्रकार की दुष्प्रवृत्तियों से दूर करने का प्रयास करें, प्रेरणा दें। मैं इस बात को मानता हूँ कि यह कार्य सहज-सुगम नहीं है, श्रम-साध्य है। पर इसके साथ-साथ ही यह भी मानता हूँ कि कठिन श्रम के द्वारा होने वाला कार्य स्थायी और फलदायी होता है। इसलिए कार्यकर्ताओं से कहना चाहता हूँ कि वे हर स्थिति में यह कार्य करें। इससे उन्हें स्वयं के जीवन की सार्थकता तो प्राप्त होगी ही, समाज और राष्ट्र की भी वे बहुत उल्लेखनीय सेवा कर सकेंगे।

कानपुर

३ अगस्त १९५८

## अहिंसा ही ज्वलंत समस्याओं का हल है

समस्या : समाधान

वर्तमान विश्व की स्थिति पर जब हम नजर डालते हैं तो तथ्य रूप में एक बात स्पष्ट रूप से सामने आती है कि हिंसा दिन-प्रतिदिन प्रसार पा रही है। इसके परिणामस्वरूप जन-जीवन अन्याय, शोषण, धोखाधड़ी, भ्रष्टाचार जैसी अनेक बुराइयों से अभिभूत हो रहा है। इन बुराइयों को मिटा कर जन-जीवन को स्वस्थ बनाने के लिए अहिंसा एकमात्र विकल्प है, साधन है। इसलिए यह नितान्त अपेक्षित है कि अहिंसा का अधिक-से-अधिक प्रचार-प्रसार हो। उसके प्रति जन-निष्ठा जागृत की जाए। हालांकि इस प्रयत्न से सभी लोग अहिंसक बन जाएंगे, हिंसा जड़मूल से समाप्त हो जाएगी, सारी बुराइयों का अन्त हो जाएगा, ऐसा सोचना अत्याशा है, अतिरेक है। हजार सार्थक और प्रबल प्रयत्न के बावजूद भी कुछ प्रतिशत लोग ही पूर्ण अहिंसा के व्रत को स्वीकार कर सकेंगे। और यह ठीक भी है। काम-क्रोधादि पर पूर्ण विजय प्राप्त करना कोई सहज बात नहीं है। यह एक आदर्श स्थिति है। अहिंसा की प्रति निष्ठा जागने के उपरान्त भी उसकी पूर्णरूपेण साधना करना हर कोई के सामर्थ्य की बात नहीं है। पर इसके उपरान्त भी अहिंसा के प्रचार-प्रसार की सार्थकता एवं उपयोगिता में कहीं कोई न्यूनता नहीं आती। पूर्ण रूप में न सही, एक सीमा तक अहिंसा की पालना तो हर कोई कर ही सकता है। आदर्श तक हर कोई नहीं पहुंच सकता, पर उस दिशा में एक-एक चरण आगे तो बढ़ ही सकता है।

हिंसा को कैसे रोका जाए ?

प्रश्न है, हिंसा का विस्तार क्यों हो रहा है ? मेरी दृष्टि में इच्छाओं का असीमित विस्तार, साम्प्रदायिक उन्माद, ममता और बड़प्पन की स्पर्धा— ये कुछ ऐसे कारण हैं, जिन्हें हिंसा के बढ़ने के लिए उत्तरदायी माना जा सकता है। इच्छाओं का संयम, साम्प्रदायिक अनाग्रह, 'वमुद्धैव कुटुंबकम्' की भावना एवं आत्मोपम्य बुद्धि को बढ़ावा देकर इन कारणों को कमजोर-से-

अहिंसा ही ज्वलंत समस्याओं का हल है

१०१

कमजोर बनाया जा सकता है। और जब कारण कमजोर होंगे तो हिंसा तो स्वयं कम होगी, उसका विस्तार रहेगा।

अहिंसा की सामाजिक प्रतिष्ठा हो

प्रकारान्तर से हम कहें तो इच्छाओं का संयम, सांप्रदायिक अनाग्रह आदि को बढ़ाना देना अहिंसा की प्रतिष्ठा करना है। अहिंसा की प्रतिष्ठा का यह स्रोत व्यक्ति से आगे बढ़ता-बढ़ता समाज तक व्याप जाए तो जन-जीवन में शांति का सागर उमड़ पड़े। अणुव्रत आन्दोलन के अन्तर्गत अहिंसा के विविधमुखी-विकास और प्रतिष्ठा के लिए जो छोटे-छोटे नियम हैं, वे व्यक्ति के स्तर पर तो उपयोगी हैं ही, सामाजिक स्तर पर भी अत्यंत उपयोगी एवं व्यवहार्य हैं। मैं मनता हूं, उस दिशा में सलक्ष्य प्रयत्न किया जाए तो स्वस्थ समाज की परिकल्पना को मूर्त रूप मिल सकता है। क्या कार्यकर्ता अपनी शक्ति का नियोजन इस प्रयास में करेंगे ?

कानपुर

४ अगस्त १९५८

## अणुव्रत समाज-व्यवस्था

सामाजिक स्तर पर बदलाव जरूरी है

स्वस्थ समाज-निर्माण की संक्षिप्त-सी चर्चा कल मैंने की थी। अणुव्रत समाज-व्यवस्था का उद्देश्य स्वस्थ समाज का निर्माण करना ही है। अणुव्रत के नियम हालांकि व्यक्ति को केन्द्र में रखकर बनाए गए हैं, पर उनकी भावना वैयक्तिक जीवन के साथ-साथ सामाजिक जीवन में भी स्थान पाए; यह नितान्त अपेक्षित है। ऐसा होने से वातावरण में क्रांतिकारी परिवर्तन आ सकता है। जैसे समाज के बदलाव/सुधार के लिए व्यक्ति का बदलाव/सुधार महत्वपूर्ण है, उसी तरह व्यक्ति के बदलाव/सुधार के लिए समाज का बदलाव/सुधार भी महत्वपूर्ण है। समाज का वातावरण जब स्वस्थ होता है तो व्यक्ति के लिए भी अपने-आपमें परिवर्तन करना और सही पथ का अनुसरण करना सुगम हो जाता है। अन्यथा यह एक दुष्कर काम होता है, जिसमें कि कोई-कोई व्यक्ति ही सफल हो पाता है।

व्यवस्था का अभिप्रेत

अणुव्रत समाज-व्यवस्था का आशय है—समाज में संस्थित विभिन्न वर्गीय लोगों का जीवन-व्यवहार अणुव्रत भावना के अनुकूल हो, विरुद्ध न हो। उसका आधार चरित्र हो। हम सब जानते हैं कि समाज अनेक वर्गों में विभक्त है, जैसे व्यापारी, विद्यार्थी, अभिभावक, अध्यापक, मजदूर, महिला, पुरुष आदि। इन सबका अपना-अपना कार्यक्षेत्र है। अणुव्रत समाज-व्यवस्था का उद्देश्य इन सब वर्गों को एक कर देना नहीं है। उसका तो अभिप्रेत है—समाज के प्रत्येक वर्ग के दैनन्दिन कार्यों पर अणुव्रत की छाप रहे। उसका जीवन व्यवस्थित, संयमित एवं अनुशासित हो।

अहिंसाप्रधान समाज-व्यवस्था

अणुव्रत समाज-व्यवस्था में मुख्य स्थान अहिंसा का रखा गया है। यह दण्ड और बल की पृष्ठभूमि पर आधारित व्यवस्था नहीं है। आपको ख्याल में रहना चाहिए कि दण्ड और बल-प्रयोग संदेह, भय, अलगाव और

आक्रोशभरी प्रतिक्रिया पैदा करते हैं, जबकि अदण्ड और अबल (हृदय-परिवर्तन) विश्वास, अभय और आत्मीयता को जन्म देते हैं। इस समाज-व्यवस्था में अदण्ड और अबलवृत्ति या दूसरे शब्दों में अहिंसा की भावना का जितना अधिक फैलाव होगा, उतना ही अधिक एकत्व और एकरसता पनपेगी। हालांकि अणुव्रत समाज-व्यवस्था में विभिन्न वर्गों के अन्तर्गत अपनी-अपनी योग्यतानुसार कार्य-भेद होगा, पर जातिवाद पर आधारित उच्च-नीच, स्पृश्य-अस्पृश्य जैसे कृत्रिम भेद दूर हो जाएंगे।

अणुव्रत समाज-व्यवस्था के चार मुख्य घटक हैं—अनाक्रमण, अशोषण, स्वामित्व का सीमाकरण और मैत्री। यदि मानव इन चारों को स्वीकार कर स्वयं आगे बढ़ा तथा अपने परिवार, पास-पड़ोस और समाज के लोगों को आगे बढ़ाने का प्रयास किया तो अणुव्रत की भावना एवं आदर्शों के अनुकूल समाज-व्यवस्था के अस्तित्व में आने की आशा-किरण फूटेगी।

कानपुर

५ अगस्त १९५८



## चरित्र-निर्माण ही सच्चा विकास है\*

### भारतीय संस्कृति का आदर्श

भारतवर्ष के राजनैतिक इतिहास में आज का दिन अत्यन्त महत्वपूर्ण दिन है। परतंत्रता के बंधनों के टूटने का यादगार दिन है। देश में आज सर्वत्र खुशियां मनाई जा रही हैं, जुलूस निकाले जा रहे हैं, सभाएं-सम्मेलन आयोजित हो रहे हैं। इन सबको रोकने की बात मैं नहीं कह रहा हूं और इसकी जरूरत भी क्या है। पर इस बात के लिए नागरिकों एवं नेताओं को सावधान आवश्यक कर देना चाहता हूं कि हर स्थिति में वे सांस्कृतिक मूल्यों को अक्षुण्ण रखें। हर्ष के अतिरेक में उन्हें विस्मृत न कर दें। उन्हें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि यह भारतवर्ष का पर्व है, किसी पश्चिमी देश नहीं, जहां हर्ष के समारोह शराब से मनाए जाते हैं। भारतवर्ष की अपनी एक गौरव-शाली संस्कृति है, एक महान् परंपरा है। यहां प्रत्येक शुभ दिन, मंगल प्रसंग को जीवन-शुद्धि और आत्म-जागृति की प्रेरणा के साथ जोड़कर मनाया जाता है।

### क्या खोया ? क्या पाया ?

मेरी दृष्टि में आज का दिन प्रत्येक भारतीय के लिए आत्मावलोकन का दिन है। उसे सूक्ष्मता से देखना है कि गत वर्ष में उसने क्या खोया ? क्या पाया ? मैं मानता हूं, यह आत्मावलोकन व्यक्ति के जीवन में नव-चेतना का संचार करता है। अतीत की भूलों को सुधारने का अवसर देता है। यह कहना अतिरंजन नहीं, अपितु एक कटु सत्य से परिचित कराना होगा कि राष्ट्र की जनता ने जितना पाया है, उसकी तुलना में खोया अधिक है।

### सच्चा विकास

हम राष्ट्र की स्थिति पर जरा नजर पसारें। आज लोगों में पारस्परिक विश्वास घट रहा है। मैत्री क्षीण हो रही है। कलह, संघर्ष और

\*१२वें स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर प्रदत्त प्रवचन

उपद्रवों की मानो बाढ़-सी आ रही है। क्या ये राष्ट्र के विकास के लक्षण हैं ? नहीं हैं। स्थान-स्थान पर बनने वाले बड़े-बड़े बांध, पुल और सड़कों में भी मैं वास्तविक विकास नहीं देखता। मेरी दृष्टि में राष्ट्र का सच्चा विकास तो राष्ट्र के नागरिकों के जीवन में चरित्र, नैतिकता, सदाचार, सचाई और ईमानदारी के फलने-फूलने में है। इसलिए मैं राष्ट्र के नागरिकों से कहना चाहूंगा कि वे आज के दिन सच्चरित्र, नैतिकता, सचाई के पथ पर अग्रसर होने के लिए कृतसंकल्प हों। मेरी दृढ़ मान्यता है कि जब तक चरित्र, नैतिकता, सचाई आदि जीवननिर्माणकारी तत्वों के क्षेत्र में विकास नहीं होगा, तब तक राष्ट्र की कोई भी अच्छी-से-अच्छी योजना, महत्वाकांक्षी-से-महत्वाकांक्षी कार्यक्रम भी सफल नहीं हो सकता, वांछित परिणाम नहीं ला सकता। कौन नहीं जनता कि स्वतंत्रता-संग्राम में राष्ट्र के लोगों ने अपने प्राणों का बलिदान किया, सुख-सुविधाएं छोड़ीं, स्वार्थों को लात मारी। पर आज क्या देख रहे हैं कि सर्वत्र स्वार्थवृत्ति का बोलबाला है। उसके परिणामस्वरूप धोखा, विश्वासघात, छल, प्रपंच, भ्रूठ आदि बुराइयां फल रही हैं। मैं इसे मानवता का घोर पतन मानता हूँ। इस स्थिति से राष्ट्र को उबरना है, निश्चित रूप से उबरना है, सलक्ष्य उबरना है। अन्यथा यह पतन उसे ऐसी भयावह दुरवस्था में पहुंचा देगा, जिसकी कल्पना करना भी मुश्किल है। प्रश्न होगा, इस स्थिति से उबरने की प्रक्रिया क्या है ? प्रक्रिया तो बहुत स्पष्ट है। कारण को मिटाने से कार्य स्वयं समाप्त हो जाता है। यह स्थिति, जैसा कि मैंने कहा, स्वार्थ-वृत्ति की दुष्परिणति है। इसलिए इस स्वार्थ-वृत्ति को नियंत्रित करना होगा, उस पर विजय प्राप्त करनी होगी। और यह तब होगा, जब आत्म-शक्ति को जागृत किया जाएगा। आज के राष्ट्रीय पर्व-दिन के अवसर पर मैं राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को आह्वान करता हूँ कि वह इस यज्ञ में अपनी आहुति दे।

कानपुर

## अस्तेय की साधना

जीवन का परम लक्ष्य, दिव्य लक्ष्य है—शांति । लोभ, भौतिक आसक्ति, सम्पदा और तज्जन्य विग्रह, संघर्ष और दुरुपक्रम न केवल परम लक्ष्य की प्राप्ति में मानव के लिए बाधक ही बनते हैं, बल्कि उससे दूर भी ले जाते हैं । इनसे कैसे छूटा जाए, जीवन के दिव्य लक्ष्य की ओर कैसे बढ़ा जाए, मानव की इस चिरन्तन उत्कंठा के समाधान में विरति—त्याग या संयम का अनादि स्रोत प्रवाहित होता है । अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह उसके विश्लेषित रूप हैं । इनमें से एक अस्तेय तत्व की चर्चा करना चाहूंगा ।

### अस्तेय की अवस्थिति

अस्तेय का सीधा अर्थ है—अचौर्य—चोरी न करना । परन्तु इसकी सूक्ष्म व्याख्या में यदि हम जाएं तो हमें कहना होगा कि आत्मा का सहज-वृत्ति में बने रहना अस्तेय है । सहज अवस्था में अनुवर्तित होते व्यक्ति को कहीं कुछ भी छुपाने की आवश्यकता नहीं रहती । छुपाने की आवश्यकता वहां होती है, जहां भय है, आशंका है । और भय व आशंका वहां है, जहां यथार्थ के प्रतिकूल आचरण है । चोरी करने वाला छुपाता है । क्यों ? इसलिए कि उसे प्रतिपल यह चिन्ता सताती रहती है कि कहीं कोई दूसरा देख न ले, कहीं वह पकड़ में न आ जाए । इस स्थिति में उसका भयविह्वल और शंका-विचलित होना बहुत स्वाभाविक है । इससे उसके जीवन की शांति लुटती है ।

### अस्तेय का मूलभूत कारण

कहा जाता है कि आज व्यक्ति को राज्य एवं समाज की ओर से सुरक्षा की गारण्टी नहीं है, आश्वासन और निश्चितता नहीं है । वह अपना भविष्य सुरक्षित नहीं पाता । उसे सुरक्षित बनाए रखने लिए वह औचित्य-अनौचित्य, करणीय-अकरणीय की बात न सोचता हुआ कुछ भी करने को उतारू हो जाता है । इसी कारण वह चोरी जैसा अनुचित एवं जघन्य कर्म

अस्तेय की साधना

करता हुआ भी नहीं हिचकिचाता । इस सन्दर्भ में मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि संभव है, गारंटी का न होना व्यक्ति को इस बुराई की ओर प्रवृत्त करने में कुछ कारण बने, पर यह मूलभूत और वास्तविक कारण नहीं है । मूलभूत और वास्तविक कारण है—व्यक्ति का अतुष्टि-दोष । मानव असीम भोगोपकरणों का संग्रह कर तुष्टि चाहता है । पर वे कैसे मिलें । कभी भी संभव नहीं है । फलतः वह सन्मार्ग से हटता है । इस अतुष्टि का कारण मन और इन्द्रियों की वशवर्तिता, अमितेन्द्रियता और मोहमूढता है । इस दोष या भूल का छेदन किया जाना नितांत अपेक्षित है । इसके अभाव में स्तेय और उसके संरक्षण में पलने-पुषने वाली विभिन्न बुराइयाँ मिट नहीं सकतीं ।

कानपुर

१७ अगस्त १९५८

## चरित्र-निर्माण : राष्ट्रीय अभ्युदय का आधार

महान् संस्कृति का देश

भारत एक विशाल राष्ट्र है। इसकी एक महान् संस्कृति है। इसका अपना एक गौरवशाली इतिहास है। अपनी कुछ दुर्लभ विशेषताएं हैं। यहां उच्चता या पूज्यता के मापदंड धन, भौतिक संपदा, वैभव और सत्ता नहीं रहे। यह संयम, त्याग और सच्चरित्र में देखी गई। बड़े-से-बड़े धनकुबेर, सत्ताधीश और सम्राट् ने एक अकिंचन-त्यागी के चरणों में अपना मस्तक नमाने में गौरव माना, धन्यता की अनुभूति की। अहिंसा और मैत्री यहां के जीवन-आदर्श रहे। आज भी अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में भारत का जो महत्वपूर्ण स्थान है, वह इसकी त्यागप्रधान संस्कृति तथा अहिंसा एवं समन्वयमूलक नीति के कारण ही है।

परन्तु आज भारतीय मानस का विश्लेषण किया जाए तो यह तथ्य किसी से भी छुपा नहीं रहेगा कि उसके दृष्टिकोण में अन्तर आ रहा है। अतीत के उन संयम एवं त्यागमूलक आदर्शों से उसकी श्रद्धा डगमगा रही है। उसके परिणामस्वरूप सच्चरित्र, सचाई, प्रामाणिकता, नैतिकता, ईमानदारी जैसे सद्गुण उसके जीवन से लुप्त होते जा रहे हैं। यह आत्म-पराभव की स्थिति है। इस स्थिति से उबरने के लिए संयम एवं त्यागमूलक आदर्शों की पुनः प्रतिष्ठा करनी होगी। प्रश्न पैदा होता है, पुनःप्रतिष्ठा का उपाय क्या है? इसका एकमात्र उपाय है—दृष्टिकोण में व्याप्त वैपरीत्य का निरसन, संयम और त्याग में निष्ठा एवं शिक्षा में चरित्र को अनिवार्य स्थान। पर इस संदर्भ में एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक समझता हूं। अतीत के संयम एवं त्यागमूलक आदर्शों की पुनःप्रतिष्ठा से मेरा तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि आप एकांत रूप से पुराणपंथी बन जाएं, नए विकास से अपनी आंखें मूंद लें। मेरा आशय यह है कि जो शाश्वत आदर्श हमें अतीत में जीवन-शुद्धि का पथ-दर्शन देते थे और आज भी दे रहे हैं, उन्हें न भूला जाए।

ज्ञानार्जन का उद्देश्य

मुझे सर्वाधिक चिंता इस बात की है कि आज राष्ट्र का यानी नई

पीढ़ी का सही निर्माण नहीं हो रहा है। इसका कारण यह है कि शिक्षा लक्ष्य-शून्य-सी बन रही है। विद्यार्थी इस बात पर गंभीरतापूर्वक चिंतन तक नहीं करते कि जो ज्ञानार्जन वे कर रहे हैं, उसका वास्तविक उद्देश्य क्या है? उन्होंने आजीविका-उपार्जन तक उद्देश्य को सीमित कर दिया है, जबकि यह तो बहुत छोटी बात है, बहुत गौण बात है। शिक्षा का उद्देश्य बहुत ऊंचा है। वह तो जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए है। मैं मानता हूँ, इस भूल का ही यह परिणाम है कि वे आगे-पीछे की सोचे-समझे बिना ही ध्वंस, तोड़-फोड़ जैसी हिंसात्मक प्रवृत्तियों में भट कूद पड़ते हैं। अनुशासनहीनता उनके जीवन का हिस्सा बन गई है। इस मनोवृत्ति के कारण शिक्षा जगत् में सर्वत्र निराशा का वातावरण निमित्त हो रहा है। मैं नहीं समझता, विद्यार्थी इस तथ्य को क्यों भूल जाते हैं कि उनका जीवन योगी का जीवन है, साधना का जीवन है। वे जीवन-निर्माण की सर्वाधिक महत्वपूर्ण बेला से होकर गुजर रहे हैं। इन बातों के प्रति लापरवाह एवं अजागरूक होकर क्या वे स्वयं को धोखा नहीं दे रहे हैं।

**सबसे बड़ा संकट**

मैं मानता हूँ, आज राष्ट्र के समक्ष सबसे बड़ा संकट राष्ट्रीय चरित्र का है। एक विद्यार्थी वर्ग में ही नहीं, अपितु समाज के सभी वर्गों में चारित्रिक दृष्टि से उल्लेखनीय गिरावट आई है। यदि राष्ट्र को अपनी खोई प्रतिष्ठा और गौरव को पुनः प्राप्त करना है तो उसे इस संकट से उबरना होगा। हर हालत में इसे समाप्त कर चारित्रिक दृष्टि से जागृत बनना होगा। अणुव्रत आंदोलन चारित्रिक जागृति का अभियान है। इस अभियान से आप परिचित ही होंगे। यह मानव की संकल्प-चेतना को जगाना चाहता है। इसलिए इसके अन्तर्गत अहिंसा, सत्य आदि शाश्वत आदर्शों पर आधारित छोटी-छोटी प्रतिज्ञाएं स्वीकार कराई जाती हैं। हृदय-परिवर्तन के साथ की गई प्रतिज्ञा शक्ति को जगाने में बहुत योग्य बनती है। आप देखें, राष्ट्र के विधानानुसार मंत्री, सांसद, विधायक आदि अन्याय, अनुचित कार्य आदि न करने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध होते हैं। यह अलग बात है कि स्वीकृत प्रतिज्ञा के प्रति गंभीर कितने लोग रहते हैं। इस सन्दर्भ में एक बात का ध्यान रखा जाना अपेक्षित है। प्रतिज्ञा के साथ आत्म-स्वीकरण और दृढ़ता का भाव होना नितांत आवश्यक है। कोरी मौखिक प्रतिज्ञा-उच्चारण से कुछ बनने का नहीं। मेरा दृढ़ विश्वास है, यदि व्यक्ति-व्यक्ति आत्म-स्वीकरण के स्तर पर सच्चरित्र-निर्माणकारी प्रतिज्ञाएं ले और उनका यथावत् पालन करे तो समाज का समूचा रूप ही बदल जाए। लोग धरती पर स्वर्ग के अवतरण की कल्पना करते हैं। पर मैं नहीं समझता,

इसकी क्या जरूरत है ? यह धरती ही स्वर्ग बन सकती है, बशर्ते सच्चरित्र के प्रति मानव-मानव गंभीर बन जाए। पर अक्सर सत्ता, पदलिप्सा और अर्थवाद की भूख व्यक्ति को अपने पथ से डिगा देती है। मानव सन्मार्ग पर अडिग रहे, इसके लिए यह आवश्यक है कि वह अपने आत्मबल और आत्म-साहस को उद्दीप्त कर गंतव्य-पथ पर बढ़ता जाए। ऐसा हुआ तो उसकी गति न प्रतिकूल परिस्थितियों से कुंठित होगी और न बाधाएं ही उसे रोक सकेंगी।

कानपुर

१७ अगस्त १९५८

## शराब अनेक बुराइयों की जड़ है

आज देश में अनेक बुराइयां फैल रही हैं। ये बुराइयां मानव-जीवन को काठ में लगी दीमक की तरह अन्दर-ही-अन्दर खोखला किए जा रही हैं। मैं मानता हूँ, राष्ट्र का यह सबसे बड़ा पतन है। जब तक इस पतन को नहीं रोका जाता, लाख प्रयास करने के बावजूद भी विकास नहीं हो सकेगा। जब तक बुराइयों और दुर्व्यसनों का आयात बंद नहीं होगा, तब तक केवल निर्यात से लाभ कैसे हो सकेगा।

### धर्म का स्वरूप

धर्म जीवन की पवित्रता का एकमात्र साधन है। पर धर्म के स्वरूप के बारे में लोगों के मनो में भ्रांतियां बहुत हैं। हमारे मस्तिष्क में उसकी धारणा बहुत स्पष्ट होनी चाहिए। कुछ लोग उसे निवृत्तिमूलक मानते हैं। ठीक है, धर्म निवृत्तिमूलक है। पर मात्र निवृत्ति-मूलक ही नहीं है। निवृत्ति के साथ प्रवृत्ति का भी वहाँ महत्वपूर्ण स्थान है। बुराइयों से निवृत्ति है तो अच्छाइयों में प्रवृत्ति भी हो। दुर्गुणों-दुर्व्यसनों से निवृत्ति है तो सद्गुणों-सदाचार में प्रवृत्ति भी हो। अणुव्रत आंदोलन मानव को बुराइयों-दुर्व्यसनों से निवृत्त और सदाचार-सच्चरित्र में प्रवृत्त देखना चाहता है। अनैतिकता, अप्रामाणिकता के रूप में हो रहे पतन को रोक वह मानव को संयम, व्रत एवं सच्चरित्र के विकास-पथ पर अग्रसर देखना चाहता है।

### मद्यपान का दुष्प्रभाव

आज मद्यपान एक व्यापक बुराई या दुर्व्यसन के रूप में हमारे सामने है। यह बुराई प्रमाद को पैदा करती है। प्रमाद एक अपेक्षा से संसार में सबसे बड़ा पाप है, क्योंकि इसमें डूबकर ही व्यक्ति दुष्प्रवृत्त बनता है, नानाविध पापकर्म करता है। अप्रमाद की स्थिति में पाप नहीं किया जा सकता। भगवान महावीर ने कहा है—‘सर्वतो पमत्तस्स भयं, सर्वतो अपमत्तस्स नत्थि भयं’—प्रमादी प्राणी को सब ओर से भय है, अप्रमादी को कोई भय नहीं। इससे हम प्रमाद से होने वाले नुकसान का अनुमान लगा सकते हैं।



## शिष्टाचार या भ्रष्टाचार !

मद्यपान प्रमाद को बढ़ाता है, इस अपेक्षा से यह अनेक बुराइयों की जड़ है। यह जीवन को जर्जरित और निःसत्व बनाने वाला है। शराब के दुष्प्रभाव से कितने-कितने लोगों का जीवन बर्बाद होता रहा है, कैसा-कैसा नुकसान हुआ है, यह किसी से छुपा नहीं है। आज भी इससे होने वाले दुष्परिणाम आए दिन हमारे सामने आते रहते हैं। उन बहिनों से पूछिए कि वे कितनी दुःखी हैं, उनकी कैसी दुर्दशा है, जिनके पति शराबी हैं। अतः शराब से बचने का अर्थ है—अपने को पतन से बचाना, परिवार को दुःखी एवं अशांत होने से बचाना, दुर्दशा से बचाना। मैं चाहता हूँ, प्रत्येक व्यक्ति स्वयं हृदय-परिवर्तन की भूमिका पर इससे बचे, इसका परित्याग करे और दूसरों को भी इस ओर प्रेरित करे। यह कितने आश्चर्य की बात है कि आज के तथाकथित सभ्य लोग शराब पीने को सभ्यता एवं शिष्टाचार की कोटि में समाविष्ट करते हैं। मुझे उनकी बुद्धि और चिंतन पर तरस आती है। हमें नहीं चाहिए, ऐसी सभ्यता और ऐसा शिष्टाचार, जो मानव को बुराइयों के गर्त में ढकेले। इसे तो जितना जल्दी दफना दिया जाए, उतना ही समाज और राष्ट्र का हित है।

अणुव्रत आंदोलन मानव के सुप्त सत्संस्कारों को जगाकर उसे मद्यपान जैसे सभी दुर्व्यसनों एवं कुसंस्कारों से मुक्त करना चाहता है। अपेक्षा है, अणुव्रत भावना का अधिक-से-अधिक प्रसार हो।

कानपुर

२४ अगस्त १९५८

## नैतिक एवं चारित्रिक मूल्यों की प्रतिष्ठा हो

आज विश्व की स्थिति अत्यंत विकट है। नैतिकता का भयंकर दुर्भिक्ष छाया है। बाजार में पूरी कीमत चुकाने पर भी ग्राहक को शुद्ध पदार्थ की प्राप्ति नहीं होती। राजकीय विभागों में रिश्वत लेना सामान्य-सी बात हो गई है। उसके बिना काम चल सके, यह कठिन लगता है। विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता व्याप्त है। वे तोड़-फोड़ एवं हिंसात्मक प्रवृत्तियों में जुटते तनिक भी नहीं हिचकिचाते। मिल-मालिक मजदूरों का शोषण करते हैं। मजदूर लोग काम कम करना चाहते हैं और पैसे अधिक लेना चाहते हैं। जब-तब हड़तालें होती रहती हैं। और तो क्या न्यायालयों में जिस प्रकार का न्याय मिल रहा है, उससे लोगों का न्याय-व्यवस्था से विश्वास उठ रहा है। कहा नहीं जा सकता कि भविष्य के गर्भ में कितना अंधेरा छुपा है। ऐसे हालात को देख देश के हितचिंतक लोग काफी चिन्तित एवं उद्वेलित हैं। पर मैं मानता हूँ कि चिन्तित और उद्वेलित होना समस्या का समाधान नहीं है। समाधान एक ही है—जन-जन के विचार और व्यवहार में नैतिक एवं चारित्रिक मूल्यों की प्रतिष्ठा हो। अणुव्रत आन्दोलन इसी उद्देश्य से राष्ट्र-व्यापी अभियान चला रहा है।

विद्यार्थी राष्ट्र की बुनियाद हैं

नैतिकता एवं चरित्र-विकास की दृष्टि से यों तो समाज के सभी वर्गों में अभियान चलाया जाना आवश्यक है और अणुव्रत-आंदोलन ने चला भी रखा है, पर विद्यार्थी-वर्ग में इसकी सर्वाधिक अपेक्षा है। क्यों? इसलिए कि विद्यार्थी-वर्ग समाज व राष्ट्र की बुनियाद है। छात्र-छात्राओं का चारित्रिक एवं नैतिक विकास उनके स्वयं के जीवन को तो प्रभावित करेगा ही करेगा। समाज और राष्ट्र के अभ्युदय में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकेगा। इस दृष्टि से कार्यकर्ताओं को तो ध्यान देना ही है, अध्यापकों एवं विद्यार्थियों को भी सजग बनना आवश्यक है। मेरे सामने बहुत-सारे अध्यापक उपस्थित हैं। मैं उनसे भी कहना चाहता हूँ कि राष्ट्र के भावी कर्णधारों के जीवन को नैतिकता एवं सच्चरित्र के सांचे में ढालने में वे अपनी शक्ति का पूरा-पूरा नियोजन करें।

यह उनका सबसे बड़ा दायित्व है । इस दायित्व को निभाने से ही वे अध्यापक होने के सही गौरव को प्राप्त हो सकेंगे ।

उपस्थित विद्यार्थियों से मेरा कहना है कि चरित्र-निर्माण की दृष्टि से सर्वाधिक सजग आपको बनना होगा । इस दिशा में कार्य करनेवाले कार्यकर्ताओं एवं अध्यापकों की सफलता बहुत कुछ एतद् विषयक आपकी सजगता पर ही निर्भर करती है । आप इस बात को समझें कि आपके ज्ञानार्जन की सच्ची सार्थकता तभी है, जब वह आपके आचरण में ढले । आपका जीवन सच्चरित्र बने । वह विनय और अनुशासन से भावित हो । अणुव्रत आन्दोलन, जिसकी प्रासंगिक चर्चा मैंने पूर्व में की थी, इस दिशा में आपका कुशल मार्गदर्शन करता है । इसके अन्तर्गत विद्यार्थी-वर्ग के लिए निर्धारित नियमों को आप स्वीकार कर अपने जीवन को अणुव्रत भावना के अनुरूप ढालें । निश्चित ही आपके जीवन में एक आलोक फूटेगा ।

कानपुर

२४ अगस्त १९५८

## जीवन-निर्माण की दिशा का उद्घाटन

### सम्यक् आस्था का निर्माण हो

आज के मानव को मैं देखता हूँ तो मुझे ऐसा अनुभव होता है कि उसमें अश्रद्धा का भाव बहुत गहरा रहा है। उसका यह विश्वास डगमगा रहा है कि नैतिकता, ईमानदारी, सचाई और प्रामाणिकता से भी इस संसार में काम चल सकता है। मैं इसे मानव की सबसे बड़ी कमी, मानसिक ह्रास और आन्तरिक पतन मानता हूँ। इस स्थिति से उसे उबरना अत्यंत आवश्यक है। जब तक मानव इस मिथ्या विश्वास से छुटकारा नहीं पाएगा, तब तक वह अच्छाईयों की तरफ अग्रसर कैसे हो सकेगा। उसे इस सचाई को हृदयगम करना है कि नीतिनिष्ठा, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, प्रामाणिकता आदि ही वे तत्व हैं, जो जीवन को सुखी और शांत बनाते हैं। उसे मानव कहलाने का सही गौरव प्रदान करते हैं। इन तत्वों या सद्गुणों का सहारा पाकर ही जीवन-व्यवहार परिष्कृत और संतुलित बनता है।

### विद्यार्थी सत्संस्कार जगाएं

मेरे सामने बड़ी संख्या में विद्यार्थी उपस्थित हैं। मैं उनसे कहना चाहता हूँ कि वे इस बात को बहुत गंभीरता से समझें कि विद्यार्थी-अवस्था जीवन-निर्माण का पहला सोपान है। प्रारंभ से ही उन्हें अपने जीवन को सम्यक् श्रद्धा से सुसंस्कारित करना है। देखने में यह बात साधारण-सी लग सकती है, पर मैं मानता हूँ कि जीवन-निर्माण की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। सत्संस्कार जागने के पश्चात् ही आत्म-बल के विकास का मार्ग प्रशस्त होता है, जो कि जीवन की लम्बी यात्रा में व्यक्ति को शक्ति, स्फूर्ति और उत्साह प्रदान करता है।

विद्यार्थी जीवन अनुशासित, संयमित, नियमित एवं सत्प्रवृत्त रहे, इस उद्देश्य से अणुव्रत-आंदोलन में विद्यार्थियों के लिए पांच नियमों वाली एक आचार-संहिता बनाई गई है। पांच नियम ये हैं—

- ० मैं परीक्षा में अवैधानिक तरीकों से उत्तीर्ण होने का प्रयास नहीं करूंगा।

- मैं तोड़-फोड़-मूलक हिंसात्मक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लूंगा ।
- मैं विवाह-सगाई के प्रसंग में रुपये आदि लेने का ठहराव नहीं करूंगा ।
- मैं धूम्रपान व मद्यपान नहीं करूंगा ।
- मैं रेलगाड़ी से बिना टिकट यात्रा नहीं करूंगा ।

ये नियम विद्यार्थियों को प्रारम्भ से ही सदाचार के ऐसे सांचे में ढालते हैं जो उनके जीवन-विकास की दिशा में गति-प्रगति करने में प्रेरक सिद्ध होते हैं । उपस्थित विद्यार्थियों को आह्वान करता हूँ कि वे इन नियमों को स्वीकार कर अपने जीवन-निर्माण की दिशा का उद्घाटन करें ।

कानपुर

२ सितम्बर १९५८

## ब्रह्मचर्य की साधना

ब्रह्मचर्य आत्म-शुद्धि एवं जीवन की पवित्रता का अत्यन्त साधन है। भारतीय संस्कृति में अहिंसा व सत्य को जैसा महत्त्व दिया गया है, वैसा ही महत्त्व ब्रह्मचर्य को भी दिया गया है। ब्रह्मचर्य को दो रूपों में समझा जाना आवश्यक है। सूक्ष्म विश्लेषण में जाएं तो हमें कहना होगा कि आत्मस्वरूप में संस्थित एवं संचरण करना ब्रह्मचर्य है। अब स्थूल रूप से विश्लेषित करें तो कहना होगा कि विषयवर्जन ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य की साधना में संलग्न व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह इन्द्रिय-संयम करे। कान, आंख आदि सभी इन्द्रियों को असंयम से संयम की ओर मोड़े। उसके कान अश्लील और कामोत्तेजक शब्द न सुनें। उसकी आंखों में कभी वैकारिक दृष्टि न उभरे। वह बहुत गरिष्ठ भोजन न करे। इसी प्रकार वह अतिभोजन का वर्जन करे। वह ऐसे वातावरण में न रहे, जो विषय-वासना को भड़काने में निमित्त बने। हमारे यहां ब्रह्मचर्य की नव बाड़ें बताई गई हैं। जिस प्रकार खेती की सुरक्षा के लिए बाड़ लगाई जाती है, उसी प्रकार ब्रह्मचर्य की साधना के लिए एक-दो नहीं, पूरी नौ बाड़ें बताई गई हैं। इतना ही नहीं, इनके साथ एक परकोटा भी बताया गया है। इनका मुख्य आधार इन्द्रिय और मन का संयम ही है। इसके साथ ही वातावरण की अनुकूलता-प्रतिकूलता का भी चिंतन रहा है। ब्रह्मचर्य की सम्यक् साधना की दृष्टि से इनका महत्त्व स्वयंसिद्ध है। जो साधक इन बाड़ों के प्रति जागरूक नहीं रहता, वह ब्रह्मचर्य की साधना नहीं कर सकता। यदि करता भी है तो उसके कभी भी स्थलित होने का खतरा बना रहता है। आत्मार्थी साधक यह खतरा क्यों कर मोल लेगा ?

साधु-साधिवियों की तरह ब्रह्मचर्य की संपूर्ण साधना गृहस्थों के लिए शक्य नहीं है, व्यावहारिक भी नहीं है। पर एक सीमा तक तो वे इसकी साधना कर ही सकते हैं। कर ही क्यों सकते हैं, उनके लिए आवश्यक भी है। वे अपने जीवन में असीमित विषय-भोग से ऊपर उठकर उसका कोई-न-कोई सीमाकरण अवश्य करें। यह न केवल उनकी आत्मिक-पवित्रता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, अपितु शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

कानपुर, ७ सितम्बर १९५८

## नैतिक पतन : कारण और निवारण

### नेतृवर्ग की जिम्मेवारी

समाज एक बच्चे की तरह है। आप जानते हैं, बच्चा प्रारंभ में स्वयं नहीं चल पाता। माता-पिता उसे अंगुली पकड़कर चलना सिखाते हैं। समाज के नेता समाज के माता-पिता या अभिभावक के स्थान पर हैं। इस स्थिति में मुझे यह कहने में कोई कठिनाई नहीं कि आज नैतिक और चारित्रिक पतन हुआ है, उसके लिए नेता कम जिम्मेवार नहीं हैं, बल्कि सर्वाधिक जिम्मेवार हैं। एक समय था, जब वे त्याग और सादगी का जीवन जीते थे। वे इस भाषा में सोचते थे, जब देश के आम आदमी को भर पेट भोजन नहीं मिलता, तन ढांकने को पूरा वस्त्र प्राप्त नहीं होता, रहने के लिए मकान की समुचित व्यवस्था नहीं होती, तब उन्हें क्या अधिकार है कि वे सुख-सुविधा के नित नए साधन जुटाएं, सामग्री बढ़ाएं। पर कौसा समम आया है कि आज इससे सर्वथा विपरीत स्थिति बन गई है। उन्हीं नेताओं में से अधिकांश आज सुख-सुविधाओं के अभ्यासी बन रहे हैं, विलासी बन रहे हैं। वे आलीशान बंगलों एवं बड़ी-बड़ी कोठियों में शाही शान के साथ रहने में गौरव की अनुभूति करते हैं। विदेशी वातानुकूलित कारों में घूमने में अपनी प्रतिष्ठा समझते हैं। निःसंदेह समाज और राष्ट्र के लिए यह एक बड़ी शोचनीय बात है। और बड़े दुर्भाग्य की बात यह है कि केवल राजनैतिक नेताओं तक ही यह स्थिति सीमित नहीं है, अधिकांश साधु-संतों की भी ऐसी स्थिति बन रही है। यह कौसी विडम्बना है कि जो साधु-संत समाज के सर्वाधिक प्रभावी पथ-दर्शक थे, वे ही आज ऐशो-आराम में फंस रहे हैं, सुख-सुविधाओं में डूब रहे हैं, आसक्त बन रहे हैं। मैं साधु-संतों सहित सभी राजनैतिक एवं सामाजिक नेताओं से कहना चाहूंगा कि वे अपने दायित्व को समझें। उसके प्रति जागरूक बनें। अपने जीवन को त्याग, संयम, श्रम एवं साधना के सांचे में ढालें। ऐसा करके ही वे समाज के पथ-दर्शन के अपने दायित्व को अच्छे ढंग से निभाने में सफल हो सकेंगे। यह सफलता न केवल उनकी खोई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करवाएगी, अपितु समाज और राष्ट्र की चारित्रिक रुग्णता को मिटाकर उन्हें स्वस्थ बनाने में भी निर्णायक भूमिका निभाएगी।

## अर्थ के प्रति सम्यक् दृष्टिकोण का निर्माण हो

सभा में बड़ी संख्या में व्यापारी-वर्ग के लोग बैठे हैं। मैं मानता हूँ, व्यापारी वर्ग समाज का एक बुद्धिसंपन्न वर्ग है। तत्त्व दृष्टि से बुद्धिमत्ता या चतुराई को बुरा नहीं कहा जा सकता। हाँ, जब वह कुटिलता, कपट और वंचना का रूप ले लेती है तो बुरी बन जाती है। मैं चाहूँगा, व्यापारी अपनी बुद्धिमत्ता या चतुराई को ऐसा रूप देने का प्रयास कदापि न करें, बल्कि इससे सलक्ष्य बचें। कितना अच्छा हो, उनकी चतुराई सन्मार्ग पर चले। पर यह एक कटु सचाई है कि आज ऐसा देखने में नहीं आ रहा है। असीम अर्थ-लिप्सा इसके केन्द्र में काम कर रही है। वही उसे सन्मार्ग पर चलने से रोक रही है। यह भी निष्कारण नहीं है। आज अर्थ की समाज में अतिरिक्त प्रतिष्ठा हो गई है। लोगों की पुष्ट अवधारणा बन रही है कि समाज में उसी व्यक्ति की इज्जत और शोभा है, जो अर्थसंपन्न है। मैं मानना हूँ, इस गलत अवधारणा/दृष्टिकोण ने समाज के नैतिक एवं चारित्रिक पतन में अहम भूमिका निभाई है। इस गलत/अवधारणा दृष्टिकोण को बदलना होगा। अर्थ के स्थान पर त्याग व संयम को सर्वोच्च प्रतिष्ठा देनी होगी। तभी समाज का वातावरण स्वस्थ बनेगा। आशा करता हूँ, सभी लोग इस बिन्दु पर अपना ध्यान केंद्रित करेंगे।

कानपुर

१० सितम्बर १९५८



## व्यापारी नैतिक और प्रामाणिक बनें

सब रोगी हैं

यह कितने दुःख और ग्लानि का विषय है कि आज मानव चंद्र चांदी के टुकड़ों की नाकूछ कीमत पर अपनी अमूल्य मानवता को बेचते हुए भी नहीं सकुचाता। वह धर्म की दुहाई दे सकता है, पर इस बात पर जरा भी ध्यान नहीं देता कि उसके जीवन में मानवीय आदर्श कहां तक चरितार्थ हो पाये हैं? उसके व्यवहार और आचरण में धर्म के मौलिक तत्त्व कहां तक उतर पाये हैं? समाज का वातावरण इतना दूषित हो चुका है कि उसमें सांस लेना भी दूभर हो रहा है। यों लोग एक-दूसरे पर दोषारोपण करते हैं। व्यापारी राज्यकर्मचारियों को भ्रष्ट बताते हैं तो राज्यकर्मचारी व्यापारियों को। मिलमालिक मजदूरों को बुरा मानते हैं, तो मजदूर मिलमालिकों को। इस संदर्भ में मुझे ऐसा लगता है कि कुछ कमोबेश की स्थिति तो अवश्य हो सकती है, पर बुराइयों से कोई भी वर्ग सर्वथा बचा हुआ नहीं है। किसी भी वर्ग को गहराई से क्यों न देखा जाए, नैतिकता, अप्रामाणिकता, भ्रष्टाचार के भयंकर रोग से इस प्रकार ग्रस्त है कि वह जर्जर एवं जीर्ण हो रहा है।

व्यापारी सोचें

आज अन्य वर्गों की बात छोड़ता हूं। व्यापारी-वर्ग के लोग मेरे समक्ष बड़ी संख्या में उपस्थित हैं, इसलिए उनसे ही कुछ बातें कर रहा हूं। एक अच्छे व्यापारी का व्यवहार, नैतिकता, प्रामाणिकता एवं सचाई से परिपुष्ट होना चाहिए। ग्राहकों के साथ धोखाधड़ी करनेवाला, भूठा तोल-माप करनेवाला, बेमेल मिलावट करनेवाला, कालाबाजारी करनेवाला... अच्छा व्यापारी कदापि नहीं हो सकता। भले कहलाने के लिए वह कितना भी बड़ा व्यापारी क्यों न कहलाता हो। यह बहुत खलने वाली बात है कि आज राष्ट्र के व्यापारियों का नैतिकता, सचाई आदि की दृष्टि से जैसा स्तर होना चाहिए, वैसा नहीं है। ऐसा क्यों? इसलिए कि लोग अपनी आकांक्षाओं एवं लालसाओं को बेहद बढ़ाए जा रहे हैं। अपने जीवन-स्तर को कुछ इस

व्यापारी नैतिक और प्रामाणिक बनें

१२१

प्रकार का बना रहे हैं कि उसके अनुरूप साधन-सामग्री जुटाने के लिए उन्हें प्रचुर मात्रा में अर्थ अपेक्षित होता है। इस स्थिति में वे येन-केन-प्रकारेण अर्थ-प्राप्ति के लिए व्याकुल हो जाते हैं। यह व्याकुलता उन्हें अर्थाज्जन में उचित-अनुचित का विवेक नहीं करने देती, नैतिक और प्रामाणिक नहीं रहने देती। फलतः वे झूठ, चोरी, धोखा, छल, प्रपंच जैसी किसी भी दुष्प्रवृत्ति को करते संकोच नहीं करते। अलबत्ता मैं मानता हूँ कि सभी व्यापारी अनैतिक और भ्रष्ट नहीं होते। नैतिक और प्रामाणिक व्यवहार करने वाले व्यापारी भी देखने को मिलते हैं। पर कुछ व्यापारी भी यदि भ्रष्ट आचरण करते हैं, अनैतिक एवं अप्रामाणिक व्यवहार करते हैं, तो भी बदनामी पूरे व्यापारी-समाज की होती है, इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इसलिए मैं चाहता हूँ, राष्ट्र का प्रत्येक व्यापारी अपने आचरण और व्यवहार से नैतिक एवं प्रामाणिक बने। इससे वह स्वयं तो एक अच्छे व्यापारी के गौरव को प्राप्त करेगा ही, पूरे व्यापारी-समाज को भी अपनी खोई प्रतिष्ठा को प्राप्त करने में योगभूत बन सकेगा। अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्र की भी बहुत बड़ी सेवा उसके द्वारा हो सकेगी। मैं आशा करता हूँ, व्यापारी लोग इस बिन्दु पर गंभीरता से चिन्तन कर एक शुभ शुरुआत करेंगे।

कानपुर

१२ सितम्बर १९५८

## अन्तर्मुखी बनने

### शक्ति का दुरुपयोग

मानव एक छोटे से शरीरवाला प्राणी है। पर इसके उपरान्त वह हाथी, घोड़े, ऊँट, सिंह, बाघ जैसे विशालकाय एवं दुर्दान्त प्राणियों को वश में कर लेता है। इसका रहस्य क्या है? इसका रहस्य है—उसकी एक विशेषता, जो और-और प्राणियों में प्राप्त नहीं है। उसमें अजब-गजब की बुद्धि है, विलक्षण मेधा है। उसके सहारे वह बड़ा-से-बड़ा कार्य कर सकता है। दुष्कर-से-दुष्कर कार्य कर सकता है। यहां तक कि असंभव दिखने वाले कार्य को भी संभव बना सकता है। पर उस बुद्धि की अच्छाई या बुराई उसके उपयोग पर निर्भर है। लेकिन इसमें आश्चर्य जैसी कोई बात भी नहीं है। अच्छी-से-अच्छी चीज का भी दुरुपयोग हो सकता है। आज हम देखते हैं कि अनैतिक एवं स्वार्थमय कार्यों में जहां मानव अपनी इस शक्ति का उत्साह के साथ उपयोग कर रहा है, खुलकर उपयोग कर रहा है, वहीं सत्याचरण में उसकी यह बुद्धि कुंठित-सी हुई दिखाई देती है।

### सत्य भगवान हैं

सत्य जीवन का परम आदर्श है। आगम तो यहां तक कहते हैं कि सत्य भगवान है। पर कैसी विडम्बना है कि इस सत्य का आचरण करता हुआ भी आदमी भयभीत बन रहा है। आप पूछेंगे, इसका कारण क्या है? इसका कारण यह है कि आज के मानव का जीवन बहिर्मुखता से बुरी तरह ग्रस्त है। अन्यथा सत्याचरण में भय कैसा? स्वोन्मुख या अन्तर्मुख व्यक्ति के लिए सत्य की साधना कठिन नहीं, सहज है। वह उसे अपना आत्मधर्म मान आचरण करता है। वेद में कहा गया है—‘सुगमताऋतस्यपन्थाः ।’ इसका अर्थ है—सत्य का मार्ग सुगम है, सरल और सहज है। यदि आज का मानव बहिर्मुखता से मुक्त होकर अन्तर्मुख बन जाए तो वह इस सचाई का स्वयं अनुभव कर सकता है।

धर्म है अन्तर्मुखता की यात्रा

बहिर्मुखता का अर्थ आप समझते ही होंगे। यह भी संभव है कि कुछ

लोग न समझें। बहिर्मुखता से तात्पर्य है, पदार्थवादी दृष्टिकोण। भौतिक पदार्थों के प्रति आकर्षण, भौतिक अभिसिद्धियों के प्रति लुब्धता, बाह्य सुख-सुविधाओं की आकांक्षा। धर्म का चिंतन अन्तर्मुखी बनने-बनाने का चिन्तन है। दूसरे शब्दों में वह जीवन की बहिर्मुखता से अन्तर्मुखता की ओर मोड़ने की प्रक्रिया है। यदि व्यक्ति का चिंतन धर्म-प्रधान बन जाए तो वह सहज रूप से बहिर्मुखता से छूटकर अन्तर्मुखता की राह पर बढ़ सकता है। और अन्तर्मुखता की राह पर पदन्यास करने वाले के लिए न केवल सत्य की साधना, अपितु कोई भी कठिन-से-कठिन दिखनेवाली साधना सहज बन जाती है।

कानपुर

१३ सितम्बर १९५८

## ऋषिप्रधान देश

भारतवर्ष सदा से ही धर्मप्रधान देश रहा है। यहां सर्वोच्च प्रतिष्ठा धर्म के आदर्शों की रही है। बड़े-से-बड़े अर्थपति, सत्ताधीश और विद्वान को वह महत्त्व नहीं मिला, जो एक अकिंचन ऋषि को मिला है, बल्कि उनके चरणों में अपना मस्तक टिका कर धनकुबेरों, चक्रवर्ती सम्राटों ने धन्यता की अनुभूति की है। ऋषि-मुनियों की यह प्रतिष्ठा परोक्ष रूप से धर्म और धर्म के आदर्शों की ही प्रतिष्ठा है, क्योंकि ऋषि-मुनि धर्म के मूर्त रूप होते हैं, धर्म के आदर्शों को उनके जीवन-व्यवहार में साकार रूप में देखा जा सकता है। इस अपेक्षा से मैं इस देश को ऋषिप्रधान देश ही कहता हूं, भले लोग इसे कृषिप्रधान देश मानते हैं। यों कृषिप्रधान देश माननेवालों से मेरा कोई विरोध नहीं है, पर सांस्कृतिक दृष्टि से यह ऋषिप्रधान देश ही है, यह तो स्वीकार करना ही होगा।

### आचार की प्रमुखता

भारतीय चिंतन में जीवन का अभिप्रेत धर्म का केवल विचारात्मक पक्ष नहीं रहा, बल्कि प्रमुख लक्ष्य आचारात्मक पहलू रहा। जीवन के कण-कण में धर्म के आदर्श परिव्याप्त रहें, यहां के ज्ञानियों व चिन्तकों का दृष्टि-बिन्दु यह था। यही कारण है कि यहां सदा से आचार को सर्वाधिक महत्त्व मिला, आचारवान को सर्वाधिक सम्मान की दृष्टि से देखा गया। संसार भर के लोग सदाचार और सच्चरित्र की शिक्षा लेने यहां आते। पर आज स्थिति बदल गई है। औरों की बात तो बाद में है, धर्म के नेता या धर्मगुरु कहलाने वालों का जीवन भी अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप नहीं है। आत्म-साधना और तपश्चर्या का जीवन छोड़ वे बाह्य आडम्बर, सुख-सुविधा और आरामतलबी में फंसते जा रहे हैं। त्याग और आकिंचन्य का मार्ग छोड़कर करोड़ों की संपत्ति इकट्ठी करने में जुट रहे हैं। मैं नहीं समझ पाता, ऐसी स्थिति में वे जनता के आध्यात्मिक मार्ग-दर्शन के अपने दायित्व को कैसे निभाएंगे? जनता को त्याग, तपस्या और संयम की प्रेरणा कैसे देंगे? अतः यह अत्यंत अपेक्षित है कि धर्मगुरु त्याग-तपस्या और साधना का जीवन जीएं। अपनी गिरती प्रतिष्ठा

को पुनः कायम करें।

धर्म आकाश की तरह असीम

राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक से भी यह अपेक्षा है कि वह धर्म के आदर्शों को व्यवहारगत बनाने का प्रयास करे। पर इससे भी पहले यह जरूरी है कि वह धर्म के मौलिक स्वरूप को ठीक से समझे। आज तथाकथित धर्माधिकारियों ने उसे जाति, वर्ण, सम्प्रदाय आदि के ससीम घेरों में जकड़ दिया है, जबकि वह आकाश की तरह व्यापक है। असीम है। बड़ी-से-बड़ी कोई सीमा उसे अपने घेरे में बांधकर नहीं रख सकती। अणुव्रत आंदोलन धर्म को सभी प्रकार के संकीर्ण घेरों से निकालकर उसके मौलिक व्यापक स्वरूप को जन-जन के सामने प्रस्तुत करना चाहता है। किसी भी जाति, वर्ण, सम्प्रदाय का व्यक्ति इसके साथ जुड़ कर इसके प्रचार-प्रसार में संविभागिता निभा सकता है। धर्म के आदर्शों को जीवन में उतार सकता है। उनके अनुरूप अपने आचार और व्यवहार को ढाल सकता है।

व्यापारी अपनी प्रतिष्ठा कायम करें

व्यापारी बड़ी संख्या में मेरे सामने उपस्थित हैं। मैं उनसे कहना चाहता हूँ कि वे अपने आचरण की ओर ध्यान दें। आज उनकी प्रतिष्ठा बहुत गिर गई है। व्यक्ति बाजार में जाता है तो अपने को सुरक्षित नहीं समझता। वह बराबर संशंकित रहता है कि वह कहीं ठग न लिया जाए। यह व्यापारी-जीवन में व्याप्त दुर्नीति का स्पष्ट परिचायक है। यह अविश्वास और संशय तभी दूर हो सकता है, जब व्यापारियों के व्यवहार में नैतिकता, प्रामाणिकता एवं सचाई का एक सीमा तक निश्चित रूप में समावेश होगा। अणुव्रत आन्दोलन इस दिशा में उनका मार्ग-दर्शन करता है। इसके अन्तर्गत व्यापारी-वर्ग के लिए कुछ नियम हैं। उन नियमों को स्वीकार कर व्यापारी अपने व्यावसायिक व्यवहार को सही दिशा दे सकते हैं। आशा करता हूँ, व्यापारी लोग इस पर गंभीरता से सोचेंगे।

कानपुर

१४ सितम्बर १९५८

## क्षमाभावना का व्यापक फैलाव हो

### खमतखामणा का माहात्म्य

आज खमतखामणा का दिन है। खमतखामणा का अर्थ है—क्षमा देना और क्षमा लेना। क्षमा मैत्री-भावना को पनपाने का अनन्य साधन है। आज सर्वत्र अमैत्री का वातावरण देखने का मिलता है। उसी का तो यह दुष्परिणाम है कि व्यक्ति-व्यक्ति, जाति-जाति, राष्ट्र-राष्ट्र के बीच वैमनस्य और संघर्ष की स्थिति बन रही है। यदि इस स्थिति को समाप्त करना है तो क्षमाभावना को फैलाना होगा। जनव्यापी, समाजव्यापी, राष्ट्रव्यापी और विश्वव्यापी बनाना होगा। जैन संस्कृति में इसका बहुत ऊंचा स्थान है। कितना मामिक स्वरूप इसका है—व्यक्ति अपनी ज्ञात-अज्ञात त्रुटियों के लिये स्वयं क्षमा मांगे और दूसरों को उनकी भूलों के लिए अपनी ओर से क्षमा दे! आत्म-ऋजुता के साथ-साथ आत्म-गौरव का कितना सुंदर सामंजस्य यहां है! मुझे लगता है, इस तत्व का वास्तविक मूल्य लोग समझ नहीं रहे हैं। औरों की तो बात ही क्या, स्वयं जैन लोग भी इसकी सही कीमत नहीं आंक रहे हैं। अपेक्षा है, क्या जैन और क्या अजैन, सभी इसका पूरा-पूरा मूल्य आंके। मैं पुछना चाहता हूं, शांति किसे नहीं चाहिए? जब हर व्यक्ति इस आकांक्षा से बंधा हुआ है तो उसे इस तत्व को अपनाना ही होगा, अन्यथा वह चाहकर भी शान्ति का जीवन नहीं जी सकता।

### निःशल्य बनने का पुण्य पर्व

बन्धुओ! एक धर्मसंघ का आचार्य होने के कारण समय-समय पर मुझे अपने अनुशासन की डोर को खींचना पड़ता है, कड़ाई भी करनी पड़ती है। उस समय किसीको अप्रिय भी लग सकता है। यद्यपि उस कड़ाई के पीछे मेरा एकान्त व्यक्तिहित एवं संघहित का चिंतन रहता है, पर जिस पर अनुशासन की काररवाई होती है, उसको यह बात उस समय मुश्किल से ही समझ में आ सकती है। स्पष्ट शब्दों में कहूं तो उस समय मेरा व्यवहार कठोर ही लगता है। आज के इस महापर्व के पुण्य प्रसंग पर मैं अपने सभी प्रकार के अप्रिय एवं कठोर व्यवहार के लिए हृदय की सम्पूर्ण ऋजु भावना के साथ

क्षमाभावना का व्यापक फैलाव हो

१२७

क्षमा मांगता हूँ ! आशा है, सभी उदारतापूर्वक मुझे क्षमा दे देंगे। इसी प्रकार बहुत-सारे लोगों के व्यवहार को लेकर मेरे मन में भी उच्चावच भावना आई है। आज के दिन पिछली सभी बातों को विसर्जित कर मैं बिल्कुल हल्का हो गया हूँ और उन्हें अत्यंत सरल भाव से क्षमा देता हूँ।

बन्धुओ ! आज मैं निःशल्य हो गया हूँ। आप भी अत्यंत ऋजुभाव से खमतखामणा करें और निःशल्य बन जाएं। यही इस पर्व को मनाने की सबसे बड़ी सार्थकता है।

कानपुर

१९ सितम्बर १९५८



## आत्मालोचन का दिन\*

मेरे लिए आज का दिन आत्म-निरीक्षण और आत्मालोचन का दिन है। धर्मसंघ के आचार्य के जिस दायित्व पर आप मुझे देख रहे हैं, वह दायित्व बावीस वर्ष पूर्व पूज्य गुरुदेवश्री कालूगणी ने मुझे सौंपा था। उस ससय मेरी अवस्था मात्र बावीस वर्ष की थी। वह मेरे जीवन का प्रथम विश्राम था। आप कल्पना करें, एक बावीस वर्ष का युवक लगभग पांच सौ साधु-साध्वियों एवं लाखों श्रावक-श्राविकाओं के विशाल धर्मसंघ का एकमात्र आचर्य बने, यह कैसी स्थिति है! पर उस अवस्था में भी हमारे विनीत साधु-साध्वियों, श्रावक-श्राविकाओं ने संघ की शालीन एवं गौरवशाली परंपरा के अनुरूप मुझे बावीस वर्ष का नहीं, अपितु गुरुवर्य के साठ वर्ष संयुक्त कर बयासी वर्ष का समझा। जो सम्मान वे पूज्य गुरुदेव को देते थे, वही सम्मान उन्होंने मुझे भी दिया। जिस हार्दिक भावना से पूज्य गुरुदेव के अनुशासन का पालन करने थे, उसी हार्दिक भावना से मेरे अनुशासन को भी स्वीकार किया। आज तो ये बातें मात्र स्मृति का विषय रह गई हैं, पर जब कभी इनकी स्मृति हो आती है, तब मन गदगद हो जाता है।

आचार्य बनते ही मैंने संघ के साधु-साध्वियों के विद्याध्ययन पर ध्यान केंद्रित किया। उसका सुन्दर परिणाम सामने आया। अनेक विद्वान, लेखक, कवि व वक्ता तैयार हुए। साहित्य के क्षेत्र में गति प्रारंभ हुई। अध्यात्म-भावना के व्यापक फैलाव व मानव-जीवन को नैतिक एवं चारित्रिक दृष्टि से उन्नत देखने की भावना से अणुन्नत आंदोलन का सूत्रपात हुआ। नौ वर्षों से सतत उसका कार्य चालू है। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि जन-जन का इस ओर एक आकर्षण और झुकाव बना है। समाज के सभी वर्गों का व्यापक समर्थन इसे प्राप्त हो रहा है। हजारों-हजारों लोगों ने इसकी आचार-संहिता को भी स्वीकार किया है। उत्तरोत्तर यह क्रम चालू रहा तो मुझे आशा है, जन-जीवन में एक नया बालोक व्यापेगा।

पूज्य गुरुदेव के आशीर्वाद, अनुग्रह एवं सत्प्रेरणा का सबल संबल लिए

\* २३ वें आचार्य-पदारोहण दिवस के अवसर पर प्रदत्त प्रवचन

उस उत्तरदायित्व को झेलते हुए मुझे बावीस वर्ष हो गए हैं। यह मेरे जीवन का दूसरा विश्राम है। मुझे इस बात का अत्यंत तोष है कि इस अवधि में मैं आत्म-साधना, संघ-प्रभावना एवं जन-उत्थान के लिए सतत प्रयत्नशील रहा हूं। मेरा आगामी वर्ष आत्माराधना, संघ-विकास एवं जन-जागरण की दृष्टियों से और अधिक कारगर बने, इसी आशांसा के साथ मैं अपने प्रति मंगलकामना करता हूं।

कानपुर

२१ सितम्बर १९५८

## अपेक्षित है संस्कृत का विकास

### भारतीय संस्कृति का मूल

संस्कृत भारत की प्राचीन भाषा है। पर प्राचीन होने के बावजूद इसका महत्व किसी भी अर्वाचीन भाषा से कम नहीं है, बल्कि एक अपेक्षा से बहुत अधिक है। इसके साहित्य में अध्यात्म की वह गौरवास्पद अमर निधि भरी पड़ी है, जो भारतीय संस्कृति का मूल है, प्राणतत्व है। जीवन को पवित्रता एवं अभ्युत्थान की शाश्वत प्रेरणा देने वाली है। भारत में वैदिक, जैन एवं बौद्ध ये तीन दार्शनिक धाराएं रही हैं। इन तीनों दार्शनिक धाराओं का प्रतिनिधित्व संस्कृत भाषा में ही हुआ है। प्राचीन समय में संस्कृत का क्षेत्र बहुत व्यापक था। एक अपेक्षा से उसका सर्वत्र निर्बाध साम्राज्य था। और तो क्या, भारत का एक साधारण कर्मकर भी संस्कृत जानता था, प्रांजल संस्कृत में बोलता था। पर आज स्थिति एकदम बदल गई है। कर्मकर की बात तो कहीं नहीं रही, बौद्धिक एवं शिक्षित कहलाने वाले वर्ग में भी ऐसे व्यक्ति बिलकुल नगण्य हैं, जो संस्कृत का ज्ञान रखते हैं। इसकी ही यह परिणति है कि भारतीय संस्कृति के मौलिक संस्कार क्रमशः लुप्त होते जा रहे हैं। उनके स्थान पर असांस्कृतिक तत्व प्रभावी हो रहे हैं। जन-जीवन में बढ़ते भौतिकवाद का एक कारण मौलिक संस्कृति का क्रमशः लुप्त होना ही है। अतः भारतीय समाज को यदि हमें भौतिकवाद से बचाना है, तो यहां की मौलिक संस्कृति की सुरक्षा करनी होगी और इसके लिए संस्कृत भाषा के अध्ययन को महत्व देना होगा।

### समन्वय की भावना का विकास

संस्कृत भाषा के ग्रन्थों को पढ़ने से यह बात बहुत स्पष्ट रूप से प्रकट होती है कि इस भाषा के विद्वानों ने बहुत ऊंचे-ऊंचे और उदार-उदार विचार जगत् को दिए हैं। यदि आज उनके विचारों को लेकर चला जाए तो पारस्परिक सघर्ष और प्रतिस्पर्धा की वृत्ति उन्मूलित हो जाए। प्रसिद्ध जैनाचार्य हरिभद्र सूरि ने कहा --

पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु ।

युक्तिमद् वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः ॥

—मेरा महावीर से कोई पक्षपात नहीं है, कपिल आदि के प्रति कोई द्वेष नहीं है। युक्तियुक्त वचन में मेरा आग्रह है और वही मेरे लिए ग्राह्य भी है।

आज के संस्कृत के विद्वानों इससे को एक प्रेरणा लेने की जरूरत है। उनमें समन्वय की भावना का विकास होना चाहिए, जिसकी कि उनमें बहुत कमी देखी जाती है। इससे संस्कृत के विकास में बड़ी बाधा आई है, आ रही है। यदि समन्वय की भावना के साथ संस्कृतभाषानुरागी जन इस ओर गतिशील हुए तो मैं मानता हूँ, भारत के सूखते अध्यात्म के स्रोत को पुनः एक नया वेग मिलेगा।

### संस्कृत-प्राकृत

संस्कृत भाषा के महत्व एवं उसके विकास के संदर्भ में मैंने कुछ बातें कही। परन्तु संस्कृत से आप मात्र संस्कृत का ही अर्थ ग्रहण न करें। प्राकृत, पाली आदि भाषाएं भी इसके साथ जुड़ी हुई हैं। भगवान महावीर ने प्राकृत भाषा में ही उपदेश किया था। आगम रूप में गुम्फित उनकी वाणी प्राकृत भाषा में ही है। इस बात को दोहराता हुआ कि संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं के साहित्य में अध्यात्मनिधि या भारतीय संस्कृति भरी पड़ी है, आप सबको इनके व्यापक अध्ययन-अध्यापन के लिए प्रेरित करता हूँ।

कानपुर

२८ सितम्बर १९५८

## श्रमिक गरीब क्यों ?

आप लोग श्रमिक हैं। आपका जीवन कर्मप्रधान होता है। कठोर श्रम और पसीना बहाकर आप अपनी जीविकोपार्जन करते हैं। पर कैसा आश्चर्य है कि इसके उपरान्त भी आप भूखे हैं, पीड़ित हैं और अभाव-अभियोगों के शिकार हैं। क्या आप जानते हैं, इसका क्या कारण है ? आप कहेंगे, आज की सामाजिक परिस्थितयां कारण हैं। मैं सामाजिक परिस्थितियों की बात को अस्वीकार तो नहीं करता, पर साथ ही इसे एकमात्र कारण भी नहीं मानता। आज की सामाजिक परिस्थितियों के साथ-साथ आपकी आत्मिक दुर्बलताएं एवं दुर्व्यसन भी कारण हैं, मुख्य कारण हैं। कठोर परिश्रम एवं दिन-रात काम करके जो पैसा आप उपाजित करते हैं, उसे मद्यपान आदि दुर्व्यसनों में लुटा देते हैं। इसमें सामाजिक व्यवस्था का दोष तो है ही, पर आपकी चारित्रिक दुर्बलता बड़ा कारण है। क्या आप मेरे इस कथन से सहमत नहीं हैं ? संभव है, कुछ प्रतिशत लोग मद्यपान आदि दुर्व्यसनों से बचे हुए हों, पर इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि दुर्व्यसनों से आप लोग व्यापक रूप में प्रभावित हैं।

अनेक दुर्व्यसनों की जननी है शराब

मद्यपान की बुराई के संदर्भ में मैं आपसे क्या कहूं ? यह स्वयं तो एक दुर्व्यसन है ही, अनेक दुर्व्यसनों की जननी भी है। इसलिए जब तक आप इस बुराई से मुक्त नहीं होंगे, दूसरे-दूसरे दुर्व्यसनों से छुटकारा संभव नहीं लगता। और जब तक जीवन दुर्व्यसनों से ग्रस्त रहेगा, तब तक आपका उत्थान नहीं हो सकता। चूंकि सुधार का मूल व्यक्ति स्वयं है, इसलिए श्रमिक बन्धुओ ! यदि आप ऊंचा उठना चाहते हैं, विकास करना चाहते हैं; तो शराब छोड़ें, दुर्व्यसनों से नाता तोड़ें। मैं मानता हूं, ऐसा होने से आपकी भूख और गरीबी का एक बड़ा कारण समाप्त हो जाएगा। और कारण समाप्त हुआ कि स्थिति में सुधार होते वक्त नहीं लगेगा। अणुन्नत आंदोलन आपके लिए दीपक है। उसके छोटे-छोटे संकरूपों के आलोक में आप आगे बढ़ें। आपको अपनी मंजिल अवश्य मिलेगी।

श्रमिक गरीब क्यों ?

१३३

## सम्बन्धों की मधुरता आवश्यक

आज मजदूर-वर्ग के प्रति समाज में वातावरण अच्छा नहीं है, यह एक तथ्य है। आप भी संभवतः इससे अपरिचित नहीं हैं। इसका कारण है कि छोटी-छोटी बातों पर हड़ताल कर बैठ जाना। इस प्रवृत्ति को राष्ट्र के निर्माण और विकास की एक बड़ी बाधा के रूप में देखा जाता है। पर मैं ऐसा समझता हूँ कि यह दोष आपसे भी बहुत अधिक नेताओं का है। मेरी दृष्टि में उनका काम किसी समस्या के संदर्भ में आपकी भावनाओं को उकसा कर हड़ताल करवाना नहीं है, बल्कि उनका कर्तव्य तो यह बनता है कि वे समस्या का नैतिक हल निकालने के लिए प्रयास करें। हड़ताल तो अन्तिम स्थिति है, मजबूरी की स्थिति है। पर उसमें भी हिंसा करना, तोड़-फोड़ करना कतई उचित नहीं है। एक समय था, जब मालिक और मजदूरों में अपनेपन का संबंध होता था, भाईचारे का व्यवहार होता था। एक-दूसरे की कठिनाई के प्रति संवेदना होती थी। इस स्थिति में जब-कभी कोई समस्या आती तो मिल-जुलकर बड़ी आसानी से संतोषप्रद हल खोज लिया जाता था। पर आज वह अपनापन टूट चुका है। भाईचारा बिखर चुका है। संवेदना का स्रोत सूख चुका है। इसलिए समस्याएं आए दिन द्रौपदी के चीर की तरह बढ़ती ही जा रही हैं। जब-तब वे प्रतिशोध का रूप भी ले लेती हैं। यह हिंसा का मार्ग है, जो अन्ततोगत्वा किसी के लिए हितकर और सुखकर नहीं है। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि मालिक और मजदूर-वर्ग के बीच मधुरता का सम्बन्ध जुड़े, भाईचारे का व्यवहार हो।

कानपुर

६ अक्टूबर १९५८

## क्या है शिक्षा का लक्ष्य ?

ऋषिप्रधान देश है भारत

भारतवर्ष के पास यद्यपि अणुबम नहीं है, उद्जनबम भी नहीं है और न चन्द्रलोक में जाने की योजना ही उसके पास है, तथापि संसार भर के राष्ट्रों में उसका अपना एक विशिष्ट स्थान है। एक विशेष महत्व है। क्या आप इसका कारण जानते हैं ? मैं बताऊँ इसका कारण। इसका कारण यह है कि अध्यात्म-संस्कृति के रूप में उसके पास एक अमर सम्पदा है। यह उसे विरासत के रूप में तपःपूत ऋषि-मुनियों द्वारा प्राप्त हुई है। इसी अपेक्षा से मैं अकसर भारतवर्ष को ऋषिप्रधान देश कहता हूँ।

नैतिकता का आधार

यह एक कटु सच्चाई है कि भारतवर्ष व्यावहारिक नैतिकता की दृष्टि से आज अन्यान्य राष्ट्रों की तुलना में बहुत दरिद्र है। इसका प्रत्येक भारतीय को आन्तरिक खेद होना चाहिए। पर इसका एक दूसरा पहलू भी है। उसे भी जानना चाहिए। हम जब गहराई से ध्यान देते हैं तो यह तथ्य उभर कर सामने आता है कि अन्यान्य देशों की नैतिकता का आधार राष्ट्रीयता है। वहाँ के नागरिक नैतिकता का पालन इसलिए करते हैं कि संसार में उनके राष्ट्र का महत्व बना रहे। वे नैतिकता का पालन इसलिए करते हैं कि राष्ट्र आर्थिक एवं व्यावसायिक दृष्टि से समृद्ध हो, राष्ट्र के नागरिकों का स्वास्थ्य अच्छा रहे। यदि अनीति से भी इन उद्देश्यों की पूर्ति होती हो तो वे उसे अपनाते में संभवतः संकोच नहीं करेंगे। पर नैतिकता के संदर्भ में भारतीय दृष्टिकोण इससे सर्वथा भिन्न है। यहाँ नैतिकता का आधार अध्यात्म है, धर्म है, जो कि बाह्य उन्नति और विकास पर नहीं, आत्मोन्नति और आत्म-विकास पर अवलम्बित है। हाँ, आत्मोन्नति एवं आत्म-विकास की भूमिका पर विकसित होनेवाली नैतिकता से राष्ट्रीय हित और विकास के उद्देश्य की प्राप्ति भी हो सकती है, पर वह उसका आधार नहीं है। आधार अध्यात्म ही है, धर्म ही है। मैं इस बात की पुनरावृत्ति इसलिए कर रहा हूँ कि आप सब नैतिकता के सन्दर्भ में अन्यान्य देशों के चिन्तन और अवधारणा तथा

क्या है शिक्षा का लक्ष्य ?

१३५

भारतीय चिंतन व अवधारणा के अन्तर को अच्छे ढंग से समझ सकें।

मैं मानता हूँ, भारत की आध्यात्मिकता आज भी कम नहीं हुई है, अलबत्ता मूर्च्छित अवश्य हुई है। इस मूर्च्छा के कारण ही भारतीय जन अपनी सांस्कृतिक परंपरा को भूलते जा रहे हैं। अणुव्रत आंदोलन इस मूर्च्छा और विस्मृति को दूर कर जन-जन में आध्यात्मिक चेतना एवं स्फुरण पैदा करना चाहता है।

**शिक्षा क्यों ?**

आज मैं शिक्षा के प्रांगण में शिक्षार्थियों के बीच बैठा हूँ। शिक्षा सचमुच जीवन के लिए एक वरदान है, वशर्ते उसके साथ सही लक्ष्य जुड़ा हो। क्या है शिक्षा का सही लक्ष्य ? भारतीय चिंतन में शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य है—ज्ञान, संयम एवं आत्म-जागृति। पर दुर्भाग्य से आज इस उद्देश्य को भुलाया जा रहा है। आज तो वह डिग्री प्राप्त करने एवं आजीविकोपार्जन के योग्य बन जाने तक सीमित रह गई है। इस भूल का ही यह दुष्परिणाम है कि आज विद्यार्थियों में विनय, अनुशासन, नियमानुवर्तन जैसे अनिवार्य गुणों का अभाव होता जा रहा है। उनमें प्रतिदिन बढ़ती हुई उद्वेगता और उच्छृंखलता समाज और राष्ट्र के लिए एक बड़ी समस्या बनती जा रही है। समाज और राष्ट्र का नेतृत्व इस स्थिति से चिन्तित है। यद्यपि चिन्तित होना अस्वाभाविक नहीं है, पर चिन्ता समस्या का समाधान भी तो नहीं है। मेरी दृष्टि में उसका एकमात्र समाधान यही है—भूल का परिमार्जन। शिक्षा को अपने मूल उद्देश्य के साथ जोड़ा जाए। इस दृष्टि से मैं अध्यापक-वर्ग एवं विद्यार्थी-वर्ग दोनों से ही कहना चाहता हूँ कि वे इस बिन्दु पर अपना ध्यान केन्द्रित करें और एक नई यात्रा के लिए प्रस्थान करें।

**जीवन सुसंस्कारी और सात्विक बने**

उपस्थित छात्राओं से मैं एक बात विशेष रूप से कहना चाहता हूँ। वे अभी से अपने जीवन को सुसंस्कारी और सात्विक बनाने की दृष्टि से जागरूक रहें। कल वे ही माताएं बनने वाली हैं। उनका जीवन इस सांचे में ढलेगा, तभी वे बच्चों को सुसंस्कार के सांचे में ढाल सकेंगी। इस अपेक्षा से उनका सुसंस्कारी बनना उनके स्वयं के लिए तो वरदायी है ही, नई पीढ़ी के उज्ज्वल भविष्य के निर्माण की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अप्रत्यक्ष रूप से यह समाज और राष्ट्र की बहुत बड़ी सेवा है।

कानपुर

९ अक्टूबर १९५८

१३६

महंके अब मानव-मन



## अणुव्रत की कार्यदिशा\*

### अणुव्रत आंदोलन का उद्देश्य

अणुव्रत साधना का पथ है। साधना के इस पथ को जब हमने व्यापक बनाना चाहा, तब उसने आंदोलन का रूप ले लिया। इस आंदोलन का मूलभूत उद्देश्य है—जन-जीवन संयमित बने, उसकी व्रत-चेतना जागे। अणुव्रत आंदोलन के घोष—‘संयमः खलु जीवनम्’—‘संयम ही जीवन है’ के पीछे भी यही भावना छिपी है।

### प्रधानता की कसौटी

भारतीय संस्कृति या मानव संस्कृति की यही विशेषता रही है कि वह जन-जन को संयममय जीवन जीना सिखाती है। मैं मानता हूँ, अपने द्वारा अपने पर अनुशासन या संयम करने की विशेषता केवल मानव में ही है, अन्य किसी प्राणी में नहीं। हमारे यहां हमेशा संयमशील मनुष्य को ही प्रधानता दी गई है। वैसे अपने-आप में मनुष्य न प्रधान होता है और न अप्रधान। बस, संयम के जुड़ने पर प्रधान हो जाता है और संयम के अभाव में अप्रधान या गौण। प्रधानता कोई भौतिक या साकार वस्तु नहीं है। प्रधानता व्यक्ति को निज का ‘स्व’ है, उसको स्वयं का तत्त्व है। कौन व्यक्ति कितना आत्म-तुष्ट है—यही प्रधानता की कसौटी है। आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है कि असंतोषी व्यक्ति चाहे चक्रवर्ती सम्राट् भी क्यों न हो, पर वह सुखी नहीं हो सकता। आज के जन-जीवन को देखने से एक बात बहुत स्पष्ट रूप से सामने आती है कि सभी दुःखी हैं। निर्धन तो दुःखी है ही, धनवान भी कम दुःखी नहीं है। और बहुत सही तो यह है कि जो जितना धनी है, वह उतना ही अधिक असन्तुष्ट है। सबसे अधिक सन्तुष्ट वही है, जिसके पास कुछ भी नहीं है, जो अकिंचन है।

### संयम निर्माणकारी है

मैं मानता हूँ, आत्म-तोष का एकमात्र मार्ग आत्म-संयम है। दोनों

\* ९वें अणुव्रत अधिवेशन के अवसर पर प्रदत्त उद्घाटन भाषण।

का परस्पर अटूट सम्बन्ध है ! लोग संयम को निषेधात्मक मानते हैं, पर वास्तव में वह जीवन का सर्वोपरि क्रियात्मक पक्ष है। यद्यपि असंयम स्वीकारात्मक पक्ष है, पर वह जीवन का विध्वंस करनेवाला है। इसके विपरीत संयम अस्वीकारात्मक होते हुए भी निर्माणात्मक पक्ष है।

देश की अन्तरात्मा का निर्माण राष्ट्रीय चरित्र और संयम से होता है। आज मनुष्य संग्रह के पीछे दौड़ता है। यद्यपि संग्रह को एकांततः बुरा या हेय नहीं कहा जा सकता। सद्गुणों का संग्रह करने में कहां हर्ज है। सद्ज्ञान और सद्विचार हेय कैसे हो सकते हैं, बल्कि कहना चाहिए कि ये उपादेय हैं। व्यक्ति को सलक्ष्य इनका संग्रहण करना ही चाहिए। पर आज तो पदार्थ संग्रहणीय बन गया है। सत्ता संग्रहणीय बन गई है। यद्यपि इनका संग्रह भी कौशल व चानुर्य की अपेक्षा रखता है। यही कारण है कि इनकी प्राप्ति सबको समान रूप से नहीं होती। मैं मानता हूं, जिनमें सत्ता और पदार्थ के संग्रह का कौशल है, यदि वे इनसे विमुख हो जाते हैं तो उनकी विशेषता है, प्रधानता है। लालसाओं की धधकती आग से वे स्वयं तो बचेंगे ही, विश्व को भी बचा सकेंगे। समाज की प्रकृति अनुकरणप्रधान होती है। जैसा बड़े लोग करते हैं, उसीका अनुकरण सामान्य लोग करने लगते हैं।

**हमें स्वयं भगवान बनना होगा**

आज समूचे संसार में अनैतिकता की महामारी, नीति-भ्रष्टता की प्लेग फैली हुई है। इनको नियंत्रित करने की, समाप्त करने की जिम्मेवारी किसकी है ? 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत'.....' कहकर इससे हम अपनी जिम्मेदारी से छुटकारा नहीं पा सकते। हमारा उद्धार करने के लिए कोई भगवान या परमात्मा यहां नहीं आयेगा, अपितु हमें स्वयं ही परमात्मरूप धारण करना है। मैं समझता हूं, अपनी जिम्मेदारी से बेखबर होना आज का सबसे बड़ा खतरा है। यह वृत्ति बहुत ही घातक है। इसके परिणाम भयंकर होते हैं।

**समाधान की दिशा**

एक व्यक्ति के नीतिभ्रष्ट होने पर समूचे संसार में विध्वंसात्मक प्रवृत्ति आ जाती है। यह एक खतरा है। इस खतरे का प्रतिकार हो, यह अत्यंत अपेक्षित प्रतीत होता है। आज के इस पतनोन्मुख वातावरण में सर्वकर्ममुक्ति की बात बहुत दूर की है, तथापि सब चाहते हैं कि यह आतंक किसी तरह से मिट जाए। इसको प्रश्रय देने की जिम्मेदारी दो पर है—समाज पर और राजनीति पर। समाज आज शृंखला-विहीन और नीतिभ्रष्ट हो रहा है। अतः समाज के लोगों के लिए एक ऐसी आचार-

संहिता बने, जो सबको मान्य हो सके। अन्यथा चाहते हुए भी लोग इस दलदल से बाहर नहीं निकल पायेंगे।

दूसरी बात राजनीति की है। जो राजनीतिक लोग धर्म की बातों को साम्प्रदायिक बताते हैं, वे स्वयं आज इतने संकुचित दायरे में आ गये हैं कि उसके लिए कुछ भी कहने की बात नहीं है। आप देखें, धर्मशास्त्र व नीतिशास्त्र में आत्म-प्रशंसा और परनिन्दा को दोष माना गया है, जबकि आज राजनीति में आत्म-प्रशंसा और पर-निन्दा करना एक आवश्यक कर्तव्य-सा ही समझा जाने लगा है। अतः उन राजनीतिक लोगों के लिए भी एक सर्वमान्य आचार-संहिता निर्मित होनी अपेक्षित है। इसके लिए एक सामान्य संगठन अस्तित्व में आए, यह आवश्यक प्रतीत होता है। उस संगठन में सभी दलों का प्रतिनिधित्व रहे। उसके माध्यम से किसी एक दल का प्रतिनिधि अन्य दलों को उस आचार-संहिता के मानने का अनुरोध करे। इस प्रक्रिया से किसी को बुरा भी नहीं लगेगा और काम भी सुगम हो जाएगा।

अणुव्रत आंदोलन इन सब पहलुओं को छूता ही है, अपितु इन सभी दिशाओं में कार्य करने के लिए भी प्रयत्नशील है। यद्यपि आन्दोलन का पिछला वर्ष बहुत सफल और यशस्वी रहा, तथापि एक बात की ओर ध्यान देना बहुत आवश्यक है। जिस स्तर पर अनैतिक और विध्वंसात्मक कार्य चल रहे हैं, उस स्तर पर नैतिक कार्य नहीं चल रहे हैं। पर यह निष्कारण नहीं है। चूंकि अनैतिक कार्यक्रमों में लोभ, लाभ व सत्ता का आकर्षण है, इसलिए बहुत सहजतया लोग इनके साथ जुड़ते रहते हैं। इसके लिए विशेष प्रयत्न करने की अपेक्षा नहीं रहती। पर नैतिक कार्यक्रमों में लाभ, सत्ता या स्वार्थसिद्धि की कोई संभावना दिखाई नहीं देती। तब भला उनके साथ लोग जुड़ने के प्रति उत्साहित कैसे होंगे। ऐसी स्थिति में हमारा काम है कि हम जन-जन तक यह स्वर पहुंचा दें कि अनैतिकता में पतन है और नैतिकता में जीवन का समुत्थान निहित है। मैं मानता हूं, यह आस्था जितनी पुष्ट बनेगी, हमारा काम उतना ही सहज बनेगा। जिन व्यक्तियों और संस्थानों का नैतिकता में विश्वास है, वे सहज रूप से हमारे कार्य में सहयोग के लिए आगे आएंगे। बूंद-बूंद से घट भरता है, इस अपेक्षा से उन सबके सहयोग से हम स्वस्थ समाज के निर्माण की दिशा में तेजी से आगे बढ़ सकेंगे।

कानपुर

१९ अक्टूबर १९५८

## व्रत का मूल्य

### जीवन-शुद्धि को बीज

‘व्रत’ भारतीय संस्कृति की आत्मा है। उसका घोष है—मानव अपने में परिव्याप्त बुराइयों को छोड़ व्रती बने। वे भविष्य में व्याप्त न हों, इसलिए वह स्वीकृत व्रतों में दृढ़ रहे। ‘व्रत’ त्याग का पर्याय है। जो प्राप्त भोगों को छोड़े, वह व्रती है। साथ ही अप्राप्त भोगों का परित्याग भी व्रत है। इससे भविष्य में यदि वे (भोग) उपलब्ध भी हो जाते हैं तो भी व्यक्ति उनकी ओर आकर्षित नहीं होता, उस ओर डिगता नहीं, उस ओर झुकता नहीं। व्रत उसे बचा लेते हैं। व्रत जीवन-शुद्धि के बीज हैं। एक बीज में हजारों-लाखों फलों को पैदा करने की क्षमता होती है। यदि बीज जल जाता है तो फिर उससे एक पत्ता भी नहीं निकल सकता। व्रतनिष्ठ भाई-बहन व्रतरूपी बीजों को अपने में बोएं। जो अब तक अपने में व्रतानुरूप उर्वर भूमिका पैदा नहीं कर सके हैं, वे अपने हृदय को उर्वर बनायें। व्रत जीवन को विकारों से सुरक्षित रखने के लिए एक प्राचीर है।

### अणुव्रतियों से अपेक्षा

जो अपने आपको जीत लेता है, वह संसार पर काबू पा लेता है। इसलिए महर्षियों ने बताया—अपने-आपसे जूझो, दूसरों से नहीं। व्रत आत्म-विजय का मार्ग है। मुझे आशा है, अणुव्रती बहन-भाई अपने द्वारा लिये गये व्रतों को मजबूती के साथ निभायेंगे। वे उसमें श्लथ और कमजोर नहीं रहेंगे। साथ ही मैं यह भी चाहूंगा कि प्रत्येक अणुव्रती भाई और बहन अग्रिम वर्ष में कम-से-कम पांच अणुव्रती अवश्य बनाये। यह छोटा-सा सहयोग आंदोलन के कार्यक्रम को आगे बढ़ाने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा, जिसकी कि वर्तमान परिस्थितियों में समाज और राष्ट्र को बहुत बड़ी अपेक्षा है।

कानपुर

२२ अक्टूबर १९५८

१४०

महके अब मानव-मन

## दीक्षा-संस्कार

दीक्षा क्या है ?

अभी आपके समक्ष दो भाइयों और चार बहिनों का दीक्षा-संस्कार संपन्न हुआ। प्रश्न है, दीक्षा क्या है? दीक्षा का अर्थ है—संयमी जीवन में प्रवेश करना। इसी बात को थोड़े विस्तार में इस प्रकार कहा जा सकता है कि अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की साधना में यावज्जीवन के लिए प्राणपण से जुट जाना दीक्षा है। प्रकारान्तर से ऐसा भी कह सकते हैं कि सांसारिक सुख-सुविधापूर्ण जीवन के अन्त का नाम दीक्षा है। आपको यह बात अतिरंजनपूर्ण लग सकती है। आप कह सकते हैं, कोई भी व्यक्ति सुख-सुविधापूर्ण जीवन का अन्त करे, यह असंभव है। करने की बात भी आगे की है, ऐसा सोचना भी असंभव है। पर मेरे अनुभव से यह सही नहीं है। अध्यात्मवाद की साधना व जीवन के चरम उत्कर्ष में जिनकी गहरी निष्ठा और तीव्र आकर्षण है, वे भौतिक सुख-सुविधाओं की कब आकांक्षा करते हैं। कब परवाह करते हैं। वे साधना के बीच आनेवाली दैहिक असुविधाओं में दुःख की अनुभूति नहीं करते।

सुख-दुःख मन से संबंधित है

आप कहेंगे, यह कैसे संभव है कि दैहिक असुविधाओं से होकर व्यक्ति को गुजरना पड़े और उसे दुःख की अनुभूति न हो। इस संदर्भ में समझने की बात यह है कि दैहिक असुविधाएं और दुःख की अनुभूति ये दोनों बिलकुल अलग-अलग बातें हैं। इनका परस्पर कोई सीधा संबंध नहीं है। दुःख की अनुभूति मानसिक स्तर की बात है, जबकि वह दैहिक स्तर की बात है। दीक्षित होने वाले व्यक्ति का मन यदि स्वस्थ है, सुसमाधिस्थ है, दृष्टि-कोण अन्तर्मुखी है तो दैहिक स्तर पर होने वाली असुविधाएं उसको प्रभावित नहीं कर पातीं। वह दुःख की कोई संवेदना नहीं करता। हां, जहां व्यक्ति का मन अस्वस्थ और असमाधिस्थ है, दृष्टिकोण बहिर्मुखी और पदार्थवादी है, वहां वह असुविधाओं में दुःख का वेदन करता है। चूंकि दीक्षा का जीवन

अन्तर्मुखता का जीवन है, आत्म-केन्द्रित जीवन है, इसलिए भौतिक सुविधाएं-असुविधाएं साधक को प्रभावित नहीं कर पातीं। और ऐसी स्थिति में वह असुविधाओं को भोगता हुआ भी दुःख को नहीं भोगता, दुःख की संवेदना नहीं करता। मुझे आशा है, दीक्षित श्रमण-श्रमणियां सदैव अन्तर्मुखी बने रहेंगे, जिससे कि वे अपनी जीवन-यात्रा के बीच दैहिक सुविधा-असुविधा की कोई भी स्थिति से अप्रभावित रह सकें। उनके समक्ष दुःख की संवेदना का कोई भी प्रसंग उपस्थित न हो। वे पूर्ण समाधि का जीवन जी सकें।

कानपुर

२७ अक्टूबर १९५८

## नारी-जागृति का महत्व

नारी का विकास : समाज का विकास

नारी मानव-समाज का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है। उसके विकास के बिना समाज का विकास अधूरा है। आप जानते हैं, बालक-बालिकाएं समाज एवं राष्ट्र के भावी कर्णधार होते हैं। समाज और राष्ट्र का उत्तरदायित्व उन्हीं के कंधों पर आता है। इस दृष्टि से उनका सही निर्माण होना अत्यंत आवश्यक है। परोक्ष रूप से वह समाज और राष्ट्र के भविष्य का निर्माण है। इन बालक-बालिकाओं का निर्माण माताओं के रूप में नारी के द्वारा होता है। वही उन्हें संस्कार प्रदान करती है। जैसे संस्कार वे माताओं से पाते हैं, उसी सांचे में उनका जीवन सहज रूप से ढल जाता है। इसलिए हम ऐसा मान सकते हैं कि महिला-समाज के अभ्युत्थान का एक विशेष फलित है—भावी पीढ़ी का सद्वृत्ति और सुसंस्कार की ओर अग्रसर होना। यह कोई अतिशयोक्ति नहीं है, अपितु बिलकुल वास्तविकता है। वस्तुतः सुसंस्कारी और जागृत नारी समाज के लिए एक वरदान है। सुसंस्कारों की जागरणा उसके स्वयं के जीवन को तो सुखी और शांत बनाती ही है, प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से घर-परिवार को भी स्वर्ग बना देती है। समाज और राष्ट्र के उज्ज्वल भविष्य का सुदृढ़ आधार भी निर्मित कर देती है।

जरूरी है कुसंस्कारों को छोड़ना

मैं देख रहा हूं, आज बहनें बच्चों को सुसंस्कारी बनाने की अपनी जिम्मेवारी का सम्यक् निर्वहन नहीं कर रही हैं। अन्यथा नई पीढ़ी में आज दिखाई देने वाला सुसंस्कारों का अभाव नहीं होता। और इस जिम्मेवारी का सम्यक् निर्वहन वे कर भी कैसे सकती हैं, जबकि उनका स्वयं का जीवन भी सुसंस्कारों के ढांचे में नहीं ढल रहा है। वे गलत संस्कारों में बही जा रही हैं। प्रदर्शन और फैशनपरस्ती उन पर हावी हो रही है। दूसरों की नुक्ताचीनी, निंदा, कलह, ईर्ष्या में वे अपनी शक्ति का अपव्यय कर रही हैं। अपेक्षा है, महिलाएं प्रदर्शन एवं फैशनपरस्ती के स्थान पर सादगी, सात्विकता, सहजता एवं शालीनता को जीवन में उतारें। नुक्ताचीनी

निंदा, ईर्ष्या आदि से उपरत बनती हुई प्रमोद भावना का विकास करें। तभी वे बच्चों को सुसंस्कारी बनाने के अपने गुरुतर दायित्व को सम्यक् रूप से निभा सकेंगी।

### नैतिक जागरण में नारी की भूमिका

यह एक यथार्थ है कि समाज एवं राष्ट्र में जब भी कोई उल्लेखनीय कार्य हुआ है, उसमें नारी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। आज राष्ट्र में नैतिक जागरण की महती आवश्यकता है, बल्कि सर्वाधिक आवश्यकता है। इस कार्य में महिलाओं को सलक्ष्य जुटना है। मेरा मानना है कि यदि वे दृढ़ संकल्प एवं सम्पूर्ण निष्ठा के साथ इस कार्य में जुट गईं तो राष्ट्र के नैतिक एवं चारित्रिक जागरण के कार्य को एक नई गति मिलेगी। उसकी सफलता की संभावनाएं बहुत बढ़ जाएंगी। समाज और राष्ट्र के अभ्युदय में यह उनका अत्यंत उल्लेखनीय योगदान होगा।

कानपुर

३० अक्टूबर १९५८



## दीपावली का संदेश\*

### दीपावली का माहात्म्य

दीपावली का दिन भारतीय परंपरा में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण दिन है। जैन धर्म की दृष्टि से तो आज का दिन एक ऐतिहासिक दिन है, यादगार दिन है। आज के दिन श्रमण संस्कृति के महान् उन्नायक, युगप्रवर्तक, चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर ने अपनी जीवन-साधना को संपन्न कर मुक्ति का लाभ प्राप्त किया था। उनकी आत्म-साधना की चरम सम्पन्नता की वह स्वर्णिम बेला थी। दूसरे शब्दों में भारत की आध्यात्मिक संस्कृति के आलोक का वह एक पुण्य दिवस था।

### महावीर की साधना

भगवान महावीर का जीवन त्याग, संयम एवं चरित्र का जाज्वल्यमान प्रतीक था, जीवंत प्रतीक था। साधना के पथ पर आगे बढ़ते समय उन्हें नाना प्रकार के कष्टों को झेलना पड़ा, अनेक परीषहों को सहना पड़ा। पर साधना के प्रति उनका समर्पणभाव इतना गहरा था कि वे हर अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति में अविचल एवं अडोल रहते हुए गंतव्य की दिशा में बढ़ते रहे। क्रमशः बढ़ते रहे। आन व संकल्प के धनी मनस्वी पुरुषों को हजार प्रतिकूलताएं भी आगे बढ़ने से कब रोक पाती हैं। वे चट्टानों को चीर कर भी अपनी राह बना लेते हैं, आगे बढ़ जाते हैं।

### अहिंसा और अपरिग्रह का महत्त्व

भगवान महावीर का समग्र जीवन हमारे लिए अत्यंत प्रेरक है। उन्होंने अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकांत जैसे सार्वभौम एवं परम जीवनोपयोगी तत्त्वों का संदेश देते हुए जन-जन का मार्ग-दर्शन किया। उन्होंने बहुत स्पष्ट शब्दों में बताया कि हिंसा जीवन की किसी भी समस्या का समुचित समाधान नहीं है। समुचित-असमुचित की बात भी आगे की है। हिंसा से कोई भी समस्या सुलझती ही नहीं है। उनकी दृष्टि में अहिंसा ही

\* २४८४ वें महावीर निर्वाण दिवस के अवसर पर प्रदत्त प्रवचन

वह एकमात्र तत्व है, जो सभी उलझनों एवं विषमताओं को मिटाकर जीवन को शांति के विस्तीर्ण राजपथ पर अग्रसर होने की प्रबल शक्ति देता है।

उन्होंने परिग्रह को अनेक समस्याओं के मूल के रूप में प्रतिपादित किया। उन्होंने कहा, अपरिग्रह के बिना अहिंसा फलित नहीं हो सकती। परिग्रह से बंधा व्यक्ति नाना प्रकार की हिंसा में प्रवृत्त होता है। जैसे-जैसे व्यक्ति की अपरिग्रह की दिशा में गति बढ़ती है, वैसे-वैसे उसकी अहिंसा भी पुष्ट होती चली जाती है।

### अनेकांत का मूल्य

भगवान महावीर ने अनेकान्तवाद का प्रतिपादन कर संकीर्णताजन्य पारस्परिक संघर्षों से परे रहने का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने कहा, ऐकांतिक दृष्टिकोण के कारण व्यक्ति-व्यक्ति, समाज-समाज, राष्ट्र-राष्ट्र के बीच विवाद और संघर्ष की स्थिति बनती है। यदि अनेकान्तिक दृष्टिकोण को सामने रखकर व्यवहार किया जाए तो विरोधी-से-विरोधी बातों में भी सामंजस्य का सूत्र खोजा जा सकता है। संसार भर के सभी स्तर के विवाद इस सिद्धांत के माध्यम से समाहित किए जा सकते हैं। निश्चित ही यह भगवान महावीर की एक महान् देन है। पर प्रश्न तो यह है कि महावीर का यह अनेकांत का सिद्धांत उनके अनुयायियों के जीवन में कहां तक उतरा है? यदि यह सिद्धांत उनके चिंतन और व्यवहार में उतर जाता तो कोई कारण नहीं है कि उनके पारस्परिक विवाद नहीं सुलभते। यह स्थिति इसी बात की ओर संकेत करती है कि स्वयं जैन लोगों ने भी इस सिद्धांत का सही-सही मूल्यांकन नहीं किया है, इसके महत्व को नहीं समझा है। ऐसे में वे उसे विश्व में कैसे फैला सकते हैं। अपेक्षा है, जैन लोग भगवान महावीर के इस सिद्धांत के प्रति गंभीर बनें। गंभीर बनने से मेरा तात्पर्य आप समझते ही होंगे। वे इसे जीवन में जीएं। स्वयं जीकर ही वे इसे विश्वव्यापी बना सकते हैं।

### महावीर की अनुपम देन

भगवान महावीर ने समता-धर्म का प्रतिपादन और उपदेश दिया। उनके समग्र दर्शन और उपदेश का मौलिक आधार और सार समता ही है। उन्होंने पुरुष और नारी को एक दृष्टि से देखा। पुरुष को उच्च और नारी को हीन नहीं माना। यही कारण है कि उन्होंने पुरुष की तरह ही नारी को भी अध्यात्म-साधना में आगे बढ़ने का पूरा अधिकार दिया। अपने संघ में उन्होंने जहां चवदह हजार पुरुषों को दीक्षित किया, वहीं महिलाओं की संख्या छत्तीस हजार थी। साधवियां भी साधुओं की तरह महान्तों की साधना में रत रहती हुई जन-जन को अध्यात्म की ओर प्रेरित करने का महनीय कार्य

करती थीं। भगवान महावीर ने कहा, मुक्ति को जितना अधिकार पुरुष को है, उतना ही नारी को है। पुरुष को किंचित् भी अधिक नहीं और नारी को किंचित् भी कम नहीं। यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो हमें यह मानना होगा कि जैनसंघ के अतिरिक्त अन्यान्य किसी भी धर्मसंघ में परिव्राजिकाओं की ऐसी सुव्यवस्थित एवं सुनियोजित परम्परा उपलब्ध नहीं है। उन्होंने साधिवियों के संयम-निर्वाह के लिए कुछेक विशेष नियम बनाए, जिससे उन्हें महाव्रतों की साधना में सहायता मिल सके। भगवान महावीर की अनेकानेक देनों में से समतामूलक यह एक निरुपम देन है।

**महावीर को कैसे मनाएं ?**

भगवान महावीर के निर्वाण हुए ढाई हजार वर्ष पूरे होने वाले हैं। पर इतनी लम्बी काल-अवधि के पश्चात् भी उनके सिद्धांतों और उपदेशों की प्रासंगिकता में किंचित् भी न्यूनता नहीं आई है, बल्कि कहना चाहिए कि आज उनकी प्रासंगिकता अपेक्षाकृत ज्यादा हुई है। हिंसा और अर्थवाद से मानव-जाति ने जो त्रास भोगा है, उसके कारण आज अहिंसा और अपरिग्रह को व्यापक समर्थन और महत्व मिल रहा है। बौद्धिक जगत् अनेकांत के प्रति तेजी से आकर्षित हो रहा है। पर खेद का विषय यह है कि जैन लोग स्वयं महावीर के सिद्धांतों का मूल्य पूरा-पूरा नहीं आंक रहे हैं। उनका जीवन महावीर के आदर्शों के अनुरूप नहीं दिखाई पड़ रहा है। मेरी दृष्टि से महावीर की जय बोलने का उतना महत्व नहीं है, जितना उनके आदर्शों के अनुरूप जीवन को ढालने का है। जैनत्व की कसौटी नाम के पीछे 'जैन' जोड़ना नहीं, बल्कि महावीर के आदर्शों के सांचे में अपनी सोच, व्यवहार एवं कर्म को ढालना है। अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकांत और समता—महावीर के जिन चार सिद्धांतों और उपदेशों की चर्चा मैंने की, उनके जीवन्त प्रतीक बनकर ही महावीर के प्रति सच्ची श्रद्धा समर्पित की जा सकती है और यही उनके निर्वाण-दिवस—दीपमालिका को मनाने की सच्ची सार्थकता है। यही दीपावली का संदेश है।

कानपुर

११ नवम्बर १९५८

## मैं सौभाग्यशाली हूँ\*

एक प्राचीन उक्ति है—‘दुर्लभं भारते जन्म’—भारत में जन्म पाना दुर्लभ है। प्रश्न है, ऐसा क्यों कहा गया ? इसके पीछे एक विशेष आशय है, एक विशेष भावना है। भारत वह देश है, जिसकी संस्कृति अध्यात्म-आधारित है। संयम, तप और त्याग की उर्वरा में फली-फूली है। निःसंदेह अध्यात्म, संयम, तप, त्याग की संस्कृति के धनी देश में जन्म पाना किसी भी व्यक्ति के लिए गौरव की बात है, सौभाग्य की बात है। मैं भी अपने-आपको इस माने में गौरवशाली एवं सौभाग्यशाली मानता हूँ कि मुझे भारतवर्ष में जन्म मिला।

मेरा दूसरा सौभाग्य यह है कि मैं ग्यारह वर्ष की बालवय में प्रातः-स्मरणीय पूज्य गुरुदेवश्री कालूगणी के श्रीचरणों में दीक्षित हुआ। दीक्षित होने के पश्चात् मैं उनकी पावन सन्निधि में ग्यारह वर्षों तक रहा। इस अवधि में उन्होंने मुझे बहुत कुछ दिया, बहुत कुछ सिखाया। इतना कि मैं उसे शब्दों में बताने में असमर्थ हूँ। आज मैं जो कुछ भी हूँ, वह सब उन्हीं की कृपा का प्रतिफल है। मैं जन्म-जन्मान्तर में भी उनके उपकार से उन्मत्त नहीं हो सकता।

बावीस वर्ष की अवस्था में मैंने पूज्य कालूगणी के उत्तराधिकारी के रूप में इस संघ का दायित्व संभाला। मुझे स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी कि मुझे इतनी छोटी अवस्था में इतना गुस्तर दायित्व संभालना पड़ेगा। पर दायित्व जब आ ही गया तो उसे निभाना आवश्यक था। मुझे इस बात का अत्यंत आत्मतोष है कि तब से अब तक सतत मैं इस दायित्व को जागरूकता के साथ निभाने का प्रयत्न करता रहा हूँ। हालांकि इसमें मैं कितना सफल रहा हूँ और कितना नहीं, इसका निर्णय मैं नहीं कर सकता।

संघ का आचार्य बनने के पश्चात् मैंने संघ के साधु-साधवियों के सर्वांगीण विकास की ओर ध्यान दिया। विशेषतः शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ाने के लिए सघन प्रयत्न किया। उसके अनुकूल परिणाम आए हैं, आ रहे

\* ४५ वें जन्म-दिन के अवसर पर प्रदत्त प्रवचन

हैं। पिछले दिनों आगम-संपादन का महत्वपूर्ण कार्य भी मैंने प्रारंभ किया। मैं मानता हूँ, इस निमित्त जैन शासन की सेवा का एक बहुत ही दुर्लभ अवसर हमें प्राप्त हुआ है। यह काम हमारे हाथ आया, इसे भी मैं अपना और पूरे संघ का सौभाग्य मानता हूँ।

मेरी यह स्पष्ट अवधारणा है कि नैतिकताशून्य एवं चरित्रविहीन जीवन वास्तव में जीवन नहीं है। आज जन-जीवन कितना नैतिकताशून्य और चरित्रशून्य हो रहा है, यह किसी से छुपा नहीं है। इस स्थिति ने मुझे संवेदित किया। फलतः जन-जन के नैतिक एवं चारित्रिक अभ्युदय के पवित्र उद्देश्य से मैंने अणुव्रत आन्दोलन के रूप में एक व्यापक कार्यक्रम शुरू किया। इस कार्यक्रम के साथ कितने लोग अब तक जुड़े, इसकी संख्या मेरे पास नहीं है। पर इतना अवश्य कह सकता हूँ कि इसके माध्यम से नैतिक एवं चारित्रिक जागरण का एक सुंदर वातावरण निर्मित हुआ है। लोगों का ध्यान इस बिंदु पर खिंच रहा है। मैं चाहता हूँ, अधिक-से-अधिक लोग इस कार्यक्रम के माध्यम से अपने जीवन को नैतिकता एवं सदाचार के ढाँचे में ढालें।

आगामी वर्ष में आगम-सम्पादन, शिक्षा, साहित्य-साधना, अणुव्रत आन्दोलन आदि उपक्रम और अधिक विकास पाएँ, मैं अपनी शक्ति इन कार्यों में और अच्छे ढंग से नियोजित कर सकूँ, ४५ वें वर्ष-प्रवेश के अवसर पर मैं अपने प्रति यही मंगलभाव करता हूँ।

कानपुर

१२ नवम्बर १९५८

## कल्याण का मार्ग

### विदाई और विहार

आज विदाह-समारोह है। मैं मानता हूँ, यह विदाई तो मात्र एक रस्म है, वास्तव में हमारी विदाई तो बहुत पहले ही हो चुकी। जिस दिन हमने गृहवास छोड़कर साधु-जीवन स्वीकार किया था, उसी दिन हम इस संसार से, अपने मित्रों, पारिवारिक जनों एवं सम्बन्धियों से विदा ले चुके थे। अतः हमारे लिए विदाई के स्थान पर 'विहार' शब्द का प्रयोग होता है। जैन और बौद्ध दोनों में यही परम्परा रही है। इसी परंपरा के कारण ही संभवतः वर्तमान विहार प्रदेश का नाम विहार पड़ा हो, क्योंकि भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध का जन्म तथा बहुलांश में विहरण एवं प्रवास विहार में ही हुआ। यह भी कैसा शुभ संयोग है कि हम यहां से प्रस्थान कर विहार प्रदेश का स्पर्श करने जा रहे हैं।

### सच्चा अभिनंदन

इस अवसर पर मैं एक-दो बातें विशेष रूप से कहना चाहता हूँ। आज सारे विश्व में संघर्ष और भय की स्थिति है। सभी लोग इस स्थिति से चिन्तित हैं। मैं सोचता हूँ, इस स्थिति से उबरने का उपाय यही है कि मानव समन्वय का मार्ग अपनाए। समन्वय बहुत ही मूल्यवान तत्व है। इससे बंधुता, समता और मैत्री की भावना का विकास और प्रसार होता है। आप सबका ऐसा प्रयास होना चाहिए, जिससे समन्वय की भावना को अधिक-से-अधिक सींचन मिले।

आचार का उन्माद और विचारों का दुराग्रह दोनों व्यक्ति को पतन के गतं में ले जाने वाले तत्व हैं। आज ये दोनों तत्व समाज में प्रभावी बनते जा रहे हैं। यह बहुत ही गंभीर बात है। जीवन को विकास की ओर ले जाने की आकांक्षा रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को इनसे बचने का सलक्ष्य प्रयत्न करना चाहिए। अन्यथा विकास करने की आकांक्षा पूरी नहीं होगी। संकीर्णता और हीनभावना - ये दो अन्य विकास-बाधक तत्व हैं। बन्धुओ! कोई समय था, जब संकीर्णता की बातों को महत्व दिया जाता था।

जाति-बंधन, सम्प्रदाय-बंधन की बातों का खूब प्रचार-प्रसार होता था। लोग उनमें बढ-चढकर हिस्सा लेते थे, रस लेते थे। पर अब संकीर्ण और अनुदार विचारों का युग बीत चुका है। धर्म को अब जाति, वर्ण, सम्प्रदाय आदि के सभी प्रकार के संकीर्ण घेरों से बाहर निकालना ही होगा। उसका व्यापक और सार्वभौम स्वरूप ही मानव के लिए कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है। अणुव्रत आंदोलन धर्म के व्यापक और सार्वभौम स्वरूप के प्रचार-प्रसार का ही कार्यक्रम है। इसमें किसी प्रकार की कोई संकीर्णता को तनिक भी स्थान नहीं है। जीवन की पवित्रता में विश्वास रखने वाला कोई भी व्यक्ति इसके साथ जुड़ सकता है। कानपुर के पांच मास के प्रवास में इस कार्यक्रम को अच्छी गति मिली है। चाहता हूं, हमारे यहां से प्रस्थित हो जाने के पश्चात् भी यह कार्यक्रम व्यवस्थित रूप में आगे बढ़ता रहे। आप सबसे यह आग्रह करता हूं कि आप अपना जीवन-व्यवहार अणुव्रत भावना के अनुरूप बनाकर इसके प्रचार-प्रसार में अपनी शक्ति का पूरा-पूरा नियोजन करने का सत्संकल्प करें। बस, यही मेरा सच्चा विदाई-अभिनन्दन होगा।

कानपुर

२६ नवम्बर १९५८

## धर्म दैनंदिन जीवन से जुड़े

धर्म वर्तमान को स्वस्थ बनाता है

लोग कहते हैं कि धर्म से मोक्ष मिलता है, परलोक सुधरता है। यह ठीक है कि धर्म से मोक्ष मिलता है, परलोक सुधरता है, पर मैं ऐसा मानता हूँ कि धर्म से केवल परलोक ही नहीं, वर्तमान भी सुधरता है। इससे भी आगे मैं तो इस भाषा में सोचता हूँ कि जो धर्म वर्तमान को नहीं सुधरता, वह भविष्य को कदापि नहीं सुधार सकता। इसके विपरीत वर्तमान स्वस्थ है तो भविष्य के बिगड़ने का कोई प्रश्न ही नहीं है। इसलिए व्यक्ति को चाहिए कि वह ऐसे धर्म की आराधना करे, जो उसके वर्तमान जीवन की पवित्रता एवं स्वस्थता का आधार बने। अणुव्रत धर्म का एक ऐसा ही रूप है। विभिन्न जाति, वर्ण, वर्ग और संप्रदाय के हजारों-हजारों लोगों ने इसे अपनाकर अपने वर्तमान को स्वस्थता का सुदृढ़ आधार दिया है।

धर्म के नाम पर विवाद कैसा ?

बन्धुओ ! मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि लोग धर्म को लेकर भगड़ते हैं। क्या धर्म कोई भगड़ा करने का तत्व है ? धर्म तो भगड़े को मिटाने का काम करता है, फिर उसको लेकर भगड़ा कैसा ? मुझे लगता है, भगड़ा धर्म का नहीं, अपने-अपने ऐकांतिक आग्रह का है। लोग अपने दृष्टिकोण ही सम्पूर्ण सत्य मान लेते हैं, दूसरे के दृष्टिकोण को समझने का जरा-सा भी प्रयत्न नहीं करते। इस स्थिति में भगड़ा नहीं होगा तो और क्या होगा ? हम इस तथ्य को समझें कि सत्य अनंत है, उसको देखने के पहलू भी अनंत हैं। इस स्थिति में व्यक्ति की अपनी बात किसी अपेक्षा से सत्य है तो दूसरे व्यक्ति की बात भी किसी अन्य अपेक्षा से उतनी ही सत्य हो सकती है। भगवान महावीर ने अनेकांतवाद के माध्यम से इस सत्य का उद्घाटन कर सभी प्रकार के विवादों को समाप्त करने का मार्ग प्रशस्त कर दिया।



## धर्म व्यवहार का तत्व है

हम इस बात पर ध्यान केंद्रित करें कि धर्म केवल शास्त्रों का तत्व न रहे। शास्त्रों तक सीमित रहने वाला धर्म जीवन की पवित्रता एवं स्वस्थता का आधार नहीं बन सकता। जीवन की पवित्रता एवं स्वस्थता का आधार वही धर्म बन सकता है, जो व्यक्ति के दैनंदिन जीवन से जुड़े, जीवन के हर व्यवहार एवं आचरण से जुड़े। अणुव्रत इस अर्हता से सम्पन्न है, इसलिए वह जीवन की पवित्रता एवं स्वस्थता का आधार बनता है। मैं उदाहरण से अपनी बात को और स्पष्ट करूँ। एक व्यक्ति यह संकल्प करता है कि वह किसी को कटु वचन नहीं कहेगा। इस संकल्प के साथ ही धर्म का तत्व उस व्यक्ति के व्यवहार के साथ जुड़ गया। इससे व्यक्ति को अपने वर्तमान जीवन को स्वस्थ बनाने में बहुत सहयोग मिलेगा। इसी क्रम से व्यक्ति यदि धर्म के एक-एक तत्व को अपने जीवन-व्यवहार एवं आचरण से संपृक्त करता जाए तो वह अपने जीवन को स्वस्थ और पवित्र बना सकता है, अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति कर सकता है। आप भी अपने जीवन में अणुव्रत आन्दोलन की आचार-संहिता को स्वीकार करें। आप का जीवन स्वस्थ बनेगा। उसमें पवित्रता की महक फूट पड़ेगी।

प्रयाग

७ दिसम्बर १९५८

## धर्म की सही समझ जागे

### धर्म और सम्प्रदाय

धर्म एक बहता प्रवाह है। विभिन्न सम्प्रदाय उसके विभिन्न बांध हैं। जिस प्रकार बांध का पानी पीने और सिंचाई के लिए अत्यंत उपयोगी होता है, उसी प्रकार विभिन्न सम्प्रदाय भी अत्यन्त उपयोगी हैं, बशर्ते वे धर्म के शाश्वत तत्वों का व्यापक प्रचार-प्रसार करें। इससे मानव-समाज के लिए सुख और शांति का मार्ग प्रशस्त होता है। लेकिन अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह आदि धर्म के मौलिक एवं शाश्वत तत्वों के प्रचार-प्रसार के विपरीत यदि सम्प्रदायों में कट्टरता, साम्प्रदायिकता और संकीर्णता की सड़ान आती है तो उससे मानव-समाज का कोई हित संपादित नहीं हो सकता। वे जन-जन को सत्पथ पर बढ़ने की प्रेरणा नहीं दे सकते। उनका काम मात्र अपनी स्वार्थ-सिद्धि बन जाता है। और ऐसी स्थिति में वे पारस्परिक वैमनस्य और संघर्ष को जनम देते हैं। आजकल अधिकांश सम्प्रदाय इसी प्रकार की स्थिति से होकर गुजर रहे हैं। मैं मानता हूँ, आज के चिन्तनशील व्यक्ति के धर्म से विमुक्त होने का यह एक प्रमुख कारण है।

### धन बनाम धर्म

धर्म के क्षेत्र में एक बात और बहुत बुरी हुई है। लोग पहले तो शोषण, अन्याय, धोखाधड़ी, भ्रष्टाचार और अनैतिक तरीकों से अर्थ का संग्रह करते हैं। फिर मंदिरों में दान कर, भिखमंगों को आटा-दाल और फटे-पुराने कपड़े देकर वे उस धन से धर्म और पुण्य खरीदते हैं, अपने पापों को धोने का प्रयत्न करते हैं। मैं नहीं समझता, यह कैसा धर्म? अनीति और अधर्म से अर्जित धन से धर्म जैसी पवित्र चीज कैसे खरीदी जा सकती है? पुण्य कैसे पाया जा सकता है? और बहुत सही तो यह है कि धन से धर्म का कोई सम्बन्ध ही नहीं है। दूर का भी कोई सम्बन्ध नहीं है। वह किसी भी स्थिति में धन से नहीं खरीदा जा सकता। किसी भी कीमत पर नहीं खरीदा जा सकता। वह तो आत्मा का तत्व है, जिसे अहिंसा, संयम और तप के द्वारा ही साधा जा सकता है, पाया जा सकता है। मैं समझता हूँ, धर्म के प्रति जब तक यह

सम्यक् दृष्टिकोण निर्मित नहीं होगा, तब तक धन से धर्म खरीदने जैसी अनेक गलत प्रवृत्तियाँ उसके इर्द-गिर्द चलती रहेंगी। उन्हें रोका नहीं जा सकता। इसलिए यह अत्यन्त अपेक्षित है कि धर्म के प्रति लोगों की अवधारणा सम्यक् बने।

### संयम की प्रतिष्ठा हो

मैं अनुभव कर रहा हूँ कि आज का मानव अत्यन्त विशृंखलित एवं अशांत है। इसका क्या कारण है? इसका कारण यही है कि उसमें आत्म-नियंत्रण की शक्ति चुकती जा रही है, वह लालसाओं का दास बनता जा रहा है। जब तक वह अपनी असीमित लालसाओं पर अंकुश लगाना नहीं सीखेगा, आत्म-नियंत्रण का पाठ नहीं पढ़ेगा, तब तक वह अशांति और दुःख से नहीं छूट सकता। आत्म-नियंत्रण का अर्थ है—संयम। संयम धर्म का बहुत ही महत्वपूर्ण पक्ष है। दुर्भाग्य से, इस पक्ष को जितना मूल्य दिया जाना चाहिए था, उतना नहीं दिया गया। उसकी ही दुष्परिणति दुःखी और अशांत जन-जीवन के रूप में आई है। अणुव्रत आन्दोलन जन-जीवन में संयम के मूल्य को पुनः प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न है। उसका घोष ही है—‘संयमः खलु जीवनम्’—संयम ही जीवन है। अपेक्षा है, यह आन्दोलन अधिक-से-अधिक जनव्यापी बने। इसके जनव्यापी बनने का अर्थ है—संयम की प्रतिष्ठा। और संयम की प्रतिष्ठा का अर्थ है—सुख और शांतिमय जीवन।

प्रयाग

७ दिसम्बर १९५८

## अध्यात्म का अंकुश अपेक्षित

संसार में दो प्रकार के प्रवाह सदा से रहे हैं। एक है भौतिक प्रवाह तथा दूसरा है आध्यात्मिक प्रवाह। जिस प्रकार गंगा और यमुना की धाराओं का प्रयाग में समन्वय हो गया है, उसी प्रकार इन दोनों प्रवाहों में भी समन्वय स्थापित किया जा सकता है। पर समन्वय के अर्थ को आप स्पष्ट कर लें, क्योंकि उसके सन्दर्भ में बहुत-सारे लोग भ्रान्ति पालते हैं। समन्वय का तात्पर्य मौलिक गुणों को छोड़ देना नहीं है। यदि ऐसा होता है तो वह मेरी दृष्टि में समन्वय नहीं, असमन्वय है। ऐसा समन्वय कभी काम्य नहीं, किसी काम का नहीं। मेरी दृष्टि में वही समन्वय वास्तविक समन्वय है, जिसमें अपने मौलिक गुणों की सुरक्षा के साथ ऊपरी बातों में सामंजस्य स्थापित किया जाता है। भौतिकता एवं आध्यात्मिकता में ऐसे ही समन्वय की अपेक्षा करता हूँ।

यह सही है कि भौतिक तत्वों के बिना जीवन चल नहीं सकता। लेकिन इसीके समानान्तर यह भी उतना ही सच है कि जब तक उन पर अध्यात्मवाद का अंकुश नहीं होगा तो वे विकास के स्थान पर विनाश का कार्य करेंगे। इसलिए भौतिकता पर अध्यात्म का अंकुश नितान्त अपेक्षित हैं। आज निरंकुश भौतिकता ने विश्व के सामने जैसी स्थिति पैदा की है, उससे सम्पूर्ण मानव जाति पर उसके अस्तित्व का खतरा मंडराने लगा है। इसलिए जगह-जगह से यह स्वर उभर रहा है कि भौतिकता पर अविलंब अंकुश लगाना चाहिए। अणुव्रत आंदोलन भौतिकता पर अध्यात्म का अंकुश लगाने का कार्य करता है। इसलिए इस कार्यक्रम की उपादेयता स्वयंसिद्ध है। अपेक्षा है, जन-जन इस कार्यक्रम के साथ जुड़े।

प्रयाग

८ दिसम्बर १९५८

## शिक्षा का प्रयोजन

विद्या क्यों ?

विद्या-प्राप्ति का वास्तविक प्रयोजन जीवन का सर्वतोमुखी विकास है। यदि इस उद्देश्य की प्राप्ति नहीं होती है तो विद्या-प्राप्ति की बहुत सार्थकता सिद्ध नहीं होती। आज अध्यापन के क्षेत्र में इस उद्देश्य की स्पष्टता नहीं है। उसी कारण आज विद्यार्जन का लक्ष्य मात्र अर्थाजन तक सिमट गया है। इसकी दुष्परिणति हमारे सामने है। विद्यार्थी महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों से निकलने के पश्चात् आजीविका-प्राप्ति के लिए इधर-उधर मारा-मारा फिरता है। यदि जीवन के सर्वांगीण या सर्वतोमुखी विकास के लक्ष्य की स्पष्टता होती तो आज यह स्थिति पैदा होती ही क्यों।

विद्वान् कौन ?

आज अधिकांशतः लोग इस भाषा में सोचते हैं कि विद्या प्राप्त करने वाला विद्वान् होता है। ठीक है, विद्या से संपन्न व्यक्ति विद्वान् कहलाता है। पर मेरी दृष्टि में सच्चा विद्वान् वही है, जो ज्ञान प्राप्त कर उसके अनुसार अपने जीवन को बना लेता है। अपने चिंतन और व्यवहार को उससे भावित कर लेता है। अन्यथा उसका पुस्तकीय ज्ञान, उसका अध्ययन उसके लिए किसी भार से अधिक नहीं होता। विद्यार्थियों को इस बिन्दु पर गंभीरता से चिंतन कर अपने जीवन में एक नया मोड़ लेना चाहिए। विद्या-प्राप्ति के सही लक्ष्य का ज्ञान और लक्ष्योन्मुख गति ही उन्हें विद्यार्जन की सार्थकता प्रदान कर सकेगी।

हिन्दी विद्यापीठ, नैनी (प्रयाग)

९ दिसम्बर १९५८

## साहित्य और साहित्यकार

### बदली हुई स्थिति

भारतवर्ष के लिए यह अत्यन्त गौरव की बात रही है कि अतीत में विभिन्न देशों के लोग यहां ज्ञान एवं चरित्र की शिक्षा लेने आया करते थे। यह स्थिति क्यों थी ? इसीलिए कि यहां त्यागी-तपस्वी ऋषि-महर्षियों की वाणी से प्रसूत साहित्य का अजस्र स्रोत सदैव प्रवाहित होता था। पर अत्यंत आश्चर्य एवं खेद के साथ कहना पड़ता है कि आज यह स्थिति बिल्कुल पलट चुकी है। संस्कृत और प्राकृत भाषा में लिखा गया वह अखूट साहित्य, जिसे लाखों-करोड़ों की कीमत चुकाने पर भी नहीं प्राप्त किया जा सकता, आज रद्दी के भाव बेचा जा रहा है। विदेशी लोगों के शिक्षा ग्रहण के लिए आने के स्थान पर आज भारतवासी विदेशों में शिक्षा ग्रहण करने जा रहे हैं। इस बदली हुई स्थिति ने राष्ट्र को, राष्ट्र की अस्मिता और गौरव को बहुत ठेस पहुंचाई है।

### साहित्यकारों से अपेक्षा

इस स्थिति में प्रबुद्धजनों एवं मनीषी साहित्यकारों से यह अपेक्षा है कि वे उस साहित्य का सूक्ष्मता से यथार्थ के धरातल पर मूल्यांकन करें और नव्य स्फूर्ति व चेतावनी की एक ऐसी धारा प्रवाहित करें, जो भारतीय मानस को स्वस्थता प्रदान कर सके। वह अपने प्राचीन गौरव को पुनः प्राप्त करने के लिए कृतसंकल्प बन सके।

साहित्यकारों का काम है कि वे नष्ट होते मानवीय मूल्यों की सुरक्षा के लिए तीव्र प्रयत्न करें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अणुव्रत आंदोलन उनके सामने है। मैं चाहता हूं, वे अणुव्रत-साहित्य का अध्ययन करें, अपने तटस्थ दिमाग से उस पर चिंतन-मनन करें और अपने लेखन को एक नया मोड़ दें, कि जिससे मानवता की ढहती मीनार को थामा जा सके।

### अपेक्षित है भूल का परिष्कार

हम देखते हैं कि सूर, मीरा, तुलसी आदि के भजन भारतवर्ष के घर-घर में आज भी बड़ी श्रद्धा और भावना के साथ गाए जाते हैं। ऐसा

क्यों ? मेरी दृष्टि में इसका सबसे बड़ा कारण यही है कि उन्होंने अपने भजनों-गीतों में एक अमर संदेश भर दिया है, जो जन-जन को मानवता के राजपथ की ओर अग्रसर करता है। संस्कृत और प्राकृत के प्राचीन साहित्य में भी मानवता के राजमार्ग की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देनेवाला अमर संदेश प्रतिध्वनित होता है। पर दुर्भाग्य से उस साहित्य को पढ़ा जाना छूटता चला गया और उस कोटि के नए साहित्य का अपेक्षित सृजन नहीं हुआ। 'जागे तभी सवेरा' के अनुसार साहित्यकार अब भी इस बिन्दु पर अपना ध्यान केन्द्रित कर इस भूल का परिष्कार करें।

### चुनौती को भेलेँ

साहित्यकार बन्धुओ ! साहित्य की शक्ति से आप अपरिचित नहीं हैं। संसार में जितनी भी बड़ी-बड़ी क्रान्तियाँ या परिवर्तन घटित हुए हैं, उनमें साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। आज आणविक अस्त्रों के कारण जिस प्रकार का विध्वंसकारी वातावरण निर्मित हुआ है, उससे समूची मानव-जाति के भविष्य के आगे एक प्रश्नचिह्न लग गया है। इस स्थिति में आप साहित्यकारों के सामने एक बहुत बड़ी चुनौती है। मैं चाहता हूँ, आप इस चुनौती को भेलेते हुए साहित्य की उस अद्भुत शक्ति का विस्फोट करें, जो इस विध्वंसकारी वातावरण का मुकाबला करती हुई मानव की प्रगति एवं उज्ज्वल भविष्य का मार्ग प्रशस्त कर सके।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन; प्रयाग

९ दिसम्बर १९५८

## व्रत का माहात्म्य

भारतीय संस्कृति त्यागप्रधान संस्कृति है। संपत्ति-सत्ता को भारतवर्ष में सर्वोच्च तत्व के रूप में कभी भी स्वीकार नहीं किया गया। सर्वोच्च मूल्य त्याग और संयम को ही प्राप्त हुआ। यही तो कारण है कि बड़े-बड़े धनकुबेर और राजा-महाराजा त्यागी-तपस्वी अकिंचन साधु-संतों के चरणों में सिर झुकाकर अहोभाग की अनुभूति करते रहे हैं। आज भी यह संस्कृति यहां जीवित है। इसका ही प्रभाव है कि यहां व्रत को जीवन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त है।

व्रत आत्म-संकल्प व अन्तर् की दृढ़ता का प्रतीक है। व्रत के द्वारा ही जीवन सुसंस्कृत, जागृत और विकसित बनाया जा सकता है। इसका भी एक कारण है और वह कारण बहुत महत्वपूर्ण है। व्रत में वह अद्भुत शक्ति है, जो व्यक्ति में आन्तरिक रूपान्तरण घटित कर सकती है। डंडे या कानून से यह संभव नहीं है। हालांकि परिवर्तन तो उसके द्वारा भी हो सकता है, पर वह परिवर्तन ऊपर के स्तर का होता है, आंतरिक स्तर का नहीं होता। कानून थोपे जाते हैं। डंडे में बल का प्रयोग है। पर व्रत में ये दोनों ही स्थितियां नहीं हैं। व्रत तो आत्म-स्वीकृति से ग्रहण किया जाता है। अणुव्रत आन्दोलन छोटे-छोटे व्रतों के माध्यम से जन-जन के जीवन-व्यवहार को स्वस्थ एवं शुद्ध बनाने का नैतिक अभियान है। इसका आधार अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह—ये पांच तत्व हैं। इन्हीं पांच तत्वों को युगीन बुराइयों के परिप्रेक्ष्य में छोटे-छोटे व्रतों का रूप दिया गया है। जीवन-शुद्धि में विश्वास रखने वाला कोई भी व्यक्ति इन्हें बहुत सहजता से स्वीकार कर सकता है। जाति, वर्ग, वर्ण, भाषा, सम्प्रदाय आदि सभी प्रकार के भेदों से उसे सर्वथा दूर रखा गया है। अपेक्षा है, लोग इस आन्दोलन को खुले दिमाग से समझें और समझकर आचरण के स्तर पर स्वीकार करें। उनका यह कदम उनके स्वयं के जीवन-निर्माण की दृष्टि से तो वरदायी होगा ही, स्वस्थ समाज एवं उन्नत राष्ट्र के निर्माण में भी अप्रत्यक्ष रूप से योगभूत बन सकेगा।

प्रयाग

१० दिसम्बर १९५८



## जीवन संयममय बने

### पुरुषार्थवादी संस्कृति

जैन और बौद्ध दो अलग-अलग परम्पराएं हैं। पर अलग-अलग होकर भी दोनों परंपराओं में और-और परम्पराओं की अपेक्षा काफी निकटता है। इन दोनों ही परम्पराओं की गणना श्रमण-संस्कृति के अन्तर्गत होती है। श्रमण-संस्कृति भारत की एक महान् संस्कृति है। इस संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें पुरुषार्थवाद को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, बल्कि कहना चाहिए कि सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भगवान महावीर से उनके प्रमुख शिष्य गणधर गौतम ने जिज्ञासा की—‘भगवन् ! दुःख स्वकृत है या परकृत ?’ इसके समाधान में भगवान ने कहा—‘गौतम ! दुःख आत्मकृत है, परकृत नहीं।’ उन्होंने बताया कि संसार की प्रत्येक आत्मा को विकास का पूरा-पूरा अधिकार है। यहां तक कि वह अपने कर्तृत्व से परमात्म-पद को भी प्राप्त कर सकती है। जैन-परंपरा की तरह बौद्ध-परंपरा में भी पुरुषार्थवाद को बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

### जीवन-निर्माण की दिशा

पर आज की सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि लोग अपने-अपने धर्म और दर्शन के गौरव-गीत तो बहुत गाते हैं, पर ऊंचे-ऊंचे और जीवनोपयोगी सिद्धान्तों को समझने का प्रयास नहीं करते। ऐसी स्थिति में उनकी दृष्टि बहिर्मुखी बनी रहती है। उनका लक्ष्य अधिक-से-अधिक भौतिक सुख पाने का रहता है। परिणामतः उनके जीवन का सही निर्माण नहीं हो पाता। स्वार्थसिद्धि, येन-केन-प्रकारेण अर्थोपार्जन को ही वे निर्माण मान बैठते हैं। इससे अधिक विडंबना एवं बुद्धि-विपर्यास की और क्या बात होगी कि वे ध्वंस को भी निर्माण के रूप में देखते हैं ! यह स्थिति निश्चित ही काम्य नहीं है। इससे उबरने का एकमात्र उपाय यही हो सकता है कि लोग विभिन्न भारतीय धर्मों एवं दर्शनों का एक सीमा तक अध्ययन करें तथा उनके अहिंसा, सत्य और संयममूलक तत्वों को आत्मसात् करते हुए अपने जीवन को अधिक-से-अधिक उनके अनुरूप बनाने का प्रयास करें।

पाप से बचने का उपाय

दशवैकालिक जैन आगमों में एक महत्वपूर्ण आगम है। उसका एक प्रसंग मैं आपको बताऊँ। गणधर गौतम भगवान महावीर से प्रश्न की भाषा में कहते हैं—

कहं चरे ? कहं चिट्ठे ? कहमासे ? कहं सए ?

कहं भुंजंतो भासंतो, पावं कम्मं न बंधई ?

भगवन् ! मैं कैसे चलूँ ? कैसे स्थित रहूँ, कैसे बैठूँ, कैसे सोऊँ, कैसे खाऊँ, कैसे बोलूँ कि जिससे मेरे पापकर्म का बंधन न हो ?

इसके समाधान में भगवान महावीर कहते हैं—

जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए ।

जयं भुंजंतो भासंतो, पावं कम्मं न बंधई ॥

गौतम ! तुम यतनापूर्वक चलो, यतनापूर्वक स्थित रहो, यतनापूर्वक बैठो, यतनापूर्वक सोओ, यतनापूर्वक बोलो और यतनापूर्वक खाओ। ऐसा करने से तुम्हारे पापकर्म का बंधन नहीं होगा।

एक वाक्य में कहा जाए तो भगवान महावीर का उत्तर था—‘ये सब क्रियाएँ संयमपूर्वक करो।’ संयम आर्हती संस्कृति या जैन परम्परा का मूल है। बौद्ध परम्परा में भी इसको महत्व दिया गया है। इसी प्रकार वैदिक परम्परा में भी संयममय जीवन को श्रेष्ठ और आदर्श माना गया है। पर आज का मानव संयम की बात को भूलता जा रहा है। उसकी ही यह दुष्परिणति है कि उसका जीवन दुःख और अशांति का पिंड बन रहा है। अणुव्रत आंदोलन इस स्थिति से मानव को उबारने का एक रचनात्मक प्रयत्न है। छोटे-छोटे व्रतों-संकल्पों के माध्यम से वह व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन में संयम को प्रतिष्ठित करना चाहता है। इस प्रतिष्ठा से समाज नैतिक एवं चारित्रिक दृष्टि से संपन्न बनेगा, जिसकी कि आज नितांत अपेक्षा है। मैं आशा करता हूँ, आप इसकी आचार-संहिता को स्वीकार कर संयममय जीवन जीने की दिशा में एक नया अभियान शुरू करेंगे।

सारनाथ

१७ दिसम्बर १९५८

## धर्म को सही समझें, सही जीएं

धर्म क्या है ?

धर्म जीवन का परम तत्व है, पर उसके सन्दर्भ में व्यक्ति की अवधारणा यथार्थपरक होनी चाहिए। केवल अर्चना, पूजा और बाह्य आडम्बरों के निर्वाह मात्र में धर्म नहीं है। धर्म के मूलभूत तत्व सत्य, अहिंसा, संयम और सदाचार हैं। इनसे जीवन को भावित करना धर्म है। पर बड़े खेद की बात है कि धर्म के मौलिक तत्वों को भुलाया जा रहा है। उन्हें जीवन-व्यवहार में ढालने की बात उपेक्षित की जा रही है।

धार्मिकों के दो वर्ग

आज समाज में दो वर्ग बहुत साफ-साफ दिखाई देते हैं। एक वह वर्ग है, जो उपासना को ही सब कुछ मानता है। उसके कर्म धर्म के आदर्शों के अनुगामी हैं या नहीं, इस ओर ध्यान देने और सोचने की वह कोई आवश्यकता नहीं समझता। दूसरा वर्ग वह है, जो पूजा, उपासना व कर्मकांड में तनिक भी विश्वास नहीं रखता। इनकी जीवन में कोई उपयोगिता एवं उपादेयता नहीं मानता।

आचार मुख्य है

अणुव्रत आंदोलन इन दोनों वर्गों के लिए एक व्यवहारोपयोगी सन्मार्ग प्रशस्त करता है। वह बताता है कि उपासना वैयक्तिक विश्वास का विषय है। उसकी भी जीवन में एक सीमा तक उपयोगिता है। उसको सर्वथा अस्वीकार नहीं किया जा सकता, पर वह धर्म का मुख्य पक्ष नहीं है। मुख्य पक्ष यह है कि व्यक्ति सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, संयम, सात्विकता, मैत्री, संतोष आदि तत्वों को जीवन में संजोए।

धर्म क्यों ?

व्यक्ति इस बात पर अपना ध्यान केन्द्रित करे कि धर्म जीवन की शुद्धि के लिए है, उसके विकास के लिए है। अतः उसका इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपयोग हो। धर्म के नाम पर अनर्थ करना, स्वार्थ साधना और

धर्म को सही समझें, सही जीएं

१६३

शोषण को प्रश्रय देना भयंकर विडम्बना है। स्पष्ट शब्दों में अपने-आपको धोखा देना है। धर्मस्थान में तन्मयता से पूजा और उपासना करने वाला व्यक्ति जब घर, दुकान और ऑफिस में अनैतिक, भ्रष्ट और कूर व्यवहार करता देखा जाता है तो सहसा मन में प्रश्न जागता है, क्या धर्म ने उसकी आत्मा को छुआ भी है ?

अणुव्रत आंदोलन वैदिक, जैन, बौद्ध आदि सभी धार्मिक परम्पराओं के आचार-शुद्धिमूलक आदर्शों से संगत अभियान है। विभिन्न उपासनाओं में विश्वास रखने वाले धार्मिक लोगों को सदाचार के माध्यम से एक मंच पर लाने का उपक्रम है। मैं चाहता हूँ, काशी नगरी के विद्वान् एवं सामान्य नागरिक इस आंदोलन के दर्शन को गहराई से समझें और इसके छोटे-छोटे व्रतों को स्वीकार कर इस अभियान में सक्रिय रूप में सहयोगी बनें।

### भारतीय संस्कृति का स्वागत

मैं बहुत दिनों से सोचता था कि काशी जाऊँ। काशी जहाँ वैदिक एवं बौद्ध संस्कृति की पुण्य-स्थली है, वही जैन परंपरा को तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की जन्म-स्थली भी है। जानाराधना एवं साहित्य-साधना का यह एक भारत-प्रसिद्ध केन्द्र रहा है। ऐसे नगर में आकर मुझे सात्विक प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है।

आप लोगों ने मेरा स्वागत किया। मेरे प्रति आदर और सद्भावना व्यक्त की। पर मैं ऐसा समझता हूँ कि यह स्वागत, अभिनंदन और आदर वस्तुतः मेरा नहीं, अपितु अध्यात्म का है, त्याग-संयममूलक भारतीय संस्कृति का है। मैं तो मात्र निमित्त हूँ। मेरे स्वागत के निमित्त अध्यात्म और भारतीय संस्कृति के प्रति आपकी आस्था को अभिव्यक्ति मिली है। जब तक अध्यात्म, त्याग एवं संयममूलक संस्कृति के प्रति यह निष्ठा भारतीय लोगों में बनी हुई है, तब तक साधु-संतों का अभिनन्दन-स्वागत होता रहेगा। उनको आदर-सत्कार मिलता रहेगा। ध्यान रहे, अध्यात्म और त्याग-संयममूलक यह संस्कृति ही भारतवर्ष का प्राणतत्व है। इस प्राणतत्व को सुरक्षित रखकर ही भारतवर्ष अपने गौरव को सुरक्षित रख सकता है।

काशी

१८ दिसम्बर १९५८

## जरूरी है ज्ञान और आचार का समन्वय

भारतीय संस्कृति संसार की एक महान् संस्कृति है। इस संस्कृति की कुछ दुर्लभ विशेषताएं हैं। इसमें उस ज्ञान को श्रेष्ठ नहीं माना गया, जो आचारशून्य है। वस्तुतः ज्ञान की चरम परिणति आचार ही है। ज्ञान अथवा विद्या का मूलभूत लक्ष्य यही है कि व्यक्ति आचारनिष्ठ और संयम-निष्ठ बने। यदि व्यक्ति के सामने यह लक्ष्य नहीं है तो विद्या उसके लिए भारभूत है।

**ज्ञ प्रज्ञा : प्रत्याख्यान प्रज्ञा**

भारतीय संस्कृति में अक्षरज्ञ बन जाना, बहुत-सारे ग्रन्थ पढ़ लेना ही विद्वान् की अर्हता नहीं मानी गई है। यहां विद्वान् उसे माना गया है, जिसने जानने के पश्चात् समग्र दुष्कर्मों का प्रत्याख्यान कर दिया है। शास्त्रों में प्रज्ञा के दो भेद बताए गए हैं—ज्ञ प्रज्ञा और प्रत्याख्यान प्रज्ञा। ज्ञ प्रज्ञा का आशय तत्व को जानने से है। प्रत्याख्यान प्रज्ञा का आशय असत् की निवृत्ति से है। सीधे शब्दों में हेय और उपादेय दोनों को जानने के बाद हेय को छोड़ देना प्रत्याख्यान प्रज्ञा है। हेय को त्यागने के साथ उपादेय को ग्रहण करने की बात तो सहजरूप से जुड़ी हुई है। सार-संक्षेप यही कि ज्ञान की आचारात्मक परिणति नितांत आवश्यक है।

**सा विद्या या विमुक्तये**

वैदिक परम्परा में कहा गया—‘सा विद्या या विमुक्तये’। अर्थात् विद्या वही है, जो विमुक्ति की ओर ले जाए। जीवन को बन्धन-मुक्त बनाए। यह उद्घोष भी प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से विद्या की आचारात्मक परिणति की ओर ही इंगित करता है। आप चिंतनशील हैं, इसलिए स्वयं समझ सकते हैं कि विमुक्ति की ओर कौन ले जा सकता है? जीवन को बन्धन-मुक्त कौन बना सकता है? मैं पूछना चाहता हूं, क्या कभी कोई आचारहीन व्यक्ति बन्धनमुक्त बना है? स्पष्ट है, नहीं बना है। तब यह भी बिल्कुल स्पष्ट है कि आचार ही व्यक्ति को विद्या के परम लक्ष्य—विमुक्ति तक पहुंच सकता है। जीवन को बन्धन-मुक्त अवस्था का शिखर दिखा सकता है।

जरूरी है ज्ञान और आचार का समन्वय

१६५

## ज्ञान की सार्थकता

मेरे इस कथन का तात्पर्य यह नहीं कि मैं ज्ञान को सर्वथा अनुपयोगी मानता हूँ। ज्ञान को अनुपयोगी मानने का कोई प्रश्न ही नहीं है। ज्ञान ही नहीं होगा तो व्यक्ति अच्छाई और बुराई को समझेगा ही कैसे। कैसे वह उनका विवेक कर सकेगा। ऐसी स्थिति में उसका आचार भी सम्यक् कैसे बन सकेगा। पर ज्ञान केवल जानने-समझने तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। वह उसके हर व्यवहार और आचरण में प्रतिबिम्बित होना चाहिए। तभी ज्ञान की सही सार्थकता प्रकट हो पाती है।

निष्कर्ष यह कि जीवन-जागरण के लिए ज्ञान और आचार का समन्वय नितांत अपेक्षित है। अणुव्रत आंदोलन इसी दर्शन पर आधारित स्वस्थ समाज-निर्माण का एक अभियान है। इसके पास डंडे या कानून का बल नहीं है। यह तो व्यक्ति-व्यक्ति के मन में ग्लानि का भाव पैदा कर उसे बुराइयों से मुक्त करना चाहता है। उसकी नैतिक एवं चारित्रिक चेतना को भ्रूणित करना चाहता है, जागृत करना चाहता है। उसके नैतिक बनने का मार्ग प्रशस्त करता है। सदाचारी बनने का पथ आलोकित करता है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी

१९ दिसम्बर १९५८

## दर्शन और संस्कृति

**स्याद्वाद : सत्य के उद्घाटन की दिशा**

जैन दर्शन भारतीय दर्शनों में एक प्रमुख दर्शन है। यह आत्मकर्तृत्ववादी दर्शन है। स्याद्वाद इस दर्शन की एक महान् देन है। यह मानव को सभी स्तर के विवादों और वितण्डावादों से मुक्तकर उसके लिए व्यापक चिन्तन की दिशा उद्घाटित करता है। स्याद्वाद से अनेकान्त दृष्टि का जन्म होता है। अनेकान्त दृष्टि सत्य से साक्षात्कार करने का सफलतम अभिक्रम है। आप इस बात को समझें कि सत्य को उपलब्ध होने के लिए व्यक्ति को विविध अपेक्षाओं से सोचना आवश्यक होता है। यह आनेकान्तिक दृष्टिकोण का ही परिणाम है कि जैन दार्शनिकों ने चार्वाक दर्शन तक को विभिन्न दर्शनों की शृंखला में स्वीकार किया है, जबकि अन्यान्य दार्शनिकों ने नास्तिक कहकर उसे दर्शनों की श्रेणी में कोई स्थान नहीं दिया। इस संदर्भ में जैन दार्शनिकों का चिंतन रहा कि वह भी एक दृष्टि है, एक विचार है। वर्तमान जीवन के बारे में सोचने की उसकी भी अपनी अपेक्षाएं और मान्यताएं हैं।

**जैन संस्कृति की विशिष्टता**

संस्कृति के पीछे अलग-अलग विशेषण लगाए जाने की परंपरा रही है। पर सिद्धांततः मैं उसका कोई विभाजन नहीं करता। मेरी दृष्टि में संस्कृति के पीछे 'सत्' और 'असत्' ये दो ही विशेषण पर्याप्त हैं। क्यों? इसलिए कि संस्कार या तो अच्छे होंगे या होंगे बुरे। इनसे भिन्न तीसरा कोई विभाजन उनमें हो नहीं सकता और उसकी जरूरत भी नहीं है। फिर भी जिस परंपरा के द्रष्टाओं ने संस्कारों के सृजन और विकास की पद्धति सुझाई, उनके नाम का विशेषण बिना किसी आयास के वहां जुड़ ही जाता है। इस अपेक्षा से जैन तीर्थंकरों, आचार्यों द्वारा बताई गई जीवन-विकास की पद्धति जैन-संस्कृति के नाम से पहचानी जाती है।

जैन संस्कृति समतामूलक संस्कृति है, पुरुषार्थप्रधान संस्कृति है। अहिंसा, ब्रह्मचर्य, सत्य आदि श्रेयस्मूलक आदर्शों को यहां परिस्थिति के कारण नीचा नहीं लाया गया, अपितु उन्हें अपने मूल स्वरूप में अक्षुण्ण एवं

स्थिर रखा गया। गहराई से देखा जाए तो यह संस्कृति आत्मा के संस्करण एवं परिमार्जन की संस्कृति है, आत्म से परमात्मा बनने की संस्कृति है। यही कारण है कि यह जातिवाद और वर्णवाद के संकीर्ण दायरों में नहीं बंधी। इसने स्पष्ट उद्घोषणा की कि जातिवाद अतात्विक है। वर्णवाद व्यक्ति के ऊँच-नीच की कसौटी नहीं है। व्यक्ति अपने कर्म से ही महान् और हीन होता है। वास्तव में इसके आदर्श मानवीय आदर्श हैं और वे शाश्वत सत्य के प्रतीक हैं।

जैन दर्शन एवं संस्कृति ने जीवन के अन्तर्तम को छुआ है। हजारों वर्षों के पश्चात् भी जन-मानस में उसके प्रति एक आकर्षण का भाव बहुत स्पष्टतया देखा जा सकता है। बौद्धिक एवं वैज्ञानिक लोग इसके प्रति विशेष रूप से आकर्षित होते हैं। इससे इसके सिद्धान्तों, मान्यताओं, स्थापनाओं एवं आदर्शों की बुद्धिगम्यता, यथार्थपरकता, तर्कसंगतता और वैज्ञानिकता स्वयंसिद्ध है। पर इसके उपरांत भी इसका जितना फँलाव होना चाहिए था, उतना नहीं हुआ। इसके अनेक कारण हो सकते हैं, पर मेरी दृष्टि में सबसे बड़े कारण स्वयं जैन लोग ही हैं। उन्होंने इस दिशा में कभी कोई सलक्ष्य प्रयास ही नहीं किया। मेरा चिन्तन है, अब भी यदि सुनियोजित ढंग से प्रचार-प्रसार हो तो यह दर्शन एवं संस्कृति बहुत विस्तार पा सकती है।

स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी  
२० दिसम्बर १९५८



## विद्यार्जन का उद्देश्य

सच्चा धार्मिक कौन ?

धर्म जीवन की पवित्रता का एकमात्र साधन है। पर वह जीवन की पवित्रता का साधन तब बनता है, जब उसकी सम्यक् आराधना की जाए, उसके आदर्शों को जीवन में ढालने का प्रयत्न किया जाए। आज के धार्मिकों की स्थिति देखकर ऐसा नहीं लगता कि वे उसकी सम्यक् आराधना कर रहे हैं। लोगों के व्यवहार और आचरण को देखकर तो बहुधा प्रश्न पैदा होता है कि धर्म उनके अन्तर को छुपा भी है ? धर्मस्थान में जाकर भले वे प्रह्लाद से भी अधिक भक्ति और धार्मिकता का प्रदर्शन करते हैं, पर घर, दुकान और दफ्तर में तो हिरण्यकश्यप से भी अधिक क्रूर और निर्दयी बने रहते हैं। आप ही बताएं, क्या एक धर्म का सच्चा आराधक कभी क्रूर और निर्दयी बन सकता है ? ग्राहकों को धोखा दे सकता है ? कालाबाजारी और कम तोल-माप कर सकता है ? रिश्वत ले सकता है ? हत्या, बलात्कार और डकैती जैसे दुष्कर्म कर सकता है ? स्पष्ट है, इन सब प्रश्नों का उत्तर नकारात्मक है। यह स्थिति इसी बात की संसूचना है कि धर्म लोगों के जीवन-व्यवहार में नहीं उतरा है, आचरण का हिस्सा नहीं बना है। उसे मात्र मुखौटे के रूप में स्वीकार किया गया है। जब तक यह स्थिति नहीं बदलती, व्यक्ति धर्म के सिद्धान्तों को जीवन-व्यवहार के धरातल पर नहीं उतारता, तब तक वह धार्मिक कहलाने का सच्चा अधिकारी नहीं बन सकता।

शिक्षा जीवन विकास के लिए है

आज पैसा, जीवन पर छाता जा रहा है। पैसे के इस बढ़ते प्रभाव के कारण बहुत-सारी बुराइयां समाज में पनप रही हैं। थोड़े-से पैसों के लिए व्यक्ति हेय-से-हेय, अकरणीय-से-अकरणीय कार्य करने में भी संकोच नहीं करता। और तो क्या, शिक्षा का क्षेत्र भी अर्थ के अनपेक्षित प्रभाव से अछूता नहीं रहा है। स्थिति यहां तक बनी है कि विद्यार्जन का उद्देश्य अर्थार्जन ही समझा जाने लगा है, जबकि विद्यार्जन का उद्देश्य जीवन-विकास और आत्म-जागरण है। यह उद्देश्य सबके सामने स्पष्ट होता तो शिक्षा-जगत्

विद्यार्जन का उद्देश्य

१६९

में धांधली और अव्यवस्था को कोई स्थान नहीं मिलता ।

## जीवन-विकास की प्रक्रिया

जीवन-विकास के लिए दर्शन, ज्ञान और चरित्र के सम्यक् योग को आवश्यक माना गया है । दर्शन का तत्पर्य श्रद्धा है । सबसे पहले व्यक्ति की श्रद्धा सम्यक् होनी चाहिए । सम्यक् श्रद्धा से सम्पन्न व्यक्ति ही सम्यक् ज्ञान को प्राप्त कर सकता है । ध्यान रहे, सम्यक् ज्ञान ही वह तत्व है, जो व्यक्ति को अभ्युदय की ओर ले जाता है । सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान के सहारे पनपने वाला चरित्र ही स्वस्थ जीवन का प्रतीक है । विद्यार्थीजन इन तीनों तत्वों को अपनाकर अपने जीवन-विकास का मार्ग प्रशस्त करेंगे, ऐसी आशा करता हूँ । उनका यह जीवन-विकास समाज-विकास में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से निर्णायक भूमिका निभाएगा ।

## निर्माण की बेला

विद्यार्थी-जीवन निर्माण की बेला है । प्रत्येक विद्यार्थी को चाहिए कि वह इस स्वर्णम अवसर का अधिक-से-अधिक सदुपयोग करता हुआ विकास के मार्ग पर अग्रसर हो । अणुव्रत आंदोलन के अन्तर्गत विद्यार्थी-वर्ग के लिए कुछ नियम हैं । उन नियमों को स्वीकार कर आत्मसाक्षी से पालन करना विद्यार्थियों की इस यात्रा में पाथेय का काम करेगा । क्या विद्यार्थी इस पाथेय को प्राप्त नहीं करेंगे ? अवश्य करेंगे, ऐसा विश्वास करता हूँ ।

काशी विद्यापीठ, काशी

२१ दिसम्बर १९५८

## शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य

शिक्षा क्यों ?

विद्यार्थियो ! क्या आपने इस बिन्दु पर कभी गंभीरतापूर्वक चिन्तन-मनन किया कि शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य क्या है ? यदि आपने पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त कर लेना, उपाधियां हासिल करना ही शिक्षा का उद्देश्य समझा है तो आप निरी भ्रांति में हैं । आप पूछेंगे, फिर शिक्षा का और क्या उद्देश्य हो सकता है ? मेरी दृष्टि में शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य है—जीवन का निर्माण । यदि वर्षों की शिक्षा के पश्चात् भी इस लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती है तो दूसरी-दूसरी पचास प्राप्तियों के बावजूद भी उसकी सार्थकता प्रगट नहीं होती ।

जीवन-निर्माण का स्वरूप

पूछा जा सकता सकता है, जीवन के निर्माण से क्या तात्पर्य है ? जीवन-निर्माण से मेरा तात्पर्य यह है कि जीवन में विद्या के साथ विनय, विवेक, चारित्र आदि सद्गुणों का साहचर्य हो । निरे रूखे तर्कवाद में पड़कर श्रेयस् का साक्षात्कार नहीं किया जा सकता । सत् के प्रति आपके मन में अटूट श्रद्धा का भाव होना आवश्यक है । ख्याल रहे, श्रद्धा आत्म-विकास का पुष्ट आधार है ।

जीवन-निर्माण के लिए विद्या का संयम से संयुत होना अपेक्षित है । आज की शिक्षा-पद्धति इस ओर आंखें मूंदे हुए है । इसी का यह दुष्परिणाम है कि छात्र-जगत् में उच्छृंखलता और आचारहीनता व्यापक रूप में परिव्याप्त हो रही है । सचमुच इसके कारण शिक्षा-क्षेत्र तरह-तरह के अवांछनीय संघर्ष का अड्डा बन रहा है । यह कोई एक-दो शिक्षणपीठों की बात नहीं है, बल्कि व्यापक रूप में यह स्थिति निर्मित हो रही है । मैं ऐसा नहीं कहता कि संघर्ष की स्थिति के निर्माण में एकान्ततः विद्यार्थियों का ही दोष होता है । अध्यापक और व्यवस्थापक भी उसमें कारण हो सकते हैं । भले कोई भी कारण क्यों न हो, पर इतना तो सुनिश्चित है कि शिक्षण संस्थाओं में ऐसी स्थिति भारत की संस्कृति एवं गौरव के अनुकूल नहीं है । विद्यार्थी, अध्यापक और व्यवस्थापक

शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य

१७१

तीनों ही वर्गों को इस बिन्दु पर गंभीरता से चिन्तन करना चाहिए ।

**विद्यार्थी : सबसे मूल्यवान् संपत्ति**

यह एक सर्व-विदित तथ्य है कि आज के विद्यार्थी आने वाले युग के कर्णधार और नेता हैं । इस अपेक्षा से विद्यार्थी-वर्ग राष्ट्र की सबसे मूल्यवान् संपत्ति है । इसकी सुरक्षा राष्ट्र की संस्कृति की सुरक्षा है । राष्ट्र के वर्तमान कर्णधारों को सोचना है कि इस सर्वाधिक मूल्यवान् संपत्ति की कितनी सुरक्षा हो रही है ? इस सन्दर्भ में विद्यार्थियों से कहना चाहता हूँ कि वे भी अपने विद्यार्थी-काल का सही-सही मूल्यांकन करें । वे अपने-आपको अनुशासनप्रिय एवं सदाचारी बनाएं । भारतीय संस्कृति में अविनीत को विद्या का अपात्र माना गया है । विनय ही व्यक्ति को सही अर्थ में पात्रता प्रदान करता है । अविनीत के पास प्रथम तो विद्या आती नहीं, कदाचित् आ भी जाती है तो वह उसके लिए हितकर नहीं होती । वह उससे लाभ के स्थान पर नुकसान ही उठाता है । अपेक्षा है, विद्यार्थी एवं प्राध्यापक इन बातों को हृदयंगम कर एक ऐसे वातावरण का निर्माण करेंगे, जिससे शिक्षा व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के लिए वरदायी बन सके ।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी

२३ दिसम्बर १९५८

## व्रत : भारतीय संस्कृति का प्राणतत्व

### सुखमय जीवन का आधार

‘व्रत’ सुखमय जीवन की बुनियाद है। जिस प्रकार बुनियाद के बिना भवन खड़ा नहीं हो सकता, उसी प्रकार व्रत के बिना सुखमय जीवन का भवन खड़ा नहीं हो सकता। व्रत का अर्थ है—असद् से विरति, असंयम से संयम की ओर प्रस्थान। यद्यपि व्रत का मूल्य सभी समान रूप से प्रतिपादित करते हैं, तथापि भारतीय संस्कृति में इस तत्त्व को विशेष महत्त्व दिया गया है। यही कारण है कि यहां के वासियों में व्रत-भंग का जितना भय रहता है, उतना किसी भी बड़े-से-बड़े कानून और सामाजिक प्रतिबंध का भी नहीं रहता। अतः व्रत-ग्रहण करते समय व्यक्ति बहुत सोचता-विचारता है, अपनी शक्ति, सामर्थ्य और श्रद्धा को तोलता है। मैं मानता हूं, व्रत की यह प्रतिष्ठा भारतीय संस्कृति का प्राण है। जब तक व्रत का मूल्य और प्रतिष्ठा जीवित है, तब तक इस संस्कृति को कोई मिटा नहीं सकता। अणुव्रत आन्दोलन ‘व्रत’ को जनव्यापी बनाने का ही कार्यक्रम है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह आदि व्रतों के आधार पर कुछ ऐसे नियम तैयार किए गए हैं, जो व्यक्ति की संयम-चेतना को जागृत करते हैं, जन-जीवन में व्याप्त बुराइयों को निरस्त करते हैं।

### अणुव्रत आंदोलन सार्वजनीन है

आप लोग देखते हैं, राष्ट्र के विकास के लिए विभिन्न स्तरों पर योजनाएं बनने का सिलसिला चल रहा है। पर ईमानदार, प्रामाणिक, नीतिनिष्ठ, सत्यनिष्ठ व्यक्तियों के अभाव में उनमें से अधिकांशतः कागजी कार्रवाई तक ही सीमित रह जाती हैं, क्रियान्विति के स्तर तक नहीं पहुंचतीं। अणुव्रत आन्दोलन जन-जन में ईमानदारी, प्रामाणिकता, नीतिनिष्ठा, सत्यनिष्ठा जागृत करने का आन्दोलन है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसका द्वार सभी के लिए समान रूप से खुला है। किसी भी जाति, वर्ग, वर्ण, सम्प्रदाय, प्रान्त, भाषा से सम्बन्धित व्यक्ति इसके साथ जुड़ सकता है। जो भी लोग स्वस्थ समाज और उन्नत राष्ट्र का स्वप्न देखते हैं, उनको मैं

आह्वान करता हूँ कि वे इस आन्दोलन की दार्शनिक पृष्ठभूमि को गहराई से समझें और समझकर भावना व आचरण के स्तर पर इसके साथ जुड़ें। इसे अपना नैतिक समर्थन देने के लिए कृतसंकल्प बनें। इसके सतत विकाशशील प्रसार में अपने जीवन-क्षणों को सार्थक बनाएं। उनका यह प्रस्थान इस आन्दोलन को एक नई ताकत देगा। समाज और राष्ट्र की यह एक बहुत बड़ी सेवा होगी।

वाराणसी:

२३ दिसम्बर १९५८

## धर्म का यथाथ स्वरूप प्रकट हो

मैं वर्षों से इस बात को अनुभव कर रहा हूँ कि आज के बुद्धिवादी वर्ग को धर्म के नाम से एक चिढ़-सी है। धर्म में उसे कोई रस नहीं है, बल्कि वह उससे नफरत करता है, उसे दकियानूसी विचार और अफीम की गोली तक करार देता है। यह मात्र मेरी ही अनुभूति नहीं है, अपितु बहुत-सारे लोग ऐसा ही अनुभव कर रहे हैं। दूसरों की बात मैं क्यों करूँ, आपमें से भी बहुत-सारे ऐसी ही अनुभूति करते होंगे।

नफरत क्यों ?

प्रश्न है, बुद्धिवादी-वर्ग को उसमें रस क्यों नहीं है ? वह उससे नफरत क्यों करता है ? बहुत-सारे लोगों का अभिमत है कि आधुनिक शिक्षा, विज्ञान एवं भौतिक प्रगति इसका कारण है। पर मेरा अभिमत इस संदर्भ में यह है कि अलबत्ता यह एक कारण तो हो सकता है, पर प्रमुख कारण नहीं है। आप पूछेंगे, फिर प्रमुख कारण क्या है ? मेरी दृष्टि में इसको प्रमुखतम कारण वे तथाकथित धार्मिक हैं, जिन्होंने धर्म को रूढ़ि, बाह्याचार, दंभ और स्वार्थ-साधन के रूप में प्रयुक्त किया। इसका दुष्परिणाम यह आया है कि धर्म का वास्तविक सत्य स्वरूप कहीं नीचे दब गया है और उसके नाम पर अधर्म उभरने लगा है। ऐसी स्थिति में भला बुद्धिवादी वर्ग की श्रद्धा उस पर टिक भी कैसे सकती है।

धर्म का सही स्वरूप

आज सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि धर्म के सही स्वरूप को जन-जन के समक्ष रखा जाए। इस संदर्भ में एक बात स्पष्ट कर दूँ। धर्म से मेरा आशय किसी सम्प्रदायविशेष से नहीं है, बल्कि सच्चरित्रमूलक मौलिक आदर्शों से है। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, सत्य आदि शाश्वत तत्वों से है। आज देश में लाखों साधु-संन्यासी हैं, हजारों धर्म-संस्थान हैं। पर कौसी विडंबना है कि धर्म का यह सही स्वरूप जनता के सामने नहीं आ रहा है। मैं मानता हूँ, उन पर यह उत्तरदायित्व है कि वे व्यापक दृष्टिकोण के साथ धर्म के सही

धर्म का यथार्थ स्वरूप प्रकट हो

स्वरूप को लोगों के सामने रखें। इस बात को पलट कर इस शब्दावली में भी कहा जा सकता है कि व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के चारित्रिक एवं नैतिक धरातल को ऊंचा उठाने की उन पर एक गुरुतर जिम्मेवारी है और इस जिम्मेवारी को वे धर्म के सही स्वरूप को जन-जन में प्रचारित-प्रसारित करके ही अच्छे ढंग से निभा सकते हैं।

### अणुव्रत आंदोलन का अभिप्रेत

अणुव्रत आंदोलन जन-जन के चारित्रिक एवं नैतिक जागरण का पवित्र उद्देश्य लेकर चलनेवाला एक व्यापक अभियान है। धर्म के सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह आदि उन मौलिक तत्वों का इसमें समावेश किया गया है, जो जैन, बौद्ध, वैदिक, मुसलमान... सबको समान रूप से मान्य हैं। इसका तीव्र प्रयत्न है कि धर्मग्रंथों एवं धर्मपंथों के जीवननिर्माणकारी तत्वों को जन-जीवनव्यापी बनाया जाए। इसकी बड़ी विशेषता यह है कि जाति, वर्ण, वर्ग, लिंग, रंग, सम्प्रदाय आदि सभी प्रकार की सीमाओं से अतीत है। जीवन-शुद्धि या आत्म-पवित्रता में विश्वास रखनेवाला कोई भी व्यक्ति अणुव्रती बनने का अधिकारी है, भले वह किसी भी जाति, वर्ण, वर्ग सम्प्रदाय से संबंधित क्यों न हो। आशा और अपेक्षा करता हूँ कि आप लोग अणुव्रत आंदोलन के दर्शन एवं उद्देश्य को हृदयंगमकर संकल्पबद्ध अणुव्रती बनेंगे। स्वस्थ समाज-निर्माण की दिशा में आपकी यह एक शुभ शुरुआत होगी।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

२३ दिसम्बर १९५८



## सबसे पहली अपेक्षा

सन् १९४७ में भारतवर्ष आजाद हुआ। तब से उसके विकास की विभिन्न योजनाएं बनती रही हैं। आज भी बन रही हैं। पर यह बात दिन के उजाले की तरह बिलकुल स्पष्ट है कि उनका अपेक्षित परिणाम सामने नहीं आ रहा है। इसका क्या कारण है? कारण बहुत स्पष्ट है। आज राष्ट्र में चारों ओर भ्रष्टाचार का बोलबाला है। चोरबाजारी, कम तोल-माप, मिलावट, रिश्वतखोरी, असत्याचरण, विश्वासघात जैसी अनेक दुष्प्रवृत्तियां जन-मानस पर इस प्रकार हावी हो रही हैं कि मनुष्य को मनुष्य कहने में भी संकोच का अनुभव होता है। जब मनुष्य अपने मानवीय एवं नैतिक धरातल को भी सुरक्षित नहीं रख पाता है, तब कोई भी अच्छी-से-अच्छी योजना भी सफल कैसे हो सकेगी। आखिर किसी भी योजना की सफलता-असफलता उसी पर तो निर्भर करती है। इसलिए आज की सबसे पहली अपेक्षा यह है कि हम अन्य सभी बातों को गौण कर मनुष्य को सही मनुष्य बनाने की योजना को कार्यरूप दें। उसके जीवन को सत्यनिष्ठा, प्रामाणिकता, चरित्र-निष्ठा, सदाचार जैसे तत्वों से भावित करने का अभियान चलाएं। अणुव्रत आंदोलन एक ऐसी ही योजना है, जो जन-जन को मानवीय धरातल प्रदान करती है। दूसरे शब्दों में अणुव्रत आंदोलन अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह आदि पर आधारित छोटे-छोटे नियमों की एक ऐसी संकलना है, जो व्यक्ति को दुष्प्रवृत्तियों से दूर रखती हुई सदाचार के सांचे में ढालती है। उसके लिए पवित्र, नैतिक एवं प्रामाणिक जीवन जीने का मार्ग प्रशस्त करती है। मैं मानता हूं, जब तक यह योजना जन-जन में व्यापक रूप में नहीं फैलेगी, लोग इसे अपने जीवन का अंग नहीं बनाएंगे, तब तक कितनी भी योजनाएं क्यों न बन जाएं, राष्ट्र का सही विकास नहीं हो सकेगा। आप लोग भी इस आंदोलन को समर्थें और इसकी आचार-संहिता को स्वीकार करें। निश्चय ही आप सच्चे मानव बनने का गौरव प्राप्त कर सकेंगे।

फतुल्लापुर

२७ दिसम्बर १९५८

सबसे पहली अपेक्षा

१७७

## मानव मानव बने

प्राथमिकता किसको ?

आज निर्माण का युग है। चारों ओर निर्माण की चर्चा है। प्रश्न है, निर्माण के क्षेत्र में हम प्राथमिकता किसे दें ? क्या बड़े-बड़े कारखानों के निर्माण को प्राथमिकता दी जाए ? क्या बड़ी-बड़ी सड़कों, पुलों और मकानों के निर्माण को प्राथमिकता दी जाए ? इस शृंखला में और भी बहुत सारी प्राथमिकताएं गिनाई जा सकती हैं। पर मेरी दृष्टि में सबसे प्राथमिक और आवश्यक निर्माण-कार्य मनुष्य का निर्माण करना है, मानवता का निर्माण करना है। आप देख रहे हैं कि आज मानव अपने मानवीय गुणों को किस प्रकार भूलता जा रहा है। उस पर दानवता सवार हो रही है। क्या नेता, क्या कर्मचारी, क्या व्यापारी, क्या कार्यकर्ता, क्या अध्यापक, क्या विद्यार्थी सबका जीवन अनैतिक और सदाचारशून्य बन रहा है। अहिंसा, सत्य आदि तत्त्वों को अनदेखा किया जा रहा है। विचार और आचार के बीच एक बड़ी खाई बन गई है। इस परिस्थिति में मानवता खण्ड-खण्ड हो रही है। इसलिए मैंने कहा कि मानव और मानवता के निर्माण को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

साधु-सन्त आगे आएँ

मानव और मानवता के निर्माण का यह कार्य आज युद्धस्तर पर चलाए जाने की जरूरत है। प्रश्न है, यह कार्य कौन करे ? निश्चय ही हर कोई यह कार्य नहीं कर सकता। यह निर्माण-कार्य वही कर सकता है, जो स्वयं इस दृष्टि से निर्मित है। इस अपेक्षा से साधु-संत यह जिम्मेवारी बहुत अच्छे ढंग से निभा सकते हैं। वे सदाचार की साक्षात् प्रतिमा होते हैं, जन-जन के लिए सदाचार की प्रेरणा भी बनते हैं। उनकी बात बहुत सहजतया लोगों के मन को प्रभावित करती है। इसलिए मैं राष्ट्र के साधु-संतों को कहना चाहता हूँ कि वे इस निर्माण-कार्य को प्राथमिकता से करें। कल्पना की ऊंची-ऊंची उड़ान भरने की अपेक्षा मानव को मानव बनने का संदेश दें। भगवान, स्वर्ग, नरक, पुण्य जैसी गूढ़ बातों की दार्शनिक व्याख्या में उलझने के स्थान पर मानवता का पथ प्रशस्त करें।

अणुव्रत आन्दोलन मानव को मानव बनाने का एक विनम्र प्रयत्न है । मानवता के पुनर्निमाण एवं पुनःप्रतिष्ठा का पवित्र संकल्प है । विचार और आचार की खाई को पाटने का अभिक्रम है । इस कार्यक्रम को जितना अधिक जन-समर्थन मिलेगा, मानव को अच्छा मानव बनाने का कार्य उतना ही तीव्र गति से आगे बढ़ सकेगा । मानवता की पुनःप्रतिष्ठा का संकल्प उतना ही जल्दी फलीभूत हो सकेगा ।

गाजीपुर

२८ दिसम्बर १९५८

## संयममय जीवन हो\*

### ऐतिहासिक एवं स्वर्णिम दिन

आज २९ दिसम्बर का दिन है। भारतीय दृष्टि से आज पौष कृष्णा पंचमी का दिन है। मेरे लिए पौष कृष्णा पंचमी का दिन ऐतिहासिक तो है ही, स्वर्णिम भी है। आज से तैंतीस वर्ष पूर्व विक्रम संवत् १९८२ को इसी दिन मेरी जन्मभूमि—लाडनूं में प्रातः सूर्योदय के साथ ही पूज्यवर गुरुचरण कालूगणी के पावन करकमलों से मेरा दीक्षा-संस्कार संपन्न हुआ। दीक्षा-संस्कार की संपन्नता के साथ ही मेरा दूसरा जन्म हो गया, मेरे जीवन की सम्पूर्ण धारा ही बदल गई। दीक्षा संपन्नकर पूज्य गुरुदेव ने लाडनूं से सुजानगढ़ के लिए विहार कर दिया। दीक्षा के साथ शुरू हुआ यह पाद-विहार का क्रम अब तक सतत चल रहा है। इस अवधि में मैं हजारों-हजारों मील घूमा हूं, देश के विभिन्न प्रान्तों में धर्म का, मानवता का संदेश मैंने सुनाया है। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि इस कार्य में मेरा उत्साह सतत प्रवर्धमान रहा है।

### अणुव्रत सार्वजनीन धर्म है

धर्म और मानवता का यह संदेश मैं अणुव्रत आंदोलन के माध्यम से देता हूं। धर्म से आप किसी सम्प्रदायविशेष का अर्थ ग्रहण न करें। मैं जिस धर्म की बात कहता हूं, वह सम्प्रदायातीत धर्म की बात है, सार्वजनीन धर्म की बात है। मेरी दृष्टि में ऐसा धर्म ही व्यापक फैलाव पा सकता है, मानव-जाति का व्यापक हित साध सकता है। कुछ ही वर्षों में अणुव्रत आन्दोलन ने जो फैलाव पाया है, व्यापक जन-समर्थन प्राप्त किया है, वह इसी तथ्य को पुष्ट करता है।

### अणुव्रत आंदोलन का आधार

पूछा जा सकता है, अणुव्रत आंदोलन का आधार क्या है? अणुव्रत आन्दोलन का आधार है—व्रत। व्रत समुद्र की तरह अपार है। समुद्र को उठाकर उसके पानी का उपयोग कोई नहीं कर सकता। इसके लिए व्यक्ति

\* ३४वें दीक्षा-दिवस के अवसर पर प्रदत्त प्रवचन।

को उसके पानी की कोई सीमा करनी होगी और इसीलिए घड़े का उपयोग किया जाता है। घड़ा सीमाकरण का साधन है। ठीक यही बात व्रत की भी है। व्रत अपने आप में बहुत व्यापक तन्त्र है, परम कल्याण का तन्त्र है। पर उपयोग की दृष्टि से उसके दो विभाग किए जाते हैं। पहला महाव्रत और दूसरा अणुव्रत। महाव्रत में पूर्ण अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह आदि की बात आती है, जबकि अणुव्रत में इन्हीं तत्त्वों का आंशिक रूप होता है। महाव्रत स्वीकार करने की क्षमता हर कोई में नहीं होती, कोई-कोई व्यक्ति ही उसे स्वीकार कर सकता है। पर अणुव्रत के लिए ऐसी बात नहीं है। उसके व्रत कोई भी व्यक्ति बहुत सहजतया स्वीकार कर सकता है। पर छोटे-छोटे होने के बावजूद उन व्रतों में अद्भुत शक्ति है। वे व्यक्ति की संयम-चेतना को भ्रूणित कर उसे असत्प्रवृत्तियों से बचाते हैं। आज आप यहां वीर कुंवरसिंह की जयन्ती मना रहे हैं। उस आत्मा ने देश के लिए अपने जीवन का बलिदान किया था। क्या आप भी उस वीर पुरुष का अनुकरण करेंगे? पर आज आवश्यकता शहीद बनने की नहीं, अपितु देश के हित में बुराइयों को त्याग कर संयमी बनने की है। मैं आपको आह्वान करता हूँ कि आप अणुव्रत आन्दोलन से जुड़ें। यह व्यक्ति-व्यक्ति का संयममय जीवन जीने की उत्प्रेरणा देने का महत्त्वाकांक्षी कार्यक्रम है। इससे आपका स्वयं का जीवन तो निर्मित होगा ही होगा, राष्ट्र के नवनिर्माण में भी आप योगभूत बन सकेंगे।

बक्सर (शाहबाद)

३० दिसम्बर १९५८

## बन्दीगृह सुधारगृह बनें

### परिवर्तन की दिशा

आज मैं बन्दीगृह में आया हूँ। बन्दियों की स्थिति क्या है, किसी से छुपी नहीं है। उनसे बात करना तो बहुत दूर, लोग उनके बीच जाकर बैठना तक पाप समझते हैं। इससे भी आगे, बन्दीगृह से मुक्त हो जाने के पश्चात् भी उन्हें नौकरी एवं जीवन-यापन की आवश्यक सुविधाएं सहजतया उपलब्ध नहीं होतीं। पग-पग पर उन्हें अपमान की कड़वी घूंट भी पीनी पड़ती है। बन्दियों के मन में प्रश्न है, इस स्थिति में परिवर्तन कैसे आए ? मेरी दृष्टि में इस स्थिति में परिवर्तन का एक ही उपाय है और वह उपाय है—कैदी बन्दीगृह को कारावास न मानकर सुधारगृह या शिक्षालय समझकर अपने जीवन को सुधारने का प्रयास करें।

### हीनता और अहंकार से बचें

बन्दी लोगों को अपनी सोच में परिष्कार करने की अपेक्षा है। इंसान से भूल होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जान-अनजान में जब-तब उससे भूल हो जाती है। वह भविष्य में भूल की पुनरावृत्ति न होने के प्रति जागरूक तो बने, पर अपने-आपको हीन, दीन और क्षीण क्यों समझे ? वस्तुतः कोई भी मनुष्य अपने आपमें हीन-दीन-क्षीण नहीं होता, क्योंकि उसके मुंह एक और हाथ दो हैं। हीनता-दीनता-क्षीणता उसकी बुराइयां और दुष्प्रवृत्तियां हैं। जब वह बुराइयों से उपरत हो जाता है, दुष्प्रवृत्तियों को छोड़ देता है, तो उसका परमात्मस्वरूप प्रकट होने लगता है। हम गहराई से ध्यान दें तो अपने शुद्ध आत्मस्वरूप में मनुष्य परमात्मा ही है। पर ऐसा मानकर वह गर्वोन्मत्त भी न बने। गर्वोन्मत्त बनना भी हीन-दीन-क्षीण मानने की तरह अहितकर है, खतरनाक है। इसलिए बन्दी भाइयों को इन दोनों ही बातों से सलक्ष्य बचना चाहिए।

### आत्मालोचन की गंगा में स्नान करें

बन्दी भाई अपना आत्मालोचन करें—यह उनके लिए तीसरी आवश्यक बात है। यह कैसी विचित्र बात है कि व्यक्ति दूसरों की भूल और प्रमाद को

देखने के लिए सहस्राक्ष बन जाता है। राई-सी छोटी भूल को भी पहाड़ के रूप में देखता है। पर स्वयं की बड़ी-से-बड़ी भूल को भी नजर-अन्दाज कर देता है। प्राप्त दो आँखों को भी मूंद कर अंधेरा कर लेता है। मैं दृढ़ आत्म-विश्वास के साथ कहता हूँ, यदि बन्दी भाई ईमानदारी के साथ आत्मालोचन करेंगे तो उनके जीवन में एक अप्रत्याशित परिवर्तन घटित होगा, उनके जीवन का समूचा कायाकल्प ही हो जाएगा। ऐसी स्थिति में समाज के नजरिये में भी बदलाव की संभावना जनमेगी। आज जो समाज बन्दी लोगों को दूर-दूर रखना चाहता है, कल वही उन्हें अपनाने की मानसिकता में आ सकता है।

सूर्योदय हो सकता है

बन्दी भाई इस बात को हृदयंगम करें कि गंगा में जाकर स्नान करने से, भगवान की प्रतिमा पर फूल चढ़ाने से, मस्जिद में नमाज पढ़ने से..... पापप्रक्षालन नहीं होगा। सचमुच मन में पाप के प्रति घृणा है तो वे सरल हृदय से अपने अपराधों को मंजूर करें। इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि वे उन दुःप्रवृत्तियों को पुनः न दुहराने के लिए संकल्पबद्ध हों। यदि ऐसा होता है तो निश्चित ही उनके जीवन में फिर से सूर्योदय हो सकेगा।

सच्चा अधिकारी कौन ?

बन्दीगृह के अधिकारियों से भी एक बात कहना चाहता हूँ। वे भी अपना आत्मालोचन करें। कहीं उन्होंने रिश्वत तो नहीं ली ? प्राप्त अधिकारों का दुरुपयोग तो नहीं किया ? पक्षपातपूर्ण व्यवहार तो नहीं किया ? यदि नहीं किया तो ठीक, अन्यथा वे अधिकारी कहलाने के सच्चे अधिकारी नहीं हैं। ख्याल रहे, सच्चा अधिकारी वही है, जिसने अपने जीवन में कभी भी अपराध नहीं किया है।

बक्सर (शाहबाद)

३१ दिसम्बर १९५८





# परिशिष्ट



## शब्दानुक्रम/विषयानुक्रम

अ

अन्तर् चक्षु ८५, ८६  
 अणुबम ५७, ९३, ९७, १३५  
 अणुव्रत १५, १६, १३७, १८१  
 अणुव्रत आंदोलन ३, ४, १२, १४,  
 १७, २०, २१, २४, २७, ३०,  
 ३१, ३४, ३५, ३९, ४४, ५१,  
 ५५, ५७, ५८, ६२, ६६, ६८-  
 ७३, ७७, ७९, ८१, ८२, ८४,  
 ८६, ८८, ९०, ९३, ९४, ९९,  
 १००, १०२-१०४, ११०,  
 ११२-१५, १२६, १२९,  
 १३७-४०, १४९, १५१-  
 ५३, १५५, १५८, १६०,  
 १६२-६४, १६६, १७०,  
 १७३, १७४, १७६, १७७,  
 १७९-८१  
 अणुव्रत समाज-व्यवस्था १०३,  
 १०४  
 अणुव्रती १४०  
 अध्यात्म एवं नैतिक शिक्षा ११,  
 १२  
 अध्यापक ५, ६, ११४, ११५,  
 १७१, १७२  
 अनेकांत २२, ४७, १४५-१४७,

१५२, १६७, देखें -- स्याद्वाद  
 अपरिग्रह १४६, १४७  
 अर्थ ७४, ९३, १२०, १६९  
 असत्य ७६, ७७  
 असम्यक् आस्था (मिथ्या दृष्टि)  
 ४०, ४१, ४५, ४६, ५९, ६०,  
 ७६, ७८, ११६  
 असम्यक् श्रद्धा ४०, ४१  
 अस्तेय १०७, १०८  
 अहंकार ८३  
 अहिंसा १३, १४, ४४, ४७, ७६,  
 ७७, ९७, ९८, १०१-१०४  
 १४५, १४६, देखें—हिंसा

आ

आचार ६१, ८९, ९०, १६३,  
 १६५, १६६  
 आत्म-नियंत्रण देखें—संयम  
 आर्हती संस्कृति  
 देखें—जैन संस्कृति

उ

उद्जन बम ९३, १३५

ऋ

ऋषि-मुनि देखें—साधु-संत

क

कर्म (आचरण) ९६  
 कार्यकर्ता ८३, ८४, ९१, १००

ख  
 खमतखामणा १२७, १२८  
 च  
 चरित्र ८४, १०६, ११४, ११५  
 चार्वाक दर्शन १६७  
 छ  
 छात्रा १३६  
 ज  
 जनसेवक ६५, ८३, ८४  
 जातिवाद ९५, ९६, १६८  
 जीवन ५१, ५२, ५३, ५६, ५९,  
 ६०, ६३, ७१, ७४, ७५, ८०,  
 ८१, ९९, १००, १७०  
 जीवन-निर्माण १७०, १७१  
 जैन ८, १९, ४७-५०, १२७, १४७,  
 १६८  
 जैन एकता २३, ४७, ४८  
 जैन दर्शन २२, ४७, १६१, १६७,  
 १६८  
 जैन धर्म ४७, ४८  
 जैन शासन देखें—जैन धर्म  
 जैन संस्कृति ४७, ४९, ५०, १६२,  
 १६७, १६८  
 ज्ञ प्रज्ञा १६५  
 ज्ञान १८, ६०, ८४, १६५, १६६,  
 १७०  
 ज्ञानी ६१  
 त  
 तर्क ६  
 द  
 दीक्षा १५, १४१, १४२, १८०  
 दीन ७

१८८

दीपावली १४५-१४७

ध  
 धर्म १, १७, १८, ४२, ४४, ५४, ५५,  
 ७२, ७८, ७९, ९५, ११२,  
 १२४, १२६, १५१-५५,  
 १६३, १६४, १६९, १७५,  
 १७६, १८०  
 धर्म का स्वरूप १, २, १७, ४२,  
 ५४, ५५, ७१, ७२, ७८, ७९,  
 ११२, १२३, १२४, १२६,  
 १५१, १७५, १७६  
 धर्मगुरु देखें—साधु-संत  
 धार्मिक ४२, ४३, ९५, १६३,  
 १६९

न  
 नारी २८, २९, ९२, १४३, १४४  
 नेता ११९  
 नैतिकता १३५

प  
 परिस्थितिवाद ४  
 प्रतिज्ञा (संकल्प) ११०  
 प्रत्याख्यान प्रज्ञा १६५  
 प्रमाद १२२, ११३  
 प्राकृत १३२, १५८, १५९

ब  
 बंदीजन ८०, ८१, १८२, १८३  
 बौद्ध परंपरा १६१, १६२, १६४  
 बौद्ध संस्कृति  
 देखें—बौद्ध परंपरा  
 ब्रह्मचर्य ११८

भ  
 भारतीय ५२, ५४, १५८  
 भारतीय संस्कृति ३०, ३६, ५२,  
 ६१, १०५, १०९, १२५,

महंके अब मानव-मन

१३१, १३७, १४०, १६०,  
१६४, १६५, १७१, १७३  
भौतिकता १५६

म

मांसाहार २४  
मानव ८७, ८८, ९५, ११६, १२१,  
१२३, १५५, १७७-७९  
मानव-जीवन देखें—जीवन

र

राजनीति १३८, १३९  
राष्ट्रीय चरित्र ११०, १११, १३८

व

वर्णवाद ९६, १६८  
विद्वान् १५७, १६५  
विद्या ५, ६, ६१, १५७, १६५,  
१६९  
विद्यार्थी ५, १८, ६३, ६४, ११०,  
११४-११७, १३६, १५७,  
१७०-७२  
विनय १७२  
विश्व-शांति ९७, ९८  
व्यक्ति-सुधार ८९, ९०, १०३  
व्यापारी २६, २७, ४५, ४६, ६६,  
१२०-१२२, १२६  
व्रत १४०, १६०, १७३, १८०,  
१८१

श

शराव ३२, ३४, ११२, ११३,  
१३३  
शांति ९७-९९, १०७, १२७

शब्दानुक्रम/विषयानुक्रम

शिक्षा का उद्देश्य ११०, १३६,  
१५७, १६५, १६९-१७१  
शिक्षा-प्रणाली ५, ६, ११, १७१  
श्रद्धा ६

श्रमण संस्कृति १६१  
श्रमिक १३३, १३४

स

सम्प्रदाय २५, १५४  
संयम ३६, ३८, ५६, ५७, ९३, ९९,  
१००, १३७, १३८, १५५  
संस्कृत १३१, १३२, १५८, १५९  
सत्य ७६, ७७, १२३, १५२  
समन्वय १५०, १५६  
समाज-सुधार ३०, ३१, ८९, ९०,  
१०३, १०४  
सम्यक् श्रद्धा (सम्यक् दृष्टि)  
४५, ४६, ५९, ६०, ७६, ७८,  
९२, १७०  
सह-अस्तित्व ९८  
साम्प्रदायिकता २३  
साधु-संत ११९, १२५, १२६,  
१७५, १७६, १७८  
साहित्य ८२, १५८, १५९  
साहित्यकार ८२, १५८, १५९  
सुख-शांति १३, ३८, ३९, ५१,  
५६, ५७, १५५  
सुख ५६, ५७, ६०  
सुधार ६२  
सेवा ९, १०, ६५, ८३, ८४, ९०  
स्याद्वाद ८, १६७, देखें—  
अनेकांत  
स्वस्थ समाज-निर्माण १०२-  
१०४, १६६

१८९

ह  
हाइड्रोजन बम  
देखें—उद्जन बम  
हिंसा १, १३, ७६, ९७, ९८, १०१,

१४४, देखें—अहिंसा  
हीनता २८, ५४, १८२  
हृदय-परिवर्तन ६२

## नामानुक्रम

अ	ब
अमेरिका ९८	बुद्ध १५०
आ	बोरावड़ १५
आगम १२३, १३२, १६२	ब्रिटेन ९८
ई	भ
ईराक ९७	भर्तृहरि ८३
ए	भारत देखें - भारतवर्ष
एशिया ८५	भारतवर्ष ११, १८-२०, २६,
क	५२-५४, ६५, ६७, ७४, ९३,
कपिल १३२	१०५, १०९, १२५, १३१,
कानपुर ९४, १५१	१३९, १३५, १३६, १३८,
कालूगणी १२९, १४८, १८०	१४८, १५८, १६०, १६४,
काशी १६४	१७१, १७७
कुंवरसिंह १८१	भारत सेवक समाज ९१
ग	म
गंगा १५६	महावीर ७, ८, २३, २८, ४१, ४५,
गौतम (गणधर) १६१, १६२	४७, ९६, ११२, १३२, १४५-
ज	४७, १५०, १५२, १६१, १६२
जयपुर २३	मीरा १५८
त	य
तुलसी १५८	यमुना १५६
द	र
दशवैकालिक १६२	रूस ९८
प	ल
पार्श्वनाथ १६४	लाडनूँ ९, १०, १८०
प्रह्लाद १६९	व
नामानुक्रम	विहार १५०

वेद १२३

स

सुजानगढ़ १८०

सूर १५८

ह

हरिभद्र १३१

हिरण्यकश्यप १६९

हेमचंद्र १३७



## पारिभाषिक शब्द-कोष

**आगम**—जैनधर्म के मूल शास्त्र आगम कहलाते हैं। इनमें तीर्थंकर महावीर की वाणी के आधार पर गणधरों, ज्ञानी स्थविरों द्वारा गुम्फित सूत्रों - ग्रन्थों को समाविष्ट किया गया है। गणधरों द्वारा बनाए गए आगम 'अंग' तथा विशिष्ट ज्ञानियों द्वारा बनाए गए आगम 'उपांग' आदि कहलाते हैं। देखें—तीर्थंकर, गणधर। श्वेतांबर परम्परा में स्थानकवासी एवं तेरापंथ द्वारा ३२ आगम स्वीकृत हैं—११ अंग, १२ उपांग, ४ मूल, ४ छेद, १ आवश्यक।

अन्य श्वेतांबर परम्पराएं ४८ या ८४ आगम भी मानती हैं।

**गणधर**—तीर्थ-स्थापना के प्रारम्भ में होने वाले तीर्थंकर के विद्वान् जिष्य, जो कि उनकी वाणी का संग्रहण कर उसे अंग-आगम के रूप में गुम्फित करते हैं।

**तीर्थंकर**—

- धर्मचक्र प्रवर्तक।
- साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका—इन चार तीर्थों के संस्थापक।
- चार घनघाती कर्मों का क्षय कर जो केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि गुणों को प्राप्त कर लेते हैं तथा आठ प्रातिहार्य आदि विशिष्ट उपलब्धियों के धारक होते हैं, वे ही अर्हन्, जिन या तीर्थंकर कहलाते हैं।
- नमस्कार महामंत्र का प्रथम पद इनके लिए प्रयुक्त है। जीवन की समाप्ति पर वे सिद्धावस्था को प्राप्त हो जाते हैं।
- प्रत्येक उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी में भरतक्षेत्र तथा ऐरावतक्षेत्र में २४ तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं। यह चौबीसी कहलाती है।
- भरतक्षेत्र में वर्तमान चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर ऋषभ व अन्तिम तीर्थंकर महावीर थे।

**तीर्थंकर नाम कर्म**—नाम कर्म की ९३ प्रकृतियों में से एक प्रकृति। इस कर्म-प्रकृति के उदय से व्यक्ति तीर्थंकर बनता है। इस कर्म प्रकृति के बंधन के बीस कारण बताए गए हैं।

**निर्जरा—**

- ० पूर्वसंचित कर्मों का टूटना ।
- ० कर्मों को तोड़ने के लिए किया जानेवाला तप ।

**परीषह—**साधु-चर्या को पालने के कारण उत्पन्न होने वाले कष्ट । वे बाबीस प्रकार के होते हैं—१. क्षुधा २. पिपासा ३. शीत ४. उष्णता ५. मच्छर-दंश ६. अचेल ७. अरति-रति ८. स्त्री ९. चर्या १०. निषीधिका ११. शय्या १२. आक्रोश १३. वध १४. याचना १५. अलाभ १६. रोग १७. तृण-स्पर्श १८. मैल. १९. सत्कार २०. प्रज्ञा २१. ज्ञान २२. दर्शन ।

**पाप—**शुभ रूप में उदय आने वाले कर्म-पुद्गल ।

**पुण्य—**अशुभ रूप में उदय आने वाले कर्म-पुद्गल ।

**श्रावक—**हिंसा, असत्य आदि सावद्य — पापकारी प्रवृत्ति का आंशिक त्याग करनेवाला सम्यग्दृष्टि जीव ।

## प्रेरक वचन

- धर्म में वह शक्ति है, जो हिंसाजन्य सभी समस्याओं का निरसन कर सकती है, वातावरण को स्वस्थ बना सकती है। (१)
- मैं तो उस पवित्र धर्म का पुजारी हूँ, जो अहिंसा की सुदृढ़ भित्ति पर खड़ा है, जो जन-जन के लिए सात्विक वृत्ति और सदाचारण की प्रेरणा बनता है, आत्म-विशुद्धि जिसकी चरम निष्पत्ति है। ऐसा धर्म ही संसार को समता, मैत्री और सद्भावना का संदेश दे सकता है, मनुष्य के सुख और शान्ति का आधार बन सकता है। (१,२)
- यदि व्यक्ति का कर्तृत्व प्रखर है, सकल्प पुष्ट है, आस्था दृढ़ है, तो वह विपरीत परिस्थितियों के बावजूद भी सच्चाई के मार्ग पर टिका रह सकता है। (४)
- कठिनाइयाँ स्थायी नहीं होतीं, शाश्वत नहीं होतीं। अन्ततः साहस के आगे घुटने टेक देती हैं, दम तोड़ देती हैं। (४)
- सैकड़ों पुस्तकें पढ़ लेने पर भी एक विद्यार्थी को उतना ज्ञान नहीं हो सकता, जितना कि उसे अध्यापकों के जीवन-व्यवहार से हो सकता है। (५)
- श्रद्धा में अद्भुत शक्ति होती है। (६)
- तर्क भी ज्ञान-प्राप्ति में बहुत सहयोगी और आवश्यक तत्त्व है। पर उसकी एक सीमा है। उसका अतिक्रमण घातक है, भटकानेवाला है। (६)
- महापुरुष सार्वजनीन होते हैं। किसी वर्ग या जाति-विशेष की सीमा में बंधकर वे नहीं रहते। (७)
- महापुरुषों के विचार और उपदेश इतने व्यापक होते हैं कि लाख प्रयत्नों के बावजूद वे किसी भी प्रकार की संकीर्ण सीमा में बंधकर रहते नहीं, रह सकते नहीं। अपने इस वैशिष्ट्य के कारण ही वे जन-जन के आकर्षण एवं आस्था के केन्द्र बन जाते हैं। संपूर्ण मानव-जाति की धरोहर बन जाते हैं। (७)

- दीन वह नहीं, जिसके पास धन नहीं, मकान नहीं, मोटर नहीं, सुख-सुविधा के विभिन्न साधन नहीं। फिर दीन कौन ? दीन वह है, जो चरित्रभ्रष्ट है, नीतिभ्रष्ट है, मानवता को बेचता है, अपने-आप को नीलाम करता है। (७)
- किसी भी स्तर पर परस्पर चलनेवाले संघर्ष, विवाद या वैमनस्य के केन्द्र में ऐकान्तिक आग्रह काम करता है (८)
- पुण्य का बंधन निर्जरा के साथ ही होता है। (९)
- पुण्य-बंधन की कामना करना तो अपने आपमें पाप-बंधन का हेतु है। (९)
- शांति कहां से आए ? वह आकाश से तो टपक नहीं सकती, न ही धरती पर खेतों में उग ही सकती है। उसका तो एकमात्र स्रोत व्यक्ति की अपनी आत्मा ही है। उसे वहीं खोजा जा सकता है। और इस बात का मैं भरोसा दिला सकता हूं कि वहां खोजने से वह अवश्य प्राप्त होगी। (१३)
- हिंसा के माध्यम से शत्रु को नहीं मिटाया जा सकता। स्थायी रूप से शत्रु को मिटाने के लिए अहिंसक तरीका ही कारगर सिद्ध हो सकता है। (१३)
- शत्रु को नहीं, शत्रुता को मिटाने का प्रयास होना चाहिए (१३)
- रोगी को नहीं, रोग को मिटाया जाना चाहिए। (१३)
- दीक्षा गृहस्थ-जीवन की समाप्ति और साधु-जीवन की शुरुआत है। असंयम-जीवन की समाप्ति और संयममय जीवन का मंगलाचरण है। (१५)
- दीक्षित जीवन तो उन्मुक्त राजपथ है। इस राजपथ पर कदम बढ़ाने वाला अनिर्वचनीय सुख और शान्ति की मंजिल को प्राप्त होता है। (१५)
- धर्म सुख और शांति से जीने का एकमात्र साधन है। (१७)
- ज्ञान अनन्त है, असीम है, जबकि जीवन के क्षण सान्त हैं, ससीम हैं। (१८)
- वह ज्ञान जड़ है, वह शिक्षा व्यर्थ है, जो सदाचरण से शून्य है। (१८)
- जब जीवन का आध्यात्मिक पक्ष दुर्बल होता है तो पग-पग पर अशांति का अनुभव होने लगता है। (२०)

- चरित्र-विकास के बिना कोई भी समाज और राष्ट्र उन्नत नहीं हो सकता । (२०)
- सुख-शांति का अक्षय कोष अपनी आत्मा ही है । जैसे-जैसे हमारी आत्मा विशुद्ध बनती जाती है, वैसे-वैसे वह अक्षय कोष प्रकट होने लगता है । (२२)
- भौतिक पदार्थों या भोग-विलास में सुख-शांति को खोजना मात्र मृगमरीचिका है । वहां सुख कहां, मात्र सुखाभास है, जो कि व्यक्ति को भ्रान्त बनाये रखता है । (२२)
- सहिष्णुता और सह-अस्तित्व अहिंसा के दो मुख्य पहलू हैं । (२४)
- शांति और सुख धन में नहीं, संयम, सादगी और सात्विक वृत्तियों में है । धन की भूमिका अधिक-से-अधिक भोग-उपभोग के साधन/सामग्री जुटाने तक है । (२६, २७)
- मैं नहीं समझता, नारी अपने को अबला और कमजोर क्यों मानती है ? क्यों ऐसा सोचती है कि पुरुष ने उसके विकास को अवरुद्ध कर रखा है ? (२८)
- स्वयं जागृत होकर ही व्यक्ति दूसरों को जागृति का संदेश दे सकता है । (२९)
- सुधार की बात चाहे जहां-कहीं से उठे, जिस-किसी स्तर पर उठे, उसका स्वागत है, तथापि मैं कहूंगा कि आप औरों के सुधार की बातों को एक बार गौण करें, पहले अपना सुधार करें । (३०)
- समाज-सुधार और राष्ट्र-सुधार के लिए व्यक्ति-व्यक्ति को सुधरना जरूरी है । (३१)
- शराब मनुष्य के विवेक को कुंद बना देती है । (३२)
- ईमानदारी और सत्याचरण मानव-जीवन की शोभा है । (३२)
- शराब भी कोई पीने की चीज है ? उसको पीने से इन्सान अपनी गुणात्मकता को खोकर हैवान बन जाता है, अपनी सुध-बुध तक गंवा बैठता है । (३४)
- मार्ग को स्वीकार करने में कैसा भय ? कैसा संकोच ? बस, थोड़े से साहस की अपेक्षा है । (३५)
- वास्तव में बड़ा वही है, जिसने आत्म-शुद्धि के मार्ग पर चरणन्यास किया है, संयम के साथ अपने जीवन को जोड़ा है । (३६)
- संयम और त्याग की साधना ही धर्म व अध्यात्म की सच्ची आराधना है । (३७)

- ऊंचा जीवन वह है, जो संयम से संवलित है । (३८)
- जहां संयम नहीं, आत्म-नियन्त्रण नहीं, वहां मैं मृत्यु देखता हूं । (३८)
- सच्चा सुख तो संयम और आत्म-नियन्त्रण में है । इस सुख के समक्ष भौतिक सुख सर्वथा नगण्य है । (३९)
- शराब पीना निश्चित ही बुरा है, पर उससे भी अधिक बुरा यह मानना है कि शराब पीना अच्छा है । (४०)
- धर्म जीवन की पवित्रता का एकमात्र साधन है, (४२)
- जब तक धर्म से अपने स्वार्थ को साधने की मनोवृत्ति नहीं मिटेगी, तब तक उसकी तेजस्विता प्रकट नहीं हो सकती । (४२)
- धार्मिक बनने के लिए प्राथमिक अपेक्षा है—व्यक्ति अपने आचरण और व्यवहार को सम्यक् बनाए, पवित्र बनाए, शुद्ध बनाए । (४३)
- अहिंसा धर्म का प्राणतत्त्व है । जीवन में जो महत्त्व प्राण का है, वही धर्म में अहिंसा का है । (४४)
- जिस क्षेत्र में जन-चेतना जागृत हो जाती है, उस क्षेत्र में करणीय कुछ भी असंभव नहीं रहता । (५१)
- धर्म सदा अमर है और अमर रहेगा । संसार की बड़ी-से-बड़ी कोई शक्ति भी उसको नहीं मिटा सकती, उसकी तेजस्विता को धूमिल नहीं कर सकती । (५५)
- बड़प्पन की कसौटी ऊंचे कुल से पैदा होना नहीं है । सत्ताधारी और विपुल वैभवशाली होना भी नहीं है । सही माने में बड़प्पन तो सदाचरण, संयम और संतोष में है । (५६)
- वस्तुतः सच्चा सुख संयम में है, आत्म-नियन्त्रण में है । (५६)
- संयम या आत्म-नियन्त्रण से मिलनेवाले सुख की बात मैं क्या बताऊं ! वह तो अनिर्वचनीय है । केवल उसका अनुभव ही किया जा सकता है । (५६, ५७)
- जिस व्यक्ति के जीवन में सुख-शांति नहीं, उसका जीवन सार्थक जीवन कदापि नहीं हो सकता, भले वह बहुत बड़ा धनपति क्यों न हो, बड़े-से-बड़ा सत्ताधीश क्यों न हो । (५९)
- जब तक व्यक्ति मिथ्यादर्शन से मुक्त होकर सम्यक् दर्शन को प्राप्त नहीं हो जाता, तब तक उसका ज्ञान भी अज्ञान है । फिर उससे सम्यक् आचरण की तो आशा भी कैसे की जा सकती है । (५९, ६०)
- जिस ज्ञान के पीछे आत्म-दर्शन का अभाव होता है, वह व्यक्ति के लिए वरदान नहीं बन सकता । (६०)

- परिणाममधुर सुख ही वास्तविक सुख है। आपातमधुर सुख अर्थात् वार्तमानिक क्षणिक सुख वास्तविक सुख नहीं है। (६०)
- जिस बोध के साथ सम्यक् आचार का योग नहीं है, वह बोध या ज्ञान व्यक्ति के लिए भार से अधिक और कुछ भी नहीं है। (६१)
- स्थायी परिवर्तन या सुधार हृदय-परिवर्तन से ही संभव है। (६२)
- जिस प्रकार भवन की मजबूती उसकी नींव की मजबूती पर निर्भर करती है, उसी प्रकार जीवन की स्वस्थता विद्यार्थी-जीवन की स्वस्थता पर निर्भर है। (६३)
- धर्म का सही स्वरूप है—सत्य, अहिंसा, संतोष जैसे तत्त्वों की साधना। इन तत्त्वों को व्यक्ति अपने जीवन में संजोए। यही धर्म का सही प्रतिष्ठा होगी। (७१)
- धर्म जीवन की पवित्रता का अद्वितीय साधन है। सुख और शांति का एकमात्र आधार है। (७२)
- धर्म नैतिक, चारित्रिक एवं मानवीय मूल्यों की जन-जन में प्रतिष्ठा का सबसे बड़ा आधार और साधन है। (७६,७९)
- धर्म मात्र परलोक-शुद्धि के लिए नहीं है, वह इस जीवन को भी विकसित और उन्नत बनाने का साधन है। (७९)
- जो धर्म वर्तमान के जीवन को उन्नत और पवित्र नहीं बनाता, वह परलोक की शुद्धि का साधन कैसे बन सकेगा ? (७९)
- पारतंत्य से बढकर इस जगत् में कोई दुःख नहीं होता, अभिशाप नहीं होता। (८०)
- अहंकार जीवन-विकास का सबसे बड़ा अवरोधक तत्व है। (८३)
- चरित्रशून्य ज्ञान तो बैल पर लदी पुस्तकों के समान है, जिनका कि उसके लिए भार होने से अधिक और कोई उपयोग नहीं होता। (८४)
- स्वयं जलकर ही दीपक दूसरों को प्रकाश बांट सकता है। (८४)
- सही मार्ग ही व्यक्ति को अभीप्सित मंजिल पर पहुंचा सकता है। (८८)
- शुभ शुरुआत स्वयं से होगी, तभी समाज-निर्माण एवं राष्ट्र-निर्माण की आकांक्षा फलीभूत हो सकेगी। (८९)
- ज्ञान की वे बड़ी-बड़ी बातें किस काम की, जिनका आचरण व्यक्ति स्वयं नहीं करता। (८९,९०)

- जो स्वयं नहीं सुधरा, वह जनता को सुधार की क्या दिशा देगा ।  
(१०)
- सम्यक् श्रद्धा व्यक्ति के लिए हर परिस्थिति में सत्य पर अडिग बने रहने की प्रबल प्रेरणा होती है । (१२)
- अहिंसा, सत्य आदि तत्व इतने व्यापक हैं कि किसी के दंभ भरने से ये किसी संप्रदायविशेष की संकीर्ण सीमाओं में समाते नहीं । (१५)
- जो लोग धर्मारोधना के क्षेत्र में जातिविशेष पर प्रतिबंध की बात करते हैं, वे वास्तव में धर्म के मर्म को समझते नहीं । धर्म तो सूरज की धूप और चांद की चांदनी की तरह है । उन पर कोई प्रतिबंध हो तो धर्म पर प्रतिबंध की बात समझ में आ सकती है । (१५, १६)
- जाति, वर्ण आदि तो समाजिक व्यवस्थाएं हैं, जो क्षेत्र, काल की अपेक्षानुसार समय-समय पर निर्मित होती रहती हैं, टूटती रहती हैं । इनको शाश्वत मानना भयंकर भूल है । (१६)
- वही व्यक्ति ऊंचा और महान् है, जिसका आचरण और व्यवहार ऊंचा है, भले वह किसी भी जाति या वर्ण में क्यों न जन्मा हो ।  
(१६)
- हिंसा तो स्वयं अशांति है, अशांति का कारण है, बल्कि सबसे बड़ा कारण है । उसके माध्यम से शांति की प्राप्ति का प्रयत्न करना उतना ही निरर्थक है, जितना निरर्थक खून से सने कपड़े को खून से धोने का प्रयत्न । (१७)
- हिंसा से युद्ध की आग में घी खींचने का काम ही हो सकता है, पानी डालने का कदापि यहीं । पानी डालने का काम तो अहिंसा का है । वही एकमात्र इस कार्य को करने में सक्षम है । (१७)
- अगर विश्व का एक किनारा अशांत है तो दूसरा किनारा शांत नहीं रह सकता । (१८)
- कैसी बिडम्बना है कि जनता लड़ना नहीं चाहती, युद्ध से दूर रहना चाहती है, पर कुछेक व्यक्तियों की महत्वाकांक्षा या पागलपन युद्ध की आशंका/संभावना को जन्म दे देता है । (१९)
- राजनीति संयम से अनुशासित नहीं है, इसलिए वह उच्छृंखल हो रही है । (१९)
- परिग्रह भोग-लिप्सा एवं भोगवृत्ति से पैदा होता है । (१९)
- अनैतिकता का हेतु बड़प्पन का भाव और मिथ्याचरण है । (१९)



- स्वार्थ का अतिरेक अविश्वास को उत्पन्न करता है । (१९)
- आदर्श तक हर कोई नहीं पहुँच सकता, पर उस दिशा में एक-एक चरण आगे तो बढ़ ही सकता है । (१०१)
- जैसे समाज के बदलाव/सुधार के लिए व्यक्ति का बदलाव/सुधार महत्वपूर्ण है, उसी तरह व्यक्ति के बदलाव/सुधार के लिए समाज का बदलाव/सुधार भी महत्वपूर्ण है । (१०३)
- समाज का वातावरण जब स्वस्थ होता है तो व्यक्ति के लिए भी अपने-आपमें परिवर्तन करना और पथ का अनुसरण करना सुगम हो जाता है । (१०३)
- दण्ड और बल-प्रयोग संदेह, अलगाव और आक्रोशभरी प्रतिक्रिया पैदा करते हैं । (१०३, १०४)
- भारतवर्ष की अपनी एक गौरवशाली संस्कृति है, एक महान् परंपरा है । यहां प्रत्येक शुभ दिन, मंगल प्रसंग को जीवन-शुद्धि और आत्म-जागृति की प्रेरणा के साथ जोड़कर मनाया जाता है । (१०५)
- आत्मावलोकन व्यक्ति के जीवन में नव-चेतना का संचार करता है । अतीत की भूलों को सुधारने का अवसर देता है । (१०५)
- राष्ट्र का सच्चा विकास तो राष्ट्र के नागरिकों के जीवन में चरित्र, नैतिकता, सदाचार, सचाई और ईमानदारी के फलने-फूलने में है । (१०६)
- जब तक चरित्र, नैतिकता, सचाई आदि जीवननिर्माणकारी तत्वों के क्षेत्र में विकास नहीं होगा, तब तक राष्ट्र की कोई भी अच्छी-से-अच्छी योजना, महत्वाकांक्षी-से-महत्वाकांक्षी कार्यक्रम भी सफल नहीं हो सकता । (१०६)
- कारण को मिटाने से कार्य स्वयं समाप्त हो जाता है । (१०६)
- विद्यार्थी इस तथ्य को क्यों भूल जाते हैं कि उनका जीवन योगी का जीवन है, साधना का जीवन है ।
- लोग धरती पर स्वर्ग के अवतरण की कल्पना करते हैं । पर मैं नहीं समझता, उसकी क्या जरूरत है ? यह धरती ही स्वर्ग बन सकती है, बशर्ते सच्चरित्र के प्रति मानव-मानव गंभीर बन जाए । (११०, १११)
- प्रमाद एक अपेक्षा से संसार में सबसे बड़ा पाप है, क्योंकि इसमें हूबकर ही व्यक्ति दुष्प्रवृत्त बनता है, नानाविध पापकर्म करता है । (११२)
- चिन्तित और उद्वेलित होना समस्या का समाधान नहीं है । (११५)

- विद्यार्थी-अवस्था जीवन-निर्माण का पहला सोपान है । (११६)
- ब्रह्मचर्य आत्म-शुद्धि एवं जीवन की पवित्रता का अन्यतम साधन है ।  
(११८)
- आत्मस्वरूप में संस्थित एवं संचरण करना ब्रह्मचर्य है । (११८)
- सत्य जीवन का परम आदर्श है । (१२३)
- क्षमा मैत्री-भावना को पनपाने का अनन्य साधन है । (१२७)
- आत्म-तोष का एकमात्र मार्ग आत्म-संयम है । (१३७)
- देश की अन्तरात्मा का निर्माण राष्ट्रीय चरित्र और संयम से होता है । (१३८)
- समाज की प्रकृति अनुकरणप्रधान होती है । जैसा बड़े लोग करते हैं, उसका अनुकरण सामान्य लोग करने लगते हैं । (१३८)
- हमारा उद्धार करने के लिए कोई भगवान या परमात्मा यहां नहीं आयेगा, अपितु हमें स्वयं ही परमात्मरूप धारण करना है । (१३८)
- अपनी जिम्मेदारी से बेखबर होना आज का सबसे बड़ा खतरा है ।  
(१३८)
- 'व्रत' भारतीय संस्कृति की आत्मा है । (१४०)
- जो अपने-आपको जीत लेता है, वह संसार पर काबू पा लेता है ।  
(१४०)
- व्रत आत्म-विजय का मार्ग है । (१४०)
- अध्यात्मवाद की साधना व जीवन के चरम उत्कर्ष में जिनकी गहरी निष्ठा और तीव्र आकर्षण है, वे भौतिक सुख-सुविधाओं की कब आकांक्षा करते हैं । (१४१)
- सुसंस्कारी और जागृत नारी समाज के लिए एक वरदान है ।  
(१४३)
- आन व संकल्प के धनी मनस्वी पुरुषों को हजार प्रतिकूलताएं भी आगे बढ़ने से कब रोक पाती हैं । वे चट्टानों को चीर कर भी अपनी राह बना लेते हैं, आगे बढ़ जाते हैं । (१४५)
- हिंसा जीवन की किसी भी समस्या का समुचित समाधान नहीं है ।  
(१४५)
- अपरिग्रह के बिना अहिंसा फलित नहीं हो सकती । (१४६)
- महावीर की जय बोलने का उतना महत्व नहीं है, जितना उनके आदर्शों के अनुरूप जीवन को ढालने का है । (१४७)

- जैनत्व की कसौटी नाम के पीछे 'जैन' जोड़ना नहीं, बल्कि महावीर के आदर्शों के साँचे में अपनी सोच, व्यवहार एवं कर्म को ढालना है। (१४७)
- धर्म से केवल परलोक ही नहीं, वर्तमान भी सुधरता है। (१५२)
- जो धर्म वर्तमान को नहीं सुधारता, वह भविष्य को कदापि नहीं सुधार सकता। (१५२)
- धर्म तो भगड़े को मिटाने का काम करता है, फिर उसको लेकर भगड़ा कैसा? मुझे लगता है, भगड़ा धर्म का नहीं, अपने-अपने ऐकांतिक आग्रह का है। (१५१)
- सत्य अनन्त है, उसको देखने के पहलू भी अनन्त हैं। (१५२)
- जीवन की पवित्रता एवं स्वस्थता का आधार वहीं धर्म बन सकता है, जो व्यक्ति के दैनंदिन जीवन से जुड़े, जीवन के हर व्यवहार एवं आचरण से जुड़े। (१५१)
- धन से धर्म का कोई संबंध ही नहीं है। दूर का भी कोई संबंध नहीं है। (१५४)
- वही समन्वय वास्तविक समन्वय है, जिसमें अपने मौलिक गुणों की सुरक्षा के साथ ऊपरी बातों में सामंजस्य स्थापित किया जाता है। (१५६)
- विद्या-प्राप्ति का वास्तविक प्रयोजन जीवन का सर्वतोमुखी विकास है। (१५८)
- संसार में जितनी भी बड़ी-बड़ी क्रांतियां या परिवर्तन घटित हुए हैं, उनमें साहित्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। (१५९)
- व्रत में वह अद्भुत शक्ति है, जो व्यक्ति में आंतरिक रूपांतरण घटित कर सकती है। (१६०)
- जब तक अध्यात्म, त्याग एवं संयममूलक संस्कृति के प्रति निष्ठा भारतीय लोगों में बनी हुई है, तब तक साधु-संतों का अभिनन्दन-स्वागत होता रहेगा। (१६४)
- अध्यात्म और त्याग-संयममूलक संस्कृति ही भारतवर्ष का प्राणतत्व है। (१६४)
- जीवन-जागरण के लिए ज्ञान और आचार का समन्वय नितांत अपेक्षित है। (१६६)
- अनेकांत दृष्टि सत्य से साक्षात्कार करने का सफलतम अभिक्रम है। (१६७)

- व्यक्ति अपने कर्म से ही महान् और हीन होता है । (१६८)
- सम्यक् श्रद्धा से सम्पन्न व्यक्ति ही सम्यक् ज्ञान को प्राप्त कर सकता है । (१७०)
- सम्यक् ज्ञान ही वह तत्व है, जो व्यक्ति को अभ्युदय की ओर ले जाता है । (१७०)
- सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान के सहारे पनपनेवाला चरित्र ही स्वस्थ जीवन का प्रतीक है (१७०)
- श्रद्धा आत्म-विकास का पुष्ट आधार है । (१७१)
- विद्यार्थी-वर्ग राष्ट्र की सबसे मूल्यवान् संपत्ति है । (१७२)
- 'व्रत' सुखमय जीवन की बुनियाद है । (१७३)
- 'व्रत' का अर्थ है—असद् से विरति, असंयम से संयम की ओर प्रस्थान । (१७२)
- मेरी दृष्टि में सबसे प्राथमिक और आवश्यक निर्माण-कार्य मनुष्य का निर्माण करना है, मानवता का निर्माण करना है । (१७८)

जैन विश्व भारती द्वारा प्रकाशित  
गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी का साहित्य

- प्रवचन पाथेय भाग १
- प्रवचन पाथेय भाग २
- प्रवचन पाथेय भाग ३
- प्रवचन पाथेय भाग ४
- प्रवचन पाथेय भाग ५
- प्रवचन पाथेय भाग ६
- प्रवचन पाथेय भाग ७
- प्रवचन पाथेय भाग ८
- प्रवचन पाथेय भाग ९
- प्रवचन पाथेय भाग १०
- प्रवचन पाथेय भाग ११
- जागो! निद्रा त्यागो!!  
(प्रवचन पाथेय १२)
- आगे की सुधि लेइ  
(प्रवचन पाथेय १३)
- भोर नई  
(प्रवचन पाथेय १४)
- सूरज ढल ना जाए  
(प्रवचन पाथेय १५)
- सम्भल सयाने!  
(प्रवचन पाथेय १६)
- घर का रास्ता  
(प्रवचन पाथेय १७)
- महकै अब मानव-मन  
(प्रवचन पाथेय १८)

# महके अब मानव-मन

गणाधिपति तुलसी